JEVAN SAHITY 1976 G.K.V.

जीवन साहित्य

अहिंसक नवरचना का मासिक

सस्ता साहित्य मंडल की स्वर्ण जयन्ती के उपलक्ष्य में

सम्पादक
यशपाल जैन

मई, जून
१९७६

हिन्दी द्वारा राष्ट्र-सेवा के ५० वर्ष

हिन्दी द्वारा राष्ट्र-सेवा के ५० वर्ष

विशेषांक : १

मई-जून, १९७६

विषय-सूची

परिशिष्ट

वार्षिक शुल्क दस रुपये ● इस अंक का मूल्य पांच रुपये

अहिंसक नवरचना का मासिक
जीवन साहित्य
उत्तर प्रदेश, राजस्थान, हिमाचल प्रदेश, दिल्ली, बिहार, पंजाब एवं हरियाणा की राज्य-सरकारों द्वारा कालेजों, लायब्रेरियों तथा उत्तर प्रदेश की ग्राम-पंचायतों के लिए स्वीकृत
वर्ष ३७ : अंक ५-६ हिन्दी द्वारा राष्ट्र-सेवा के ५० वर्ष : विशेषांक : १ ● मई-जून, १९७६

एक सम्पूर्ण अस्तित्व

भवानी प्रसाद मिश्र

तुम आयोजन ही नहीं रहे उपलब्धि बने,
कितने आनन्द-मेघ तुमसे उठकर बरसे,
कितने निर्झर तुमसे छूटे छहरे फैले,
कितने बंजर तुमसे सिंचकर सम्यक् सरसे !

तुम छाया और प्रकाश के तानों-बानों से,
आधी शताब्दि हो गई बुन रहे शुभ-विचार,
तुम शाश्वत श्रम, तुम स्नेह सरल,
तुम अक्षर-सेवा-श्रमण उपस्थित द्वार-द्वार ।

गांधी के मन का सुरुचिपूर्ण सोद्देश्य-शब्द,
तुम अलख नहीं, साकार जगाते रहे सदा,
तुम स्नेह, प्रेम, करुणा, ममता के रंगों से,
दुनिया को रँगते और रँगाते रहे सदा।

तुम लदी डाल की तरह विनत हो देने में,
लेने में मां की तरह सदा संकोचशील,
फल स्निग्ध रसाल टपकते रहते हैं तुमसे,
तुम हो मानो श्यामल धरती, अम्बर सुनील ।

निवेदन

'सस्ता साहित्य मंडल' की स्थापना महात्मा गांधी के आशीर्वाद तथा सेठ जमनालाल बजाज की प्रेरणा से सन् १९२५ में हुई थी। उसके पीछे मूल हेतु यह था कि सस्ते मूल्य में ऐसा साहित्य उपलब्ध किया जाय, जो देश-वासियों में राष्ट्रीय भावना को जाग्रत और उनकी चेतना को प्रबुद्ध करे। पिछले पचास वर्षों से 'मंडल' इसी ध्येय को सामने रखकर पुस्तकों का प्रकाशन और प्रसारण करता आ रहा है। उसने भारत के प्रमुख राष्ट्र-नेताओं, विचारकों तथा साहित्य-सेवियों की लगभग १५०० पुस्तकें प्रकाशित की हैं और अनेक विदेशी चिन्तकों की प्रेरणादायक रचनाओं को भारतीय पाठकों के लिए सुलभ किया है।

'मंडल' एक चैरिटेबल सोसायटी है। मुनाफा कमाना उसे इष्ट नहीं है। विविध विषयों की ज्ञानवर्द्धक तथा चरित्र-निर्माणकारी पुस्तकें अच्छी तरह से निकालने में वह निरन्तर संलग्न रहा है। भारत के प्रथम राष्ट्रपति डा. राजेन्द्रप्रसाद अनेक वर्षों तक उसके संरक्षक रहे और पं० जवाहरलाल नेहरू न केवल उसकी गतिविधियों में सक्रिय रुचि लेते रहे, बल्कि उसको पूरा सहयोग देते रहे।

'मंडल' का यह स्वर्ण-जयंती वर्ष है। हमारी इच्छा है कि भविष्य में वह और भी सघन रूप में देश की सेवा करे। यह तभी संभव हो सकता है, जबकि उसे सबका मुक्त सहयोग प्राप्त हो।

इस समय 'मंडल' के सामने मुख्य समस्या उसकी मौजूदा पुस्तकों तथा भविष्य में होने वाले प्रकाशनों की बिक्री की है। यदि अच्छी संख्या में पुस्तकें खपती रहें तो आगे नये प्रकाशन करने में भी सुविधा होगी। जैसा कि सब जानते हैं, हम अच्छे साहित्य का प्रचार-प्रसार बराबर करते रहे हैं।

देश-विदेश के हिन्दी-प्रेमियों तथा हिन्दी-पोषकों से हमारा अनुरोध है कि वे 'मंडल' के स्वर्ण-जयंती वर्ष में इस दिशा में उसकी जितनी सहायता कर सकें, करने की कृपा करें। अब समय आ गया है कि पाठकों को बहुत बड़े परिमाण में ऐसा साहित्य सुलभ हो, जो विचार-प्रेरक तथा संस्कार-सम्वर्द्धक हो। 'मंडल' ऐसे ही साहित्य को निकालता रहा है और आगे भी निकालने के लिए कृत-संकल्प है।

हमें विश्वास है कि इस सार्वजनिक संस्था को सबका पूर्ण सहयोग मिलेगा और वह अपने उद्देश्य की पूर्ति के लिए निरंतर अग्रसर होती रहेगी।

—भागीरथ कानोडिया
अध्यक्ष
सस्ता साहित्य मंडल

आशीर्वाद

'सस्ता साहित्य मंडल' का प्रयास स्तुत्य है।...मैं इस सुंदर, सस्ते और उपयोगी हिंदी-साहित्य के उद्योग का स्वागत करता हूं।

—मो० क० गांधी

'मंडल' ने हिंदी की उच्च कोटि की सस्ती पुस्तकें निकालकर हिंदी की बड़ी सेवा की है। ऐसी एक संस्था की बड़ी आवश्यकता थी। सर्व-साधारण को इस संस्था की पुस्तकें लेकर इसकी सहायता करनी चाहिए।

—मदनमोहन मालवीय

मैं 'मंडल' के काम में आरंभ से ही दिलचस्पी लेता रहा हूं और उसने हिंदी साहित्य की जो वृद्धि और सेवा की है, उसका मैं बहुत ही आदर करता हूं।

—राजेन्द्रप्रसाद

'मंडल' ने हिंदी साहित्य की अच्छी सेवा की है।

—जवाहरलाल नेहरू

'मंडल' ने केवल अपने प्रकाशनों के ऊंचे स्तर से ही नहीं, किंतु अपने कार्य की नैतिक मर्यादा से अपने को आदर और प्रेम का पात्र बनाया है।

—पुरुषोत्तमदास टंडन

यदि हम चाहते हैं कि हिंदी-साहित्य जितनी तेजी से आगे बढ़ सकता है, उतनी तेजी से आगे बढ़े और दुनिया की विकसित भाषाओं में अपना उचित स्थान प्राप्त करे तो इस ध्येय की पूर्ति के लिए उसे वही रास्ता अंगीकार करना चाहिए, जो इस 'मंडल' ने किया है।

—मौ० अबुल कलाम आजाद

'सस्ता साहित्य मंडल' के प्रकाशन सस्ते, उपयोगी और शिक्षाप्रद होते हैं। देश के चोटी के नेताओं तथा विद्वानों की उच्चकोटि की पुस्तकों को हिंदी में प्रकाशित कर 'मंडल' ने हिंदी-जगत और जन-साधारण की सराहनीय सेवा की है।

—लालबहादुर शास्त्री

'मंडल' का कार्य अत्यन्त स्तुत्य है। सुरुचिपूर्ण साहित्य प्रस्तुत करना 'मंडल' का सदा ध्येय रहा

है। पुस्तकों के चुनाव में वह सतर्क रहता है और इस कारण उसके द्वारा जो साहित्य प्रकाशित हुआ है, उसका उद्देश्य जनता में सुरुचि उत्पन्न करना है।

—नरेन्द्र देव

'सस्ता साहित्य मंडल' अन्य भाषाओं के महत्त्वपूर्ण ग्रंथों का हिंदी में अनुवाद कराकर सस्ते मूल्य में पाठकों के समुदाय के लिए सुलभ कराने की दृष्टि से उत्तम काम कर रहा है।

—सर्वपल्ली राधाकृष्णन्

'सस्ता साहित्य मंडल' बड़े सुंदर प्रकाशन करता है। हिंदी की अच्छी सेवा उसने की है।

—मैथिलीशरण गुप्त

'सस्ता साहित्य मंडल' जनता की बहुत मूल्यवान सेवा करता है। मैं उम्मीद करता हूं कि 'मंडल' का सेवा-कार्य और भी प्रगति करेगा।

—बा० गं० खेर

'सस्ता साहित्य मंडल' का मैं हृदय से अभिनंदन करता हूं।

—डॉ० भगवानदास

राष्ट्र-भाषा हिंदी को उच्चतम कोटि में ले जाने और नवीन, सुंदर तथा सस्ती पुस्तकों का निर्माण करने में 'मंडल' जो कुछ कर रहा है, वह सराहनीय है।

—गोविन्द वल्लभ पन्त

'सस्ता साहित्य मंडल' ने हिंदी के संवर्धन तथा उसके द्वारा सद्विचारों के प्रचार के लिए जो प्रयास किया है, वह स्तुत्य है।

—सम्पूर्णानन्द

अपने प्रकाशनों की संख्या से ही नहीं, अपितु उनके मानदंड के कारण भी 'मंडल' हमारे आदर का भाजन बना है।

—ग० वा० मावलंकर

'सस्ता साहित्य मंडल' की सेवा अनन्य है। उसके विकास में राष्ट्रभाषा का विकास भी रहा है।

—क० मा० मुंशी

'सस्ता साहित्य मंडल' ने जो सार्वजनिक काम किया है, वह किसी से छिपा नहीं है। मैं उसके काम से आरंभ से ही संपर्क रखता रहा हूं और उसके प्रयत्नों का प्रशंसक रहा हूं।

—श्रीप्रकाश

□

स्वर्ण जयंती

मंगलकामनाएं

राष्ट्रपति भवन, नई दिल्ली-११०००४
Rashtrapati Bhavan, New Delhi-110004

'सस्ता साहित्य मंडल' की स्वर्ण-जयंती के शुभ अवसर पर सर्व-संबंधित को बधाई देता हूं। यह बड़ी सराहनीय बात है कि बहुत-सी कठिनाइयां पेश आने के बावजूद 'मंडल' अपने ध्येय को पूरा करने में दृढ़ संकल्प से तत्पर रहा। देश के उच्चकोटि के नेताओं और विद्वानों की कृतियों को हिंदी में प्रकाशित करके, सस्ते, उपयोगी और शिक्षाप्रद प्रकाशन जन-साधारण तक पहुंचाकर 'मंडल' ने हिंदी साहित्य की जो सेवा की है, वह सर्व-विदित है। देश में हिंदी को जन-साधारण की भाषा बनाने में 'सस्ता साहित्य मंडल' जैसी संस्थाओं की आज बहुत जरूरत है। मैं आशा करता हूं कि 'मंडल' हिंदी को लोकप्रिय बनाने के लिए अपने प्रयास बराबर जारी रखेगा।

स्वर्ण जयंती समारोह की सफलता के लिए मैं अपनी शुभकामनाएं भेजता हूं।

—फखरुद्दीन अहमद
(राष्ट्रपति, भारत)

उप-राष्ट्रपति, भारत
नई दिल्ली

'सस्ता साहित्य मंडल' पिछले ५० वर्षों से साहित्य-प्रकाशन का जो कार्य कर रहा है, उसकी हर कोई मुक्त कंठ से सराहना करता है। जो संस्थाएं समाज को उच्चकोटि तथा चरित्र-निर्माणकारी साहित्य उपलब्ध करने में प्रयत्नशील हैं, उनकी सेवाओं को राष्ट्र-सेवा के सदृश ही आंका जायगा। मुझे प्रसन्नता है कि 'सस्ता साहित्य मंडल' ने इस दिशा में बहुत अच्छा काम किया है, और मुझे आशा है कि भविष्य में भी 'मंडल' इस उपयोगी कार्य में संलग्न रहेगा।

मैं 'मंडल' की स्वर्ण-जयंती के अवसर पर आप सभी को बधाई देता हूं तथा 'मंडल' के उज्ज्वल भविष्य की कामना करता हूं।

—बा० दा० जत्ती
(उप-राष्ट्रपति, भारत)

प्रधान-मंत्री भवन

Prime Minister's House,
New Delhi

एक पुरानी कहावत है कि दान में विद्या-दान उत्तम है, और सस्ते दामों पर उपयोगी पुस्तकें प्रकाशित करना विद्या-दान का एक रूप है। इसी ध्येय से 'सस्ता साहित्य मंडल' की स्थापना हुई थी। इस संस्था का, अपने पचास साल के सेवा-काल में, हिंदी के प्रसार में बहुत बड़ा योगदान तो है ही, साथ ही इसने हिंदी जन-मानस को एक व्यापक दृष्टि भी दी है।

हाल में कागज के मूल्यों में वृद्धि तथा छपाई पर ज्यादा खर्च होने से किताबें महंगी हो गई हैं। यह जरूरी है कि ऐसी किताबें जनता के लिए सुलभ हों, जिनमें विवेक और चरित्र-निर्माण की क्षमता हो। मेरा विश्वास है कि 'सस्ता साहित्य मंडल' इस दिशा में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता रहेगा।

इन्दिरा गांधी

१६७

'सस्ता साहित्य मंडल' ने बहुत अच्छा काम किया है।

—विनोबा भावे

हमारे 'सस्ता साहित्य मंडल' के पचास वर्ष के जीवन का मैं साक्षी हूं। अबतक के कार्यकाल में 'मंडल' ने करीब डेढ़ हजार किताबें प्रकाशित कर डाली हैं। प्रकाशित पुस्तकों की पचास लाख से अधिक प्रतियां लोगों में पहुंच चुकी हैं। 'मंडल' ने गांधी-साहित्य तो दुनिया को दिया ही है, इसके अलावा यात्रा-साहित्य, कृषि और ग्रामोद्योगी साहित्य आदि भी दिया है। 'सस्ता साहित्य मंडल' का मासिक 'जीवन-साहित्य' भी अच्छी सेवा कर रहा है।

अपने नाम के अनुसार 'मंडल' सारा साहित्य सस्ते में देता है। हिंदी जगत की यह व्यापक सेवा अत्यंत महत्व की है।

—काकासाहेब कालेलकर

'सस्ता साहित्य मंडल' स्वर्ण-जयंती मनाने जा रहा है, इसलिए प्रसन्नता है। स्वर्ण-जयंती मनाना सबके भाग्य में नहीं होता। मैं अपनी शुभकामनाएं भेजता हूं।

—घनश्यामदास बिड़ला

'सस्ता साहित्य मंडल' द्वारा की हुई सेवा सबको सुविदित है। इस संस्था ने अच्छी प्रगति की है।

—मोरारजी देसाई

'सस्ता साहित्य मंडल' ने हिंदी में ज्ञान-प्रसार का काम बहुत अच्छी तरह से आजतक किया है।

—रंगनाथ रामचन्द्र दिवाकर

'सस्ता साहित्य मंडल' और उसके परिवार के साथ मेरा वर्षों पुराना और अत्यंत निकट का संबंध रहा है। 'मंडल' ने अपने सात्विक तथा विचार-प्रेरक प्रकाशनों द्वारा समाज तथा राष्ट्र की जो सेवा की है, वह बहुत ही महत्वपूर्ण है। उसने भारत के महान नेताओं और साहित्य-सेवियों का तो साहित्य निकाला ही है, साथ ही उदारतापूर्वक अनेक विदेशी चिंतकों तथा साधकों की चुनी हुई रचनाओं का अनुवाद कराकर भी हिंदी के पाठकों को दिया है। भारत की अन्य भाषाओं की उत्कृष्ट कृतियों को प्रस्तुत करके देश में भावनात्मक एकता संपादित करने का प्रयत्न भी 'मंडल' ने किया है। प्रवासी भारतीयों की भी उसने अच्छी सेवा की है।

'मंडल' की स्वर्ण जयंती के शुभ अवसर पर मैं अपनी मंगलकामनाएं भेजता हूं और संस्था की निरंतर उन्नति की कामना करता हूं।

—बनारसीदास चतुर्वेदी

'सस्ता साहित्य मंडल' की पुस्तकें अनमोल हैं। स्वर्ण जयंती वर्ष के उपलक्ष्य में मैं 'मंडल' का हार्दिक अभिनंदन करता हूं और अपनी मंगलकामनाएं भेजता हूं।

—चिं० द्वा० देशमुख

उत्तम, सस्ता और चरित्र-निर्माणकारी उपयोगी साहित्य जनता को उपलब्ध कराने के लिए ५० वर्ष पूर्व 'मंडल' की स्थापना की गई थी। 'मंडल' जनता को सस्ता और उत्तम साहित्य उपलब्ध कराकर अपने लक्ष्य-पूर्ति की ओर निरंतर अग्रसर होता रहा है। 'मंडल' का यह कार्य शैक्षणिक, साहित्यिक और जन-जागरण की दिशा में मिशनरी भावना से किया गया कार्य सिद्ध हुआ है। मेरी शुभकामना है कि 'मंडल' और उन्नति करे और अपने लक्ष्य की ओर निरंतर अग्रसर होता रहे।

—जगजीवनराम

(केन्द्रीय कृषि तथा सिंचाई मंत्री)

'मंडल' ने जैसी स्थायी महत्व की तथा सर्वांगपूर्ण सेवा हिंदी साहित्य की की है, वैसी किसी दूसरी प्रकाशन-संस्था ने नहीं की है। सर्वोत्तम उल्लेखनीय विशेषता 'मंडल' की यह रही है कि उसके द्वारा प्रकाशित साहित्य केवल आर्थिक लाभ उपलब्ध करने के प्रयास में नहीं रहा है। वास्तविक लक्ष्य, जिसकी बहुत अंशों में पूर्ति भी हुई है, यह रहा है कि कम आय वाले वर्ग के लोगों तक उपयोगी, निर्मल साहित्य पहुंचाया जा सके। इन बहु-विधीय विशेषताओं एवं सेवाओं के लिए मैं 'सस्ता साहित्य मंडल' के संचालकों को बधाई देता हूं। मेरी हार्दिक शुभ कामना है कि 'सस्ता साहित्य मंडल' उत्तरोत्तर विकास की ओर अग्रसर हो तथा उसकी सेवाओं का क्षेत्र सर्वांगपूर्ण तथा सेवा उपयोगी सिद्ध होती रहे।

—उमाशंकर दीक्षित

(भू० पू० केन्द्रीय नौवहन और परिवहन मंत्री)

'मंडल' ने जहां एक ओर जनता को सस्ते दामों पर पुस्तकें उपलब्ध कराईं, वहां दूसरी ओर इन्हें हिंदी भाषा में प्रकाशित करके हिंदी भाषा के प्रचार एवं प्रसार करने में भी अपना अमूल्य योगदान किया। अनेक आर्थिक कठिनाइयों के होते हुए भी 'मंडल' ने सफलतापूर्वक सस्ते दामों पर पुस्तक उपलब्ध कराने का प्रयत्न किया है। मुझे आशा है कि 'मंडल' भविष्य में भी अपने इस उद्देश्य की प्राप्ति के लिए इसी तत्परता एवं लगन के साथ प्रयत्नशील रहेगा।

—राजबहादुर

(केन्द्रीय पर्यटन तथा नागर विमानन मंत्री)

राष्ट्रपिता महात्मा गांधी 'सस्ता साहित्य मंडल' के प्रेरणा-स्रोत थे। उनके आदर्शों के अनुरूप ही इस संस्था ने निःस्वार्थ भाव से हिंदी भाषा और उसके साहित्य की सेवा की है। 'मंडल' ने विविध विषयों पर हिंदी भाषा में पुस्तकें प्रकाशित की हैं। महात्मा गांधी एवं अन्य महापुरुषों की जीवनियां, गांधी-दर्शन, लोक-कथाएं, देश की प्रगति आदि के संबंध में इसने अच्छी-से-अच्छी पुस्तकें प्रकाशित की हैं। विश्व के ज्ञान-भंडार को भी इसने हिंदी के माध्यम से प्रस्तुत किया है। सबसे महत्वपूर्ण बात यह है कि 'मंडल' द्वारा प्रकाशित पुस्तकें इसके नाम के अनुरूप ही बहुत सस्ती होती हैं, जिससे ये सामान्य जनता के लिए भी सुलभ हैं।

—शंकरदयाल शर्मा

(केन्द्रीय संचार-मंत्री)

'सस्ता साहित्य मंडल' हिन्दी साहित्य जगत में प्रशंसनीय कार्य कर रहा है, यह एक सर्व-विदित तथ्य है। मुझे आशा है कि यह जन-प्रिय 'मंडल' जन-साधारण की इसी तरह सेवा करता रहेगा। स्वर्ण-जयन्ती के अवसर पर 'मंडल' की उत्तरोत्तर प्रगति के लिए मैं अपनी शुभकामनाएं भेजता हूं।

—विद्याचरण शुक्ल

(केन्द्रीय सूचना एवं प्रसारण मंत्री)

साहित्य की वृद्धि के साथ-साथ उसे पाठकों को सस्ते मूल्य पर उपलब्ध कराना एक बहुत बड़ी सामाजिक अपेक्षा है। आज के बौद्धिक युग में साहित्य जीवन का अनिवार्य अंग बन चुका है और स्वस्थ समाज के निर्माण में सत्साहित्य का सर्वाधिक योग रहता है। 'सस्ता साहित्य मंडल' राष्ट्रभाषा के माध्यम से समाज की इस आवश्यकता की पूर्ति के लिए जो प्रयास कर रहा है, वह सचमुच प्रशंसनीय है। मैं उसकी सफलता की कामना करता हूं।

—कर्णसिंह

(केन्द्रीय स्वास्थ्य एवं परिवार नियोजन मंत्री)

अपनी स्थापना से अबतक के ५० वर्ष में 'मंडल' ने हिंदी-जगत की महत्वपूर्ण सेवा की है। 'मंडल' के आर्थिक संसाधन यद्यपि प्रारंभ से ही बहुत सीमित रहे हैं, परन्तु इसने उच्चकोटि के साहित्य को बहुत सस्ते दामों में प्रकाशित करके न केवल हिंदी साहित्य को ही समृद्ध किया है, अपितु राष्ट्र के पुनरुत्थान तथा नव-निर्माण में भी महान योगदान दिया है।

'सस्ता साहित्य मंडल' ने अनेक विधाओं में साहित्य-सृजन किया है। गांधी-साहित्य को व्यापक रूप में तथा क्रमबद्ध ढंग से प्रकाशित करने के साथ-साथ, 'मंडल' ने अग्रगण्य राष्ट्रीय नेताओं, मनीषियों एवं मूर्धन्य विचारकों के साहित्य को हिंदी में प्रकाशित कर, सुलभ मूल्य पर जन-साधारण को उपलब्ध किया है।

—कृष्णचन्द्र पन्त
(केन्द्रीय ऊर्जा मंत्री)

उन्नत समाज अपने पराभव के बाद जब फिर से उठना चाहे तो उसे पहली आवश्यकता चरित्र-निर्माणकारी साहित्य की होती है, जो उसे सस्ते-से-सस्ते मूल्य में मिल सके। युग-दृष्टा महात्मा गांधी ने इस आवश्यकता को समझा था और स्व० जमनालालजी की प्रेरणा से 'सस्ता साहित्य मंडल' चलाया था। विगत ५० वर्षों में इस संस्था ने अपने श्लाघनीय उद्देश्यों की निष्ठापूर्वक पूर्ति के लिए अनेक प्रयास किये हैं। इसके लिए संस्था के कर्मठ कार्यकर्ता बधाई के पात्र हैं। मेरी हार्दिक कामना है कि 'मंडल' और भी फले-फूले तथा हिंदी की सत्साहित्य के द्वारा अधिकाधिक सेवा करता रहे।

—कमलापति त्रिपाठी
(केन्द्रीय रेल मंत्री)

सस्ते-से-सस्ते मूल्य पर उत्तम, चरित्र-निर्माणकारी साहित्य प्रकाशन का 'मंडल' का उद्देश्य वस्तुतः एक बहुत व्यापक और श्लाघ्य उद्देश्य है। अपने इस उद्देश्य को सामने रखकर 'मंडल' द्वारा अबतक महान एवं प्रशंसनीय कार्य किया गया है। उसको देखते हुए मैं अनुभव करता हूं कि 'मंडल' को अपनी गतिविधियों में लगन से लगे रहना चाहिए, ताकि देश की वर्तमान परिस्थितियों में चरित्र-निर्माण पर बल दिया जा सके और अनुशासन की भावना को जनजीवन का एक अंग बनाया जा सके।

मैं आशा करता हूं कि 'मंडल' और अधिक उत्साह के साथ अपने पुनीत उद्देश्यों की दिशा में अग्रसर हो सकेगा और अपने सस्ते प्रकाशनों को जनसाधारण तक पहुंचा पायगा।

—डी० पी० यादव
(केन्द्रीय उप-मंत्री शिक्षा तथा समाज-कल्याण)

यह जानकर मुझे नितान्त प्रसन्नता हुई कि 'सस्ता साहित्य मंडल' इस वर्ष अपनी स्वर्ण जयंती मना रहा है। इस स्तुत्य प्रयास के लिए हार्दिक बधाई।

अपने ५० वर्ष के अल्पकालिक जीवन में 'मंडल' ने राष्ट्र की महत्वपूर्ण सेवा की है। अपने इस उद्देश्य की ओर बढ़ते हुए इसने अनेक कठिनाइयां झेली हैं। इनके बावजूद इसने देश को उच्चकोटि की शिक्षाप्रद, सुरुचिपूर्ण साहित्य उपलब्ध कराने में बहुत बड़ी सफलता प्राप्त की है। इसका श्रेय राष्ट्रपिता महात्मा गांधी के आशीर्वाद और मार्ग-दर्शन, कर्मठ राष्ट्रकर्मियों और साहित्यकारों के अनवरत योगदान को तो रहा ही है, साथ ही 'मंडल' में कार्यरत कर्मचारियों की लगन और सेवा का कुछ कम श्रेय नहीं रहा है।

'मंडल' के कार्य की सफलता की मैं पुनः कामना करता हूं।

—ओम मेहता
(केन्द्रीय गृह मंत्री)

पिछले पचास वर्षों में 'सस्ता साहित्य 'मंडल' ने राष्ट्रीय चेतना को जाग्रत करने के लिए जो सराहनीय कार्य किया है, वह सारे देश को भलीभांति विदित है। मुझे पूरी आशा है कि भविष्य में भी 'मंडल' इसी प्रकार राष्ट्रीयता को जगाते रहने में अग्रसर रहेगा।

—श्रीमन्नारायण

'सस्ता साहित्य मंडल' स्वतंत्रता संग्राम के युग से ही एक राष्ट्रीय संस्था के रूप में समादरित है। 'मंडल' ने सत्साहित्य को जन-साधारण के लिए सुलभ बनाकर जहां वैचारिक क्रांति के प्रयासों को आगे बढ़ाया, वहां प्रकाशन-व्यवसाय को प्रगतिशील नेतृत्व भी प्रदान किया है। 'मंडल' की गौरवपूर्ण उपलब्धियों के लिए 'मंडल' के सदस्य और कार्यकर्ता बधाई के पात्र हैं।

—सत्यनारायणसिंह
(राज्यपाल, मध्य प्रदेश)

यह जानकर मुझे बहुत खुशी हुई कि 'सस्ता साहित्य मंडल' के सेवा-काल के पचास वर्ष पूरे होने के उपलक्ष्य में 'जीवन साहित्य' का विशेषांक निकाला जा रहा है। 'सस्ता साहित्य मंडल' ने स्वतंत्रता-संग्राम में जो योगदान दिया है, उससे असंख्य लोग परिचित हैं। पूज्य बापू की विचारधारा और स्वर्गीय श्री जमनालालजी बजाज की प्रेरणा जहां इसका मुख्य स्तंभ रहा है, वहां इस अवसर पर दा साहब स्व० हरिभाऊजी उपाध्याय, की सेवाओं को भुला नहीं सकते। अंतिम समय तक दा साहब के दिमाग में 'मंडल' की समस्याएं काम करती थीं।

मुझे आशा है कि 'मंडल' परिवर्तित युग में भी अपना योगदान देता रहेगा।

—मोहनलाल सुखाड़िया
(राज्यपाल आंध्र प्रदेश)

मुझे यह जानकर प्रसन्नता हुई कि 'सस्ता साहित्य मंडल' का यह स्वर्ण जयंती वर्ष है। 'सस्ता साहित्य मंडल' ने जिस प्रकार से देश एवं समाज की सेवा की है, वह प्रशंसनीय है।

—कृष्णचंद
(उप-राज्यपाल, दिल्ली)

विगत पचास वर्षों में 'सस्ता साहित्य मंडल' ने राष्ट्रीय नेताओं, चिंतकों और साहित्यकारों का जो साहित्य प्रकाशित किया है, उससे समाज और राष्ट्र को निस्संदेह अत्यंत लाभ पहुंचा है। वस्तुतः 'सस्ता साहित्य मंडल' की स्थापना उत्तम साहित्य सस्ते मूल्य पर प्रकाशित करने और जन-साधारण को उपलब्ध करने के उद्देश्य को लेकर महात्मा गांधीजी की प्रेरणा से हुई थी। उसके संचालन में राष्ट्र के अनेक नेताओं ने सहयोग प्रदान किया है। 'मंडल' ने अबतक जितना साहित्य निकाला है, वह न केवल ज्ञानवर्द्धक और प्रेरणादायक है, बल्कि चरित्रनिर्माण के क्षेत्र से भी संबंधित है।

'मंडल' की राष्ट्रीय सेवाओं के लिए मेरे हृदय में बड़ा मान है और मेरी हार्दिक आकांक्षा है कि यह संस्था समाज और राष्ट्र की भविष्य में और भी सघन रूप में सेवा करती रहे।

—राधारमण
(मुख्य कार्यकारी पार्षद, महानगर परिषद, दिल्ली)

पिछले पचास वर्षों में 'मंडल' ने हिन्दी की जो सेवा की है, वह सुविज्ञात है। उच्चकोटि की शिक्षाप्रद और सस्ती पुस्तकें सुलभ कर इस संस्था ने हिन्दी के पाठकों का ज्ञानवर्द्धन किया है तथा हिन्दी का क्षेत्र और व्यापक बनाया है। इसके साथ ही इसने श्रेष्ठ रचनाओं के सृजन के लिए साहित्यकारों को प्रेरित किया है।
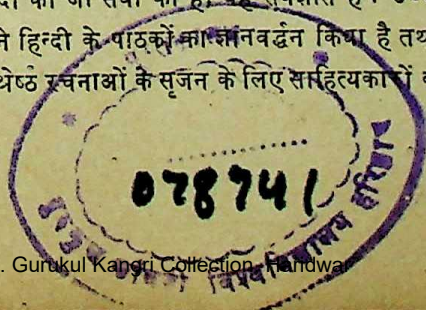
आशा है, भविष्य में भी 'सस्ता साहित्य मंडल' राष्ट्र-भाषा की इसी प्रकार श्रीवृद्धि करता रहेगा और अपने कार्य-क्षेत्र को समय की मांग के अनुसार और भी व्यापक बनायेगा।

—हेमवती नन्दन बहुगुणा
(मुख्यमंत्री, उत्तरप्रदेश)

आज देश में राष्ट्र-भाषा के विकास के लिए जो प्रयत्न किये जा रहे हैं, उनकी सफलता इस बात पर निर्भर करती है कि जन-साधारण को सस्ते मूल्य पर ऊंचे स्तर का प्रेरणादायक साहित्य उपलब्ध किया जाय। इस दिशा में 'सस्ता साहित्य मंडल' ने हिन्दी की सराहनीय सेवा की है।

इस संस्था का पिछले पचास सालों का इतिहास हिन्दी की सेवा का इतिहास है। 'मंडल' ने सर्व-साधारण को ऐसा उपयोगी साहित्य सस्ते मूल्य पर सुलभ किया है, जो सामाजिक तथा नैतिक दृष्टि से बहुत उच्चकोटि का है।

मैं उम्मीद करता हूं कि दूसरी प्रकाशन-संस्थाएं भी 'सस्ता साहित्य मंडल' की हिन्दी की सेवा-भावना से प्रेरणा लेंगी और समाज तथा राष्ट्र के निर्माण में सहयोग देनेवाले प्रेरणाप्रद साहित्य का प्रकाशन करेंगी।

—बंसीलाल
(मुख्यमंत्री, हरियाणा)

मैं 'मंडल' की स्थापना और प्रकाशित साहित्य से निरन्तर संपर्क में रहा हूं। 'मंडल' ने हिन्दी साहित्य की महत्वपूर्ण सेवा की है। न केवल सुरुचिपूर्ण साहित्य प्रकाशित करना, बल्कि अन्य भाषाओं के प्रसिद्ध ग्रंथों का हिन्दी में रूपान्तर कर पाठकों को उपलब्ध कराने की दिशा में 'मंडल' के प्रयास वास्तव में स्तुत्य हैं।

मैं अपनी रुचि के कारण तथा स्व० श्री हरिभाऊ उपाध्याय के संपर्क के कारण 'मंडल' की गति-विधियों से एक लम्बे समय से जुड़ा हुआ हूं। आज भी मेरे छोटे से निजी पुस्तकालय में 'मंडल' द्वारा प्रकाशित अनेक ग्रंथ मौजूद हैं। मेरी यह मान्यता है कि 'मंडल' ने अपने साहित्य-प्रकाशन के माध्यम से राष्ट्रीय आंदोलन में महत्वपूर्ण योगदान दिया है।

'मंडल' ने देश के उच्चकोटि के विद्वानों, साहित्यकारों और राजनेताओं की रचनाएं प्रकाशित की हैं। उसने प्रकाशन के विषय को केवल इतिहास, राजनीति और अर्थशास्त्र तक ही सीमित नहीं रखा है, बल्कि नैतिक, आध्यात्मिक तथा ग्रामोपयोगी कृषि-संबंधी प्रकाशन भी किये हैं।

स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद हमारे देश में अनेक प्रकाशन-संस्थाओं का विकास हुआ है, किन्तु 'सस्ता साहित्य मंडल' अभीतक अपने क्षेत्र में बेजोड़ ही रहा है। इसके दो कारण हैं। एक तो इसके निर्माण के मूल में राष्ट्रीयता की प्रेरणा रही है। स्व० राष्ट्रपिता महात्मा गांधी और स्व० जमनालाल बजाज से लेकर तत्कालीन पीढ़ी के सभी व्यक्तित्व इस प्रकाशन-संस्था से सम्बद्ध रहे हैं। दूसरे, राष्ट्रभाषा के विकास के उद्देश्य से उचित मूल्यों पर पुस्तकें उपलब्ध कराने के लक्ष्य से 'मंडल' ने काम किया है। वह राष्ट्रीय भावनाओं से ओतप्रोत साहित्य को जनजीवन में लानेवाली देश की महत्वपूर्ण संस्था है।

मेरी कामना है कि 'मंडल' उत्तरोत्तर प्रगति करता रहे तथा राष्ट्रीयता को प्रोत्साहन देने वाला नवीनतम साहित्य प्रकाशित कर वर्तमान एवं भावी पीढ़ी का मार्गदर्शन करता रहे।

—हरिदेव जोशी
(मुख्यमंत्री, राजस्थान)

प्रकाशन के क्षेत्र में सत्साहित्य की पूर्ति में 'मंडल' की सेवाएं अविस्मरणीय रहेंगी। उसने राष्ट्रभाषा हिन्दी में उच्चकोटि के लेखकों की उत्तम पुस्तकों को सस्ते मूल्य पर उपलब्ध कर हिन्दी के प्रचार-प्रसार में एक महती भूमिका का निर्वाह किया है। मैं संस्था की उत्तरोत्तर वृद्धि की कामना करता हूं।

—प्रकाशचन्द सेठी
(मुख्यमंत्री, मध्यप्रदेश)

'सस्ता साहित्य मंडल' की सेवाएं किसी से छिपी हुई नहीं। अपने कार्यक्षेत्र में जिस 'मंडल' ने चरित्र-निर्माणकारी साहित्य का सृजन किया है, उससे देश में चरित्र-निर्माण को बढ़ावा मिला है, इसमें कोई सन्देह नहीं।

आधुनिक युग में जहां साहित्य-रचना का प्रकाशन बहुत महंगा हुआ है, वहां यह उत्साह का विषय है कि 'सस्ता साहित्य मंडल' अपने साहित्य को पाठकों तक कम मूल्य में पहुंचाने में समर्थ है। इससे देश में साहित्य आवश्यक सम्पर्क-साधक बना है।

—यशवन्तसिंह परमार
(मुख्यमंत्री, हिमाचल प्रदेश)

अपने स्वर्ण जयंती समारोह के अवसर पर 'सस्ता साहित्य मंडल' को साधुवाद भेजकर मैं प्रसन्नता का अनुभव करता हूं। चरित्र-निर्माणकारी साहित्य प्रकाशित करने तथा उसे सस्ते मूल्य पर सामान्य जनता को उपलब्ध कराने के जिस उद्देश्य से राष्ट्रपिता महात्मा गांधी ने 'मंडल' की स्थापना की थी, उसे सिद्ध करने में 'मंडल' को सफलता मिली है। मेरी कामना है कि भविष्य में इस संस्था के कार्यक्रमों का और भी विस्तार हो, विविध प्रकार के सत्साहित्य प्रकाशन करने का इसे यश प्राप्त हो और भारतीय भाषाओं के पाठकों के लिए इसकी उपादेयता निरन्तर बढ़ती जाय।

—जगन्नाथ मिश्र
(मुख्यमंत्री, बिहार)

'मंडल' की स्थापना एक बहुत ही उच्च आदर्श को सामने रखकर हुई थी और आपने उस आदर्श को उज्ज्वलतर बनाया। आपको विश्व की महानतम विभूतियों के कृति-प्रकाशन का गौरव प्राप्त है। सर्व-साधारण को सुलभ कराने हेतु आपने सदैव अपने प्रकाशनों को सस्ते-से-सस्ते मूल्य पर, बिना प्रकाशन का स्तर नीचा किये, सर्वसाधारण को उपलब्ध कराया। हिन्दी में ऐसे साहित्य की आजतक की एकमात्र संस्था आप ही हैं। इस कारण स्वभावतः आपने समय-समय पर आर्थिक क्षति भी उठाई और व्यापारिक दृष्टिकोण से आप कभी भी सबल नहीं हुए, फिर भी आप अपने ध्येय से नहीं डिगे।

हिन्दी में ज्ञान-विज्ञान, बालोपयोगी, स्त्रियोपयोगी और अनेक शास्त्रों से सम्बन्धित आपकी पुस्तकें बहुत काल तक पढ़ी जायंगी। इनके लिए हिन्दी जगत सदैव आपका ऋणी रहेगा।

ऐसे ही, उत्कृष्ट प्रकाशनों को अन्य भाषाओं से अनुवाद कराकर भी आपने हिन्दी जगत को उपलब्ध किया। इस हेतु आप हमारी बधाई स्वीकार करें।

—रायकृष्ण दास

'सस्ता साहित्य मंडल' एक प्रकाशन-संस्था है, किन्तु सामान्य व्यवसायी प्रकाशन-संस्था नहीं, एक विशिष्ट प्रकार की असाधारण और कुछ विशिष्ट उद्देश्यों को लेकर स्थापित की गई संस्था है।

'मंडल' के पचास वर्षों का जीवन और कार्य बहुत ही उल्लेखनीय और महत्वपूर्ण है। पुस्तकों के चयन में उसने उदात्त साहित्य को ही प्रश्रय दिया है। जिस संस्था का 'शानदार था भूत' और 'वर्त्तमान

इतना गौरवमय और सफल है,' उसके भविष्य की महानता पर—उसके महान उद्देश्यों और संगठन के संतुलन और 'मणिकांचन' संयोग के कारण—विश्वास किया जा सकता है।

—श्रीनारायण चतुर्वेदी

'सस्ता साहित्य मंडल' को सेवा करते पचास वर्ष पूरे हो गये, यह आनंद की बात है। पूज्य गांधीजी के शुभाशीर्वाद तथा श्री जमनालालजी बजाज की प्रेरणा से 'मंडल' का आरंभ हुआ और आजतक उसने साक्षरयोग्य तथा जनता-भोग्य विविध साहित्य-ग्रंथों का प्रकाशन किया, कर रहा है और आगे भी करेगा। इसके लिए 'मंडल' और उसके संचालकों का विशेष अभिनंदन है। जो साहित्य 'मंडल' ने प्रकाशित किया है, उससे जनता को, विद्यार्थियों को तथा अपना ज्ञान बढ़ाने वाले जिज्ञासुओं को विशेष लाभ मिला है। साहित्य का अध्ययन ही प्रज्ञा को विकसित करने में सहायक होता है, इसमें संदेह का अवकाश नहीं।

ऐसी उपयोगी संस्था सदा चिरंजीव रहे और जन-कल्याण की प्रवृत्ति आगे बढ़ाती रहे, यही हमारी कामना है। परमेश्वर इस संस्था को तथा संस्था के संचालकों को चिरायु करे, आरोग्य-सम्पन्न रखे तथा जनता सब प्रकार से संस्था का पोषण करे, यही हमारी हार्दिक प्रार्थना है।

—बेचरदास दोशी

'मंडल' की स्वर्ण जयंती के उपलक्ष्य में मेरी हार्दिक बधाई। आशा है, 'मंडल' पर सरस्वती और लक्ष्मी दोनों ही सदा विराजमान रहेंगी।

—के. दोइ

जापान (अध्यक्ष, हिन्दी विभाग, टोक्यो विश्वविद्यालय)

श्रेष्ठ एवं सुरुचिपूर्ण रचनाएं प्रकाशित कर 'सस्ता साहित्य मंडल' हिन्दी साहित्य की जो सेवा कर रहा है, उसके लिए वह निश्चय ही प्रशंसा का पात्र है।

कृपया 'मंडल' के स्वर्ण जयंती वर्ष पर मेरी शुभकामनाएं स्वीकार करें।

—रॉबर्ट मेरियन

नई दिल्ली (प्रेस अधिकारी, अमरीकी सूचना केन्द्र)

'सस्ता साहित्य मंडल' पचास वर्ष तक हिन्दी की सेवा करता आया है, यह हिन्दी के क्षेत्र में उल्लेखनीय बात है। मेरी हार्दिक बधाई।

मारीशस **—सोमदत्त बखोरी**

बड़ी प्रसन्नता की बात है कि 'सस्ता साहित्य मंडल' का यह स्वर्ण जयंती वर्ष है। 'मंडल' ने अपने अर्द्ध-शताब्दी के जीवन-काल में करोड़ों नर-नारी एवं आबाल-वृद्ध की असीम सेवा की है। भारतीयों की तो बात ही क्या, भारत से बाहर पड़ोसी तथा मित्र राष्ट्रों के नागरिकों के ज्ञान-वर्द्धन तथा जीवन-निर्माण में भी 'मंडल' की महत्वपूर्ण भूमिका रही है और रहेगी। सीमित साधनों और सरल ढंग से लोगों के द्वार-द्वार पर पहुंचकर 'मंडल' ने मधुर साहित्यिक भाषा में अगणित लोगों का अर्थ, धर्म, काम, मोक्ष में पथ-प्रदर्शन किया है। 'मंडल' की जितनी भी प्रशंसा की जाय, थोड़ी ही होगी। सदा की भांति सबको सुखी, सबको स्वस्थ और सबको सुजान बनाने में 'मंडल' को पूरी सफलता मिले, यही मेरी हार्दिक शुभ कामना है।

—खड्गमान सिंह

(पाकिस्तान में नेपाल के राजदूत)

'मंडल' ने वास्तव में शिष्ट, सुरुचिपूर्ण एवं सस्ते साहित्य के प्रकाशन में श्लाघनीय कार्य किया है और अब भी इन विकट परिस्थितियों में वह अपने आदर्श पर चला जा रहा है, यह जानकर सन्तोष और गर्व दोनों होता है।

'मंडल' इसी प्रकार मां भारती तथा देश की विचार-धारा को उचित मार्ग-दर्शन देता रहे, यही मेरी प्रभु से प्रार्थना है।

रंगून

—ओमप्रकाश

(अध्यक्ष, अखिल वर्मा हिन्दी साहित्य सम्मेलन)

पचास वर्ष पूर्व 'मंडल' ने उच्च सिद्धान्तों से अनुप्राणित होकर उच्चकोटि के साहित्यिक प्रकाशनों का श्रीगणेश कम दामों में करना आरम्भ किया, ताकि भारत ही नहीं, जहां भी भारतवंशी बसे हों, उससे लाभान्वित हों। निस्संदेह इस तरह के विचार जनता और सरकारों में उत्साहजनक रहे हैं। यह भारत में एक विरल संगठन रहा है। गांधीजी और श्री विनोबाजी भावे के सिद्धान्तों के प्रचार-प्रसार में 'मंडल' प्रबल सहायक रहा है।

हिन्दी प्रचारिणी सभा, मॉरीशस 'मंडल' के दीर्घ जीवन की कामना करती है, जिससे वह अपने पवित्र कार्य को जारी रख सके।

मारीशस

जयनारायण राय

(प्रधान, हिन्दी प्रचारिणी सभा)

—एस० एम० भगत, मंत्री

'मंडल' ने भूतकालीन आपत्तियों का धीरता तथा वीरता सहित सामना करते हुए क्या कुछ किया और क्या कुछ कर रहा है, वह सराहनीय है। 'मंडल' एक सुगन्धित स्वर्ण-वाटिका है, जिसकी मधुर सुगन्ध समस्त हिन्दी साहित्य-संसार में प्रसारित हो रही है।

सिंगापुर

—मदनमोहन भारद्वाज

(अध्यक्ष, आर्य समाज)

पिछले पचास वर्षों में 'मंडल' ने हिन्दी की जो सेवा की है, वह निःसंदेह सराहनीय है। मुझे आशा ही नहीं, अपितु पूर्ण विश्वास है कि आनेवाले समय में वह हिन्दी साहित्य की अभिवृद्धि में, अपने ध्येय और उद्देश्यों के अनुरूप, अधिक-से-अधिक योग दे सकेगा। 'मंडल' की स्वर्ण जयन्ती के उपलक्ष्य में मेरी ओर से हार्दिक शुभ कामनाएं स्वीकार करें।

—(डा०) र० श० केलकर

(मंत्री, साहित्य अकादमी)

साहित्य-प्रेमियों का सौभाग्य है कि 'सस्ता साहित्य मंडल' उनकी गत ५० वर्षों से सेवा कर रहा है। मुझे आशा है कि 'मंडल' के साहित्य से 'मंडल' की जानकारी जहां जनता को मिलेगी और उसकी गतिविधियों का विस्तार होगा, वहां इस साहित्य से जनता-जनार्दन का ज्ञानवर्धन होगा।

—बहादुरराम टम्टा

(आयुक्त, दिल्ली)

'सस्ता साहित्य मंडल' संस्कारी, उत्तम एवं चरित्र-गठन करनेवाले साहित्य का प्रकाशन एवं प्रसारण कर रहा है। इसमें उसको दिन-प्रतिदिन सफलता मिलती रहे, ऐसी मेरी मंगलकामनाएं हैं।

—कस्तूरभाई लालभाई

'सस्ता साहित्य मंडल' को मैं बहुत समय से जानता हूं। इसने हिन्दी के प्रचार में और लोकोपयोगी साहित्य को जनता तक सरल भाषा और सस्ते दामों में पहुंचाने में अच्छी सफलता पाई है। महात्मा गांधी के अमूल्य सिद्धांतों और विचारों को जनसाधारण की पहुंच में लाने का 'मंडल' का काम प्रशंसनीय है। मैं 'मंडल' के देश-सेवा के कार्य की सराहना करता हूं और आशा करता हूं कि राष्ट्रसेवा के प्रेमी 'सस्ता साहित्य मंडल' के उत्तम ग्रंथों को अपनाकर अपनी ज्ञान-साधना के साथ साहित्य-सेवा भी करेंगे।

परमात्मा से मेरी प्रार्थना है कि 'मंडल' इसी सेवा-भाव से आगे बढ़ता हुआ जनता को अधिक-से-अधिक लाभ पहुंचा सके।

—श्रीराम

'सस्ता साहित्य मंडल' अपने गौरवपूर्ण कार्य के ५० वर्ष पूरे कर रहा है, यह जानकर बड़ी प्रसन्नता हुई। मैं आशा करता हूं कि वह सत्साहित्य के द्वारा राष्ट्र की सेवा करने का अपना मिशन बड़ी तत्परता और अनन्य भाव से पूरा करता रहेगा।

—मोहनलाल भट्ट

'सस्ता साहित्य मंडल' ने हिन्दी में प्रकाशन-कार्य बड़ा सुन्दर किया है। इसके लिए मैं उसे बधाई देता हूं।

—शांतिप्रसाद जैन

पिछले पचास वर्ष में 'मंडल' ने इतनी उत्तम पुस्तकें प्रकाशित की हैं और पाठकों के मानसिक स्वास्थ्य को बढ़ाने का प्रयास किया है, वह सब प्रकार से अभिनन्दनीय है। 'मंडल' के प्रकाशन बहुत ही मूल्यवान हैं और उसने अपने देश के सर्वोत्तम मस्तिष्क के लोगों की रचनाओं को सहज-सरल भाषा में प्रकाशित किया है। मैं सदा से ही 'मंडल' की बहुमूल्य सेवाओं का सम्मान करता रहा हूं। इस अवसर पर मेरी हार्दिक शुभ कामना है। 'मंडल' और भी उन्नति करे और देशवासियों के मानसिक स्तर को इसी प्रकार ऊंचा करता रहे। मेरी हार्दिक बधाई स्वीकार करें।

—हजारीप्रसाद द्विवेदी

'मंडल' की साहित्यिक सेवाओं से मैं अपरिचित नहीं हूं। इस उदात्त कार्य के लिए 'मंडल' को बधाई। भारत जैसे निर्धन देश में सत्साहित्य को जितने कम मूल्य में सुलभ किया जाय, उतना ही अच्छा है।

—बच्चन

हिन्दी में 'मंडल' अपनी ऐतिहासिक सेवा से अमर हस्ताक्षर बन गया है। उसके समकक्ष आज दूसरी संस्था नहीं है। मैं उसके शतायु होने की मंगलकामना करता हूं।

—सोहनलाल द्विवेदी

जब हम 'मंडल' के अर्ध-शताब्दी के उज्ज्वल इतिहास का विहंगावलोकन करते हैं तो सचमुच उसके कार्य-कलापों और प्रवृत्तियों का व्यापक और महत्वपूर्ण स्वरूप देखकर आश्चर्य होता है। अपने विद्यार्थी-जीवन में मैंने 'मंडल' से प्रकाशित 'गांधी साहित्य' और 'त्यागभूमि' पत्रिका से बड़ी प्रेरणा पाई थी। मेरे जैसे हजारों युवकों का भी यही अनुभव था। इसलिए 'सस्ता साहित्य मंडल' की ओर मैंने हमेशा ही अत्यन्त ममत्व और आदर की भावना से देखा है। मेरी कामना है कि वह भविष्य में भी दीर्घकाल तक राष्ट्र की ठोस सेवा करता रहे।

—अनन्त गोपाल शेवड़े
(संचालक, नागपुर टाइम्स)

'मंडल' ने सदैव भारतीय राष्ट्रीयता और संस्कृति के पोषक साहित्य का प्रकाशन किया है और महात्मा गांधी तथा विनोबा के विचारों को प्रकाशन में लाने का श्रेय भी उसे है। इनके अतिरिक्त भारत के सभी क्षेत्रों में कार्य करने वाले महान चिंतकों के विचारों को भी पुस्तकों के रूप में वह प्रस्तुत करता आ रहा है।

मनुष्य मन, शरीर और आत्मा का समन्वित रूप है। 'मंडल' के साहित्य ने उसके प्रत्येक अंग को स्वस्थ और पुष्ट रखने का प्रयास किया है और उसके व्यक्तित्व के पूर्ण विश्वास की दिशा सुझाई है। 'मंडल' अपने उद्देश्य में निरन्तर अग्रसर होता रहे, यही कामना है।

—विनय मोहन शर्मा

'सस्ता साहित्य मंडल' हिन्दी-साहित्य की जो सेवा कर रहा है, उसका मैं हृदय से प्रशंसक रहा हूं और उसकी पुस्तकों को मैं बड़े ध्यान से पढ़ता हूं।

—माधव प्रसाद बिड़ला

'मंडल' की पुस्तकें बहुत अच्छी हैं। 'संस्कृत-साहित्य-सौरभ-माला' से संस्कृत न जाननेवाले भी संस्कृत-साहित्य का स्वाध्याय कर सकते हैं।

—भरतराम

'सस्ता साहित्य मंडल' से मेरा सम्बन्ध प्रायः प्रारम्भ सें रहा है और हिन्दी साहित्य के क्षेत्र में जो सेवाएं 'मंडल' की रही हैं, वे अत्यन्त सराहनीय हैं। 'मंडल' के भावी विकास के लिए मेरे दो सुझाव हैं :

पहला तो यह कि 'त्यागभूमि' जैसी पत्रिका का फिर से प्रकाशन होना चाहिए, जिससे स्वस्थ साहित्य-निर्माण की प्रेरणा मिले और स्वतन्त्र विचार को प्रोत्साहन मिले। आज देश को निर्भीक विचारकों की बड़ी आवश्यकता है। 'त्यागभूमि' ने उस पराधीन युग में निर्भीक विचारकों को उत्पन्न किया था। आज फिर इसकी जरूरत है।

दूसरा सुझाव यह है कि 'मंडल' से विभिन्न विषयों में प्रमाणित ग्रन्थ मूल और अनुवाद दोनों प्रकाशित कराये जायं। हिंदी को सबल बनाने के लिए इसकी बड़ी आवश्यकता है।

मैं आपके स्वर्ण जयन्ती वर्ष के उपलक्ष में प्रकाशित होने वाले विशेषांक की सफलता की हार्दिक कामना करता हूं।

—प्रेमनारायन माथुर

'मंडल' एक विहंगम दृष्टि में

□

यशपाल जैन

स्थापना

आज से लगभग पचास वर्ष पूर्व महात्मा गांधी ने देश के जन-साधारण में एक अद्भुत चेतना उत्पन्न कर दी थी और अनेक रचनात्मक प्रवृत्तियों को प्रारंभ और उत्प्रेरित किया था। इन प्रवृत्तियों में राष्ट्र-भाषा हिंदी को लोक-प्रिय बनाने और उसके माध्यम से राष्ट्र-निर्माणकारी साहित्य का सृजन तथा प्रसार करने की भी एक प्रवृत्ति थी। ऐसे समय में सन् १९२५ में, गांधीजी के आशीर्वाद तथा स्वर्गीय श्री जमनालाल बजाज की प्रेरणा एवं प्रयत्न से 'सस्ता साहित्य मंडल' की स्थापना हुई।

उद्देश्य

प्रारंभ में 'मंडल' का कार्यालय अजमेर में रखा गया और उसके उद्देश्य निम्न प्रकार निश्चित कियेगए :

१. हिंदी में उच्च कोटि के साहित्य का निर्माण करना तथा उसको प्रोत्साहन देना।

२. उसे जन-साधारण के लिए यथासंभव सस्ते-से-सस्ते मूल्य में सुलभ करना।

३. इन उद्देश्यों की पूर्ति में प्रत्यक्ष अथवा परोक्ष रूप से सहायक ऐसे कार्य करना, जैसे पुस्तकों तथा पत्रों का प्रकाशन; पुस्तकें लिखाने, उनका संकलन और संपादन कराने अथवा अन्य भाषाओं से अनुवाद कराने आदि के लिए योग्य व्यक्तियों की सेवाएं प्राप्त करना, आदि।

यहां यह उल्लेख कर देना आवश्यक है कि इस कार्य के संपादन में मुनाफे की भावना को कोई स्थान न तब था, न अब है। इसी उद्देश्य को ध्यान में रखकर 'मंडल' का संविधान तथा नियमावली तैयार की गई और उसे सन् १८६० के सोसाइटीज रजिस्ट्रेशन एक्ट के अन्तर्गत एक 'लोकहितार्थ संस्था' के रूप में पंजीकृत करा दिया गया। उसके संस्थापक सदस्यों में स्वर्गीय श्री जमनालाल बजाज, श्री घनश्यामदास बिड़ला, स्वामी आनन्द, श्री हरिभाऊ उपाध्याय, श्री महावीरप्रसाद पोद्दार आदि थे।

कोष

'मंडल' का प्रारंभ बहुत थोड़ी पूंजी से किया गया था। 'तिलक-स्वराज फंड' से श्री जमनालालजी बजाज ने रु० २५००० दान-स्वरूप दिलवाये थे। बाद में श्री घनश्यामदास बिड़ला आदि दाताओं से कुछ राशि और मिली और इस प्रकार कुल मिलाकर उसका कोष रु० ८०,००० का हो गया। इस राशि को छोड़कर 'मंडल' को जनता या किसी सरकार से कोई आर्थिक सहायता प्राप्त नहीं हुई।

प्रथम प्रकाशन

'मंडल' ने अपने कार्य का शुभारंभ महात्मा गांधी की सुविख्यात पुस्तक **'दक्षिण अफ्रीका के सत्याग्रह का इतिहास'** से किया, जो १९२५ में प्रकाशित हुई।

विकास

चूंकि 'मंडल' देश में अपने ढंग की पहली संस्था थी और उसे अनेक उच्चकोटि के राष्ट्रीय नेताओं का सहयोग प्राप्त था, अतः उसकी ओर शीघ्र ही जन-साधारण, विद्वानों तथा साहित्यकारों का ध्यान आकृष्ट हुआ। अल्पकाल में छोटी-बड़ी दर्जनों पुस्तकें प्रकाशित हो गईं। उनमें कुछ मौलिक थीं, कुछ अनूदित; लेकिन वे सब-की-सब सरल भाषा में थीं, प्रामाणिक थीं, उनकी छपाई साफ और उनका रूपरंग सादगी-युक्त बढ़िया था। सबसे महत्त्वपूर्ण बात यह थी कि उनका मूल्य इतना कम रखा गया था कि साधारण स्थिति के औसत पाठक भी उन्हें आसानी से खरीद सकें।

'त्यागभूमि'

१९२८ में 'मंडल' ने **'त्यागभूमि'** नामक एक मासिक पत्रिका का प्रकाशन आरंभ किया। श्री हरिभाऊ उपाध्याय तथा श्री क्षेमानन्द राहत उसके संपादक थे। अपने साहित्यिक महत्त्व तथा ऊंचे मान दंड के कारण यह पत्रिका हिंदी के पाठकों में खूब लोकप्रिय हुई, परन्तु जब

तत्कालीन सरकार ने उग्र राजनैतिक लेखादि छापने के कारण जमानत मांगी, तो सन् १९३३ में उसका प्रकाशन स्थगित कर देना पड़ा, क्योंकि जमानत देकर पत्र को चलाने की नीति नहीं थी।

सरकार का विरोध

जैसे-जैसे 'मंडल' का कार्य और देश का स्वाधीनता आंदोलन बढ़ता गया, वैसे-वैसे सरकार अधिकाधिक शंकाशील तथा विरोधी होती गई। परिणामतः 'मंडल' की दस पुस्तकें जब्त हुईं। बाद में, सन् १९३२ में, सरकार ने उसके कार्यालय तथा प्रेस पर ताला भी डाल दिया। छः मास तक मंडल' का कार्य बंद रहा। अतः 'मंडल' को इस काल में भारी आर्थिक क्षति हुई। १९३३ में प्रेस से फिर जमानत मांगी गई और तब यह उचित समझा गया कि सरकार की निरंकुशता के आगे झुकने की अपेक्षा प्रेस को बंद कर दिया जाय।

एक समस्या

उक्त बातों के अतिरिक्त 'मंडल' के सामने एक और गंभीर समस्या थी। 'मंडल' के अधिकांश सहयोगी एवं परामर्शदाता राष्ट्रीय नेता तथा कार्यकर्त्ता थे और प्रायः जेल के सींखचों के पीछे बंद कर दिये जाते थे। नतीजा यह होता था कि 'मंडल' के कार्य की जड़ जमने की संभावना बहुत कम रहती थी और बीच-बीच में आनेवाली इन विघ्न-बाधाओं से काम में काफी रुकावट होती थी। इसलिए १९३४ में 'मंडल' का प्रधान कार्यालय अजमेर के सीमित क्षेत्र से दिल्ली के अपेक्षाकृत व्यापक क्षेत्र में ले आया गया।

अजमेर में कार्य

८-९ वर्ष की अवधि में 'मंडल' ने अजमेर में सुविख्यात भारतीय तथा विदेशी लेखकों, विचारकों, एवं राजनैतिक नेताओं की कोई ६७ पुस्तकें प्रकाशित कीं, जिनमें गांधीजी की **'आत्मकथा'** के अलावा **'खादी का अर्थशास्त्र'**, **'गीता-बोध'**, **'क्या करें ?'**, **'अनीति की राह पर'**, **'जीवन-साहित्य'**, **'एशिया की क्रांति'** आदि प्रमुख थीं।

दिल्ली की प्रवृत्तियां

अबतक 'मंडल' ने अपना ध्यान मुख्यतः गांधीजी तथा कतिपय अन्य भारतीय नेताओं और टाल्स्टाय, क्रोपाटकिन आदि पश्चिमी विचारकों की पुस्तकों के प्रकाशन पर ही केन्द्रित किया था। लेकिन अब उसका ध्यान अन्य भारतीय विद्वानों तथा नेताओं की रचनाओं की ओर भी गया। दिल्ली आने पर सबसे बड़ा ग्रंथ डा० पट्टाभि सीतारामैया-लिखित **'कांग्रेस का इतिहास'** प्रकाशित हुआ। यह १९३५ की बात है, जबकि कांग्रेस ने अपनी स्वर्ण-जयन्ती मनाई थी। अगले वर्ष, '१९३६ में, 'मंडल' ने पं० जवाहरलाल नेहरू की विश्वविख्यात आत्मकथा **'मेरी कहानी'** के नाम से निकाली। इस महान् लेखक की और भी कई पुस्तकें प्रकाशित हुईं, जिनमें **'विश्व इतिहास की झलक'**, **'हिन्दुस्तान की कहानी'** आदि मुख्य हैं। श्री राजगोपालाचार्य, आचार्य विनोबा भावे, श्री वियोगी हरि, श्री काकासाहब कालेलकर, श्री हरिभाऊ उपाध्याय, श्री हजारीप्रसाद द्विवेदी, श्री घनश्यामदास बिड़ला तथा अन्य लेखकों एवं विचारकों की पुस्तकें भी प्रकाशित हुईं और अनेक नामी पश्चिमी विचारकों तथा विद्वानों की भी रचनाएं 'मंडल' से निकलीं।

'जीवन-साहित्य'—सन् १९४० में 'मंडल' ने समाज का अहिंसा के आधार पर नवनिर्माण करने के उद्देश्य से **'जीवन-साहित्य'** नामक मासिक पत्र प्रारंभ किया, जो अबतक चल रहा है। प्रारंभ में श्री हरिभाऊ उपाध्याय उसके संपादक थे। बाद में यशपाल जैन उसमें सम्मिलित हुए और हरिभाऊजी के देहावसान के बाद वे ही उसका संपादन कर रहे हैं।

१९४२ की क्रांति

सन् १९४२ में महात्मा गांधी के 'भारत छोड़ो' आन्दोलन के कारण देश में जोरों का दमन हुआ और लगभग सभी चोटी के राजनैतिक नेता पकड़ लिये गए। 'मंडल' का काम फिर से एक बार रुक गया। उस समय प्रधान कार्यालय के अतिरिक्त विभिन्न महत्वपूर्ण नगरों में 'मंडल' की छः शाखाएं थीं, जो धीरे-धीरे बंद करनी पड़ीं। 'मंडल' से जैसी पुस्तकें निकली थीं, उन्हें देखते उसका मार्ग सरल न था। तत्कालीन सरकार हमेशा उसकी पुस्तकों को वक्र दृष्टि से देखती थी और 'मंडल' की प्रगति के मार्ग में रोड़े अटकाने के लिए सदैव प्रस्तुत रहती थी। इस काल में 'मंडल' की गांधीजी लिखित 'अंग्रेजों

से मेरी अपील' तथा श्री महादेव देसाई लिखित 'जिन्दगी या मौत', ये दो पुस्तकें और जब्त हुईं। चार वर्ष बाद जब स्थिति कुछ सुधरी तो 'मंडल' ने फिर अपना काम शुरू किया।

नया युग : नया संकल्प

गांधी-साहित्य—इसके बाद स्वतंत्रता आई; लेकिन उसके साथ बहुत-सी कठिन समस्याएं उत्पन्न हो गईं। स्वतंत्रता की उपलब्धि के लगभग पांच मास पश्चात हमारे राष्ट्रपिता का उत्सर्ग हो गया। 'मंडल' ने एक नया संकल्प किया कि गांधीजी की संपूर्ण रचनाएं विधिवत् बड़े पैमाने पर हिंदी में प्रकाशित करे। उसी समय कार्य प्रारम्भ कर दिया गया। कागज आदि की कठिनाइयों के बावजूद अबतक इस ग्रंथ-माला में लगभग ५२५० पृष्ठ के दस भाग निकल चुके हैं।

इस काल में 'मंडल' का कार्य क्षेत्र अधिक व्यापक हो गया। उसने आचार्य विनोबा भावे की भी अनेक मौलिक साहित्यिक पुस्तकें प्रकाशित कीं।

गांधी-डायरी – गांधी साहित्य का प्रकाशन करते हुए विचार हुआ कि गांधीजी की विचारधारा के व्यापक प्रसार के लिए कोई विशेष उपाय होना चाहिए।

'गांधी डायरी' की कल्पना सामने आई। डायरी का प्रकाशन सन् १९५१ से प्रारंभ हुआ। हमें यह कहते हर्ष होता है कि इस प्रकाशन का सर्वत्र स्वागत हुआ और आज की डायरियों में वह सबसे अधिक लोकप्रिय है। इस डायरी की खास विशेषता यह है कि इसमें हर मास की हर तारीख को गांधीजी का उसी दिन का बोला या लिखा गया वचन दिया गया है।

पुस्तक-मालाएं

गांधी-साहित्य के विधिवत् प्रकाशन के साथ-साथ कुछ पुस्तक-मालाएं निकालने का आयोजन किया गया। हिंदी के व्यापक प्रचार में 'मंडल' अपना योगदान कर सके, इस दृष्टि से सोचा गया कि ३२-३२ पृष्ठ की कुछ ऐसी पुस्तकें निकाली जायं, जिनकी भाषा-शैली सरल-सुबोध हो और उन पुस्तकों के विषय ऐसे हों कि पाठक हमारे देश की विविधतापूर्ण महान् संस्कृति की जानकारी पा सकें। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए।

'समाज-विकास-माला' शुरू हुई। संतों, तीर्थों, नदियों, महापुरुषों की जीवनियों आदि तथा देशकी सार्वदेशिकता एवं अखंडता के पोषक विषयों पर इस माला में १७४ पुस्तकें निकलीं। सभी पुस्तकें सचित्र और आकर्षक थीं। बहुत-सी पुस्तकें सरकार द्वारा पुरस्कृत हुईं। इस माला की अब अनेक पुस्तकें अप्राप्य हैं। इन पुस्तकों में से कुछ को वर्गीकृत रूप में **'राष्ट्र-निर्माण-माला'** नाम से निकाला जा रहा है।

संस्कृत के प्राचीन ग्रंथों का परिचय देने के विचार से

'संस्कृत-साहित्य-सौरभ' के प्रकाशन का श्रीगणेश हुआ। उसकी पुस्तकों में मूल ग्रंथों का हिंदी मेंकथा-सार दिया गया है। उनके पठन-पाठन से संस्कृत-ग्रंथों को मूल रूप में पढ़ने की जिज्ञासा उत्पन्न होती है। इस माला में ३६ पुस्तकें अब वर्गीकृत की जा कर संयुक्त रूप में उपलब्ध हैं।

हमारे देश में बड़ा मूल्यवान लोक-साहित्य मौजूद है; लेकिन विधिवत् संकलन के अभाव में वह धीरे-धीरे लुप्त होता जा रहा है। अतः लोक-कथाओं का संग्रह करने की दृष्टि से

'लोक-कथा-माला' प्रारंभ हुई। इस माला में हिंदी की जनपदीय भाषाओं की लोक-कथाओं को पहले लेने की योजना बनाई गई। इसमें सात पुस्तकें निकलीं। पहली में हिंदी-परिवार की भाषाओं कीएक-एक नमूने की कहानी मूल भाषा में हिंदी अनुवाद के साथ दी गई है। शेष में बुंदेली, ब्रज, मालवी, मैथिली, गढ़वाली, आदि की लोक-कथाएं हैं।

इनके अलावा,

गांधीजी ने कहा था : इस माला में वर्तमान सभय की विविध समस्याओं पर प्रश्नोत्तर के रूप में गांधीजी के विचार दिये गए। सामान्य स्थिति के पाठक भी इन पुस्तकों को खरीद सकें, इसलिए उनका मूल्य बहुत कम रखा गया। इस माला में नौ पुस्तकें निकलीं।

प्रगति के पथ पर : इस माला की सात पुस्तकों में बताया गया कि स्वतंत्र होने के बाद हमारे देश के विभिन्न क्षेत्रों में क्या-क्या प्रगति हुई। प्रारम्भिक दो पुस्तकों में नेहरूजी के भाषणों के अंश देते हुए भावी भारत का चित्र प्रस्तुत किया गया।

(शेष पृष्ठ १८३ पर)

'मंडल' की स्थापना

वैजनाथ महोदय

पचास वर्ष बीत गये। सन् १९२५ की बात है। मैं तत्कालीन इन्दौर राज्य के शिक्षा-विभाग में एक माध्यमिक शाला का प्रधान-अध्यापक था। अचानक स्व० श्री हरिभाऊजी का पत्र मिला कि वे अहमदाबाद से अजमेर आ गये हैं।

बात यों हुई। स्व० जमनालालजी बजाज मूलतः राजस्थान के निवासी थे। काशीकावास उनका गांव था। वहां से वर्धा के सेठ बच्छराजजी उनको गोद लेकर वर्धा ले आए थे। फिर भी राजस्थान के प्रति स्वभावतः उनका आकर्षण था। राजस्थान देशी राज्यों का प्रदेश था। प्रजा दोहरी गुलामी में दबी हुई थी। राजनैतिक चेतना को वहां पनपने ही नहीं दिया जा रहा था। सेठजी को यह बहुत अखर रहा था। कांग्रेस भी नहीं चाहती थी कि वहां कोई राजनैतिक काम शुरू किया जाय। परन्तु चुप भी कैसे बैठे रहें? इसलिए कांग्रेस चाहती थी कि राजनैतिक काम नहीं तो न सही, परन्तु रचनात्मक काम तो अवश्य शुरू किया जाय। इस हेतु से वहां 'राजस्थान चरखा संघ' की स्थापना की गई और अहमदाबाद से श्री बलवंत सांवलाराम देशपाण्डे तथा हरिभाऊजी को इसके संचालन के लिए भेज दिया गया।

हरिभाऊजी मूलतः साहित्यिक पुरुष थे। इसलिए उनकी इन शक्तियों का पूरा-पूरा उपयोग हो, इस दृष्टि से अहमदाबाद के 'सस्तु साहित्य वर्धक कार्यालय' के जैसी कोई संस्था हिन्दी में भी हो, ऐसी सेठजी की बहुत दिनों से अभिलाषा थी। 'सस्ता साहित्य मंडल' के रूप में इस अभिलाषा को उन्होंने साकार किया। श्री घनश्यामदास बिड़ला इसके संस्थापक अध्यक्ष हुए और हरिभाऊजी प्रेरक संचालक। इस संस्था की स्थापना की सूचना देते हुए हरिभाऊजी ने मुझे आग्रहपूर्वक लिखा कि मैं इसके पुस्तक-संपादन का काम संभालूं। हम दोनों 'हिन्दी नवजीवन' में काम कर चुके थे। परन्तु 'हिन्दी नवजीवन' बन्द हो जाने के कारण मुझे इन्दौर आ जाना पड़ा। अब पुनः वैसा ही योग आया देखकर मैंने मंजूर किया और १९२६ के मध्य में मैं अजमेर पहुंच गया। 'मंडल' की योजना यह थी कि एक रुपये में ४०० पृष्ठ का चरित्र-निर्माण करनेवाला राष्ट्रीय-साहित्य ग्राहकों को दिया जाय। श्री जीतमलजी लूणिया 'मण्डल' के मंत्री नियुक्त किये गए।

जीतमलजी हरिभाऊजी के पुराने साथी थे। त्यागी और राष्ट्र-सेवा की भावना वाले। असहयोग के तूफानी युग में उन्होंने कई अच्छी पुस्तकें प्रकाशित की थीं। यह अनुभव तो था ही, वे काम में भिड़ गये। नया काम था! 'मंडल' का अपना छापाखाना नहीं था। अतः पुस्तकों की छपाई बनारस के लक्ष्मी नारायण प्रेस में होती थी। 'मंडल' के द्वारा प्रकाशित पहली पुस्तक—गांधीजी का 'दक्षिण अफ्रीका का सत्याग्रह' मेरा ही अनुवाद था। 'भारत के स्त्री-रत्न,' स्वेट मार्डन का 'दिव्य जीवन' श्री जगन्नारायण देव का 'ब्रह्मचर्य विज्ञान,' तिरुवल्लुवर का 'तामिल वेद' आदि उसके कुछ प्रारंभिक प्रकाशन थे। हाथीभाटा में श्री शंकरलालजी जज का मकान 'राजस्थान चरखा संघ' तथा 'सस्ता साहित्य मंडल' के कार्यालय और कार्यकर्त्ताओं का निवास था। जज साहब के चिरंजीव थे तो वकील, परन्तु संगीत के अप्रतिम प्रेमी थे। हमारा सारा अहाता दिन-रात संगीत से गूंजता रहता।

मैं पहुंचा तब 'सस्ता साहित्य मंडल' का सारा काम केवल दो आदमी सम्भाल रहे थे। एक थे श्री जीतमलजी और दूसरे थे उपर्युक्त श्रीजगन्नारायण देव। मैं तीसरा बन गया। हम लोग अजमेर पहुँचे, इससे पहले से हरिभाऊजी एक मासिक पत्र—'मालव-मयूर' चलाते थे। इसके प्रकाशक भी जीतमलजी ही थे। यह भी बनारस में ही छपता था। अहमदाबाद जाने से पहले श्री मार्तण्ड उपाध्याय—हरिभाऊजी के छोटे भाई—इन्दौर में सरकारी शाला में पढ़ते थे। अहमदाबाद जाने पर हम आश्रम में ही रहने लग गये और मार्तण्डभाई वहां की राष्ट्रीय शाला में पढ़ने लगे। अजमेर पहुंचने पर इनकी स्कूली पढ़ाई बन्द

हो गई और वे मुझसे, प्राध्यापक श्री देवकीनन्दन शर्मा तथा श्री जयदेव वेदालंकार (इन्होंने वेदों पर भाष्य लिखे हैं) से पढ़ने लगे और 'सस्ता साहित्य मंडल' इनकी व्यावहारिक शाला बन गया। साहित्य, प्रबंध, छपाई आदि हर काम में वे रुचि लेने लगे।

शुरू-शुरू में हाथीभाटा वाले मकान में 'मंडल' का कार्यालय केवल एक कमरे में था। वहीं उसका दफ्तर, 'पुस्तक भण्डार, संपादक, व्यवस्थापक की बैठक सबकुछ था। 'मंडल' की पुस्तकों का साहित्य जगत् में अच्छा स्वागत हुआ। उसका काम बढ़ा। मेरी मदद के लिए श्री मुकुट बिहारी वर्मा (जो बाद में वर्षों दैनिक हिन्दुस्तान के संपादक रहे) आ गये। श्री कृष्णचन्द्रजी विद्यालंकार तब प्रसिद्ध इतिहासकार श्री गौरीशंकर हीराचंद ओझा के साथ काम करते थे। वे भी 'मंडल' में दिलचस्पी लेने लगे। 'मंडल' की प्रगति, उसके साहित्य का सुरुचिपूर्ण स्तर तथा 'मालव मयूर' के संपादन को देखकर श्री घनश्यामदास बिड़ला तथा प्रबंधक-मंडल को लगा कि इस सारे प्रयास का व्यवस्थित विकास और विस्तार होना चाहिए। पुस्तकों की छपाई बनारस में होती थी। इसके लिए जीतमलजी को अनेक बार लम्बे-लम्बे समय तक बनारस जाकर रुकना पड़ता था। इस कारण प्रबंध आदि में बड़ी असुविधा होती थी। हिसाब-किताब भी पिछड़ जाता था। इसके अलावा प्रबंधक-मंडल यह भी महसूस करता था कि मंडल की अपनी एक राष्ट्रीय विचारवाली पत्रिका भी हो। 'मालव मयूर' ऐसा ही मासिक था, परन्तु उसका क्षेत्र सीमित और आकार-प्रकार छोटा लग रहा था। इससे पहले 'प्रभा' (कानपुर) अवश्य एक ऐसी पत्रिका थी, परन्तु वह बन्द हो चुकी थी। उसकी पूर्ति करनेवाली तेजस्वी पत्रिका की जरूरत हिन्दी में बहुत महसूस की जा रही थी। प्रबंधक-मंडल चाहता था कि इस क्षति की पूर्ति 'मंडल' करे। स्वभावत: इस सारे काम के लिए एक सुव्यवस्थित और सुसंगठित प्रयास की जरूरत थी। इसके लिए 'मंडल' का अपना स्वतंत्र प्रेस भी होना जरूरी था, अत: निश्चय किया गया कि 'मंडल' को एक बड़े मकान में ले जाया जाय और वहीं उसका प्रेस भी हो। तदनुसार केसर गंज में 'मंडल' का कार्यालय चला गया। वहीं प्रेस भी स्थापित हो गया। पत्रिका हरिभाऊजी उपाध्याय तथा श्री क्षेमानन्दजी राहत के संपादन में निकलने लगी। पत्रिका में मदद के लिए श्री रामनाथजी 'सुमन' को बुला लिया गया। पत्रिका में 'आधी दुनिया' अर्थात् स्त्रियों के भाग का संपादन-संकलन मुकुटजी करने लगे। प्रेस का काम श्री नंदकिशोरजी दुबे ने संभाल लिया।

परन्तु इस सारी प्रवृत्तियों में एक और मुख्य शक्ति थी, जो बड़ी मुस्तैदी, दक्षता और उत्कटता के साथ काम कर रही थी। यह थे श्री नृसिंहदासजी अग्रवाल। मूलत: मद्रास में इनकी औषधियों की एक दुकान थी, परन्तु १९२१ के तूफान में जो असंख्य ज्ञात-अज्ञात लोग अपना चलता-चलाता कामकाज और कारोबार छोड़कर, स्वाधीनता के युद्ध में कूद पड़े थे, उनमें से यह भी एक थे। हम लोग—हरिभाऊजी और मैं—जब हिन्दी नवजीवन में काम करते थे, तब नृसिंहदासजी और उनकी पत्नी सौ, शान्ति देवी प्राय: हमारे दफ़्तर में आया करते थे। जब उन्होंने देखा कि हरिभाऊजी अजमेर आ गये हैं, 'सस्ता साहित्य मंडल' की स्थापना हो गई तथा 'राजस्थान चरखा संघ' व्यवस्थित रूप से काम कर रहा है तो वे भी इस मंडली में शरीक हो गये। 'सस्ता साहित्य मंडल' की व्यवस्था का भार उन्होंने संभाल लिया। जहांतक मुझे ध्यान है, अन्य सब प्रवृत्तियों में उनका भी मुख्य रूप से भाग रहा है।

जमनालालजी, हरिभाऊजी तथा नृसिंहदासजी सभी की इच्छा थी कि इन सब कार्यकर्त्ताओं के रहने के लिए एक स्वतंत्र स्थान हो और वहां का सारा वातावरण आश्रम के ढंग का हो। इसके परिणाम-स्वरूप हटूण्डी में 'गांधी आश्रम' की स्थापना हुई। हम सब लोग वहीं रहने चले गये। वहां अब 'महिला सेवक संघ' काम कर रहा है।

हमारी इस मंडली में कुछ व्यक्ति और जुड़ गये। ये थे श्री काशिनाथ त्रिवेदी, श्री गोपीवल्लभ उपाध्याय, श्रीगोपीकृष्ण विजयवर्गीय और उनके छोटे भाई श्री हरिकृष्ण प्रेमी। 'मंडल' के व्यवस्था-विभाग में काम करने वाले भी बढ़ गये। इनमें मुख्य थे श्री रामलालजी, श्री निरोतीलालजी और श्री हरिशंकर सरमंडल। प्रेस में फोरमैन थे श्री रामप्रसाद। बनारस के लक्ष्मीनारायण

प्रेस से इन्हें खासतौर पर लाया गया था। ये सारे कार्यकर्ता बड़े प्रेम से 'मंडल' में काम करते थे।

'त्यागभूमि' उस समय की यदि एकमात्र नहीं तो प्रमुख हिन्दी पत्रिका थी। इसमें भी विज्ञापन नहीं लिये जाते थे। समस्त हिन्दी संसार में इसकी सात्विक तेजस्विता की धाक थी। जीवन-जागृति बल और बलिदान की इस पत्रिका का ध्येय वाक्य था:

"आत्मसमर्पण होत जहँ, जहँ विशुद्ध बलिदान।
पर मरिबे की साध जहँ, तहँ हैं श्री भगवान्॥"

'मंडल' के कुछ प्रमुख संस्थापकों की तो अभिलाषा थी कि इसका प्रचार देश के साढ़े सात लाख गांवों में हो। पर यह एक सपना ही रह गया। वह तो शुरू से आखीर तक घाटे में ही रही। इस घाटे की पूर्ति 'मंडल' के बस की बात नहीं थी। स्वाधीनता का आन्दोलन तेज हुआ तब इसे साप्ताहिक बना दिया गया था और जैसे ही नमक-सत्याग्रह शुरू हुआ, इसका प्रकाशन बन्द कर दिया गया।

'मंडल' की पुस्तकें काफी लोकप्रिय हुईं। पचास वर्ष पहले की छपाई, सफाई और मुद्रण कला में और इनके आज के स्तर में स्वभावतः काफी अन्तर है। परन्तु तब मार्तण्डभाई अपनी पढ़ाई के अलावा 'मंडल' के काम में बहुत दिलचस्पी लेते रहते थे। हर छोटी-से-छोटी बारीकी की तरफ उनका ध्यान रहता और व्यक्तिगत दिलचस्पी लेकर कोशिश करते कि अमुक कमी या त्रुटि को कैसे दूर किया जाय।

हरिभाऊजी निःसन्देह 'मंडल' की प्रमुख और एकमात्र प्रेरक शक्ति थे, परन्तु इसके अलावा केवल अजमेर-मेरवाड़ा ही नहीं, राजस्थान और मध्य भारत के भी वे एक प्रेरणास्रोत थे। अतः इस भाग की विविध प्रवृत्तियों के मार्ग-दर्शन के लिए भी इनकी बुलाहट हुआ करती और स्वभावतः इनको वहां जाना पड़ता। परन्तु अब 'मंडल' में—उसके संपादकीय विभाग, व्यवस्था-विभाग तथा प्रेस में ऐसे अनुभवी साथी एकत्र हो गये थे कि हरिभाऊजी के केवल प्रासंगिक मार्ग-दर्शन और सलाह-मशविरे मात्र से काम चल जाता। उन्हें तफसील में पड़ने की जरूरत न रहती।

'सस्ता साहित्य मंडल' की स्थापना और उसकी कार्य-प्रवृत्तियों का एक और भी आनुषंगिक परिणाम हुआ। वह गांधी-विचारवाले कार्यकर्त्ताओं का एक केन्द्र बन गया। इस कारण न केवल अजमेर नगर के, बल्कि संपूर्ण राजस्थान के सार्वजनिक जीवन पर भी इसका काफी असर हुआ। राजनीति का भी बहुत हद तक शुद्धीकरण हुआ और अंततः तो इस मंडली में और केन्द्र में काम करने वाले कार्यकर्ताओं के मस्तक पर राजस्थान और मध्य भारत के नेतृत्व का भार आ गया, परन्तु उसका विस्तार यहां अप्रस्तुत होगा।

मैं तो 'मंडल' में सक्रिय रूप से केवल तीन-चार साल ही काम कर सका। उसके बाद राजनीति में चला गया। तब से पचास साल बीत गये, पर उन दिनों की स्मृति आज भी रोमांचित कर देती है। □

[पृष्ठ १८० का शेष]

उपन्यास-माला : भारतीय भाषाओं के साहित्य और साहित्यकारों को एक-दूसरे के निकट लाने के लिए यह माला निकाली। इसमें प्रत्येक भाषा का एक-एक चुना हुआ उपन्यास दिया। मूल हिंदी के अतिरिक्त मराठी, कन्नड़, बंगला, तेलुगु तथा गुजराती आदि भाषाओं के उपन्यासों के हिंदी-रूपान्तर निकले।

सुलभ-विज्ञान-माला : विज्ञान की प्रगति बड़ी तेजी से हो रही है, लेकिन उसकी जानकारी बहुत कम लोगों को है। इस अभाव की पूर्ति के लिए यह माला शुरू की गई। इसमें प्रकाश, ध्वनि, गरमी तथा धरती और आकाश की जानकारी देनेवाली पुस्तकें निकलीं, जिनमें से दो सरकार द्वारा पुरस्कृत हुईं। बढ़िया छपाई, अनेक चित्र तथा रोचक कलेवर, यह इन पुस्तकों की विशेषता है।

मानव की कहानी : इस माला की चार पुस्तकों में पृथ्वी, जीव तथा मनुष्य के क्रमिक विकास की जानकारी दी गई है।

जीव-जगत की कहानी : जल, थल तथा नभ में विचरण करनेवाले जीवों एवं पक्षियों की सचित्र जानकारी इन पुस्तकों में विशेष रूप से दी गई है।

तुलसी-राम-कथा : तुलसीकृत रामायण के आधार पर १४ पुस्तकों में श्रीराम की कथा बीच-बीच में चौपाइयों तथा चित्रों सहित दी गई। बालकों एवं विद्यार्थियों के अलावा जन-साधारण के लिए भी यह माला अत्यंत उपयोगी है। इसे अब नये रूप में चार भागों में प्रकाशित किया गया है।

बाल-साहित्य-माला : सुन्दर, सुरुचिपूर्ण एवं मनोरंजक साहित्य बालकों के लिए सुलभ करने के विचार से यह माला निकाली गई। अबतक कई पुस्तकें इसमें निकल चुकी हैं। सब पुस्तकें रोचक सचित्र एवं मनोरंजक हैं।

इन मालाओं के अतिरिक्त अनेक बड़ी-बड़ी पुस्तकें प्रकाशित हुई हैं। 'मंडल' की पुस्तकों की सूची पर निगाह डालने से पाठक स्वयं अनुमान करेंगे कि 'मंडल' पुस्तकों के चुनाव में कितना सावधान है।

सुहावने ऋण की मनभावनी कथा

□

काशिनाथ त्रिवेदी

यज्ञ, दान और तप की तरह ही ऋण के भी अपने सात्विक, राजस और तामस प्रकार होते हैं। तामसी और राजसी ऋण अपने भयावने और लुभावने स्वरूप के कारण हमारी दुनिया के आपसी व्यवहार में अनिष्टकारी और अनर्थकारी सिद्ध हुए हैं, इसलिए हमारे ऋषियों और मुनियों ने हमें बराबर सलाह दी है कि हम अपने बसभर ऐसे ऋणों से स्वयं बचें और दूसरों को भी बचाते रहें। मानव-समाज के नित्य के व्यवहार में आर्थिक ऋण का स्वरूप आज इतना भयावना और सर्वनाशकारी बना है कि हर समझदार और हयादार आदमी उससे हर हालत में बचना ही पसन्द करता है। पर सात्विक ऋण की बात कुछ और ही है। अपने इस प्राचीन देश में मातृ-ऋण, पितृ-ऋण, देव-ऋण, ऋषि-ऋण, गुरु-ऋण, मित्र-ऋण और ऐसे ही दूसरे ऋणों को सात्विक ऋण माना है। मानव-मन ने इन ऋणों का सहर्ष स्वागत किया है और इनसे उऋण होने के लिए अपने प्राणों को भी प्रसन्नता-पूर्वक दांव पर चढ़ा कर एक अपूर्व धन्यता और कृतार्थता का अनुभव किया है। इस अर्थ में वे सारे सात्विक ऋण हमारे लिए सुहावने और मनभावने बने हैं। मानव-मन को प्रेरित, पुलकित, आलोकित करनेवाले साहित्य का और साहित्यकार का ऋण भी सात्विक ऋण ही होता है। यह ऋण तारक होता है, मारक नहीं। मानव-समाज के सही और सर्वांगीण विकास में इस ऋण का अपना विशेष योगदान रहा है। यह ऋण निरन्तर बढ़ता रहता है, फिर भी यह किसी को दबाता-मिटाता नहीं, दीन, दलित और पीड़ित बनाता नहीं। इसकी यही महिमा है और ऐसा ही महत्त्व है। वेद-काल से लेकर आज-तक इस देश में देवों, ऋषियों, मुनियों, साधु-सन्तों, आचार्यों और गुरुओं का यह ऋण मानव-जीवन को अन्दर और बाहर से संस्कारी, समृद्ध, पुष्ट और परिपक्व बनाने में अपना अनमोल योगदान देता रहा है। आज 'सस्ता साहित्य मंडल' की स्वर्ण जयन्ती के निमित्त से मैं अपने पर चढ़े ऐसे ही सुहावने और मनभावने ऋण की यह कथा लिख रहा हूं।

५१ साल पहले की बात है। उन दिनों मैं इन्दौर में एक प्रवासी विद्यार्थी के रूप में रह रहा था। क्रिश्चियन कॉलेज में पढ़ता था। तभी सन् १९२५ में एक दिन अनायास स्वर्गीय हरिभाऊजी उपाध्याय से वहां पहला परिचय हुआ। यह परिचय उत्तरोत्तर बढ़ता गया और इसकी परिणति हमारी घनी पारिवारिकता में हुई। उन्हीं दिनों इन्दौर में ही श्रद्धेय वैजनाथजी महोदय से भी परिचय हुआ। यह परिचय भी पारिवारिकता में बदला। सन् १९२५ में ही मैंने पहली बार गांधीजी को उनके नाम और काम से जाना और मैं उनके विचारों की ओर सहसा आकर्षित हुआ। खण्डवा के 'कर्मवीर' कार्यालय में बैठकर मैंने जीवन में पहली बार गांधीजी को पढ़ा। कलकत्ते की 'हिन्दी पुस्तक-एजेन्सी' ने उन दिनों 'यंग इण्डिया' में छपे गांधीजी के लेखों के संकलन कई खण्डों में प्रकाशित किये थे। मैं इन सब खण्डों को क्रम-क्रम से पढ़ गया। मेरे युवक मन पर गांधीजी की विचार-धारा का गहरा और स्थायी प्रभाव पड़ा। उन दिनों मैंने उन्हें पढ़ा-भर था, पर वह पढ़ना भी उन्हें प्रत्यक्ष देखने-सुनने से अधिक प्रभावशाली बन गया और मेरे मन ने उनको पूरी तरह अपना लिया। सच्चे और अच्छे साहित्य का यह जो पहला स्पर्श मुझे हुआ, वह मुझे नया जीवन दे गया, नई दृष्टि दे गया, नए रास्ते पर चलने की प्रेरणा और शक्ति दे गया। मुझे किसी की सलाह नहीं लेनी पड़ी। किसी से कुछ पूछना-समझना नहीं पड़ा। गांधीजी के जीवन, कार्य और विचार के प्रति, उनकी उदात्त जीवन-दृष्टि के प्रति, १९ साल की भावुकता-भरी उम्र में मेरी जो श्रद्धा और आस्था बैठी, वह तबसे लेकर आजतक उत्तरोत्तर दृढ़ ही होती चली गई है और मानता हूं कि इस जीवन के अन्त तक दृढ़ ही होती चलेगी। गांधीजी को पढ़कर और समझकर आज से ५१ बरस पहले

जिस धन्यता और सार्थकता का अनुभव किया था, उसकी मात्रा आधी शती के इस अपूर्व और दीर्घकाल में अधिकाधिक बनी हुई है। कभी एक क्षण के लिए भी मन में इस बात का पछतावा नहीं जागा कि गांधीजी को अपनाकर और उनके रास्ते चलने का लूला-लंगड़ा प्रयत्न करके मैंने कहीं कुछ खोया है। इसलिए अपने अनुभव के ज़ोर पर मैं कहता हूं कि गांधीजी जैसों का यह सात्विक ऋण बहुत ही सुहावना और मनभावना होता है। यह उद्धारक है, मारक नहीं।

सन् १६२५ में गांधीजी को पढ़ने-समझने के बाद उसी साल मैंने चरखा चलाना सीखा, खादी पहनना शुरू किया और मन-ही-मन यह संकल्प भी कर लिया कि मैं कभी कोई सरकारी नौकरी नहीं करूंगा। इस संकल्प ने आगे का मेरा रास्ता बहुत आसान बना दिया। सन् १६२८ में मैंने इन्दौर क्रिश्चियन कॉलेज के विद्यार्थी के नाते बी० ए० की परीक्षा दी। परीक्षा समाप्त होने के बाद परीक्षाफल का और प्रमाणपत्र का रास्ता देखे बिना ही मैं स्वर्गीय हरिभाऊजी उपाध्याय के पास अजमेर पहुंच गया। उन दिनों 'सस्ता साहित्य मंडल' का कार्यालय वहीं था। 'मंडल' की ओर से 'त्यागभूमि' नामक मासिक पत्रिका हरिभाऊजी के संपादकत्व में निकलने लगी थी। साहित्य-जगत् में उन दिनों उसके नाम की बड़ी धूम थी और उसकी धाक-साख भी काफी थी। मुझे इसी पत्रिका के सम्पादक-मंडल में जगह मिली। उन दिनों 'मंडल' के और 'त्यागभूमि' के कार्यालय में वैजनाथजी महोदय, क्षेमानंदजी राहत, गोपीवल्लभजी उपाध्याय, मुकुट बिहारीजी वर्मा, कृष्णचन्द्रजी विद्यालंकार, रामनाथजी 'सुमन', और हरिकृष्णजी प्रेमी जैसे प्रसिद्ध और उदीयमान लेखक, कवि और विचारक कार्यरत थे। तप, त्याग, सेवा, समर्पण और साधना में लीन जीवन बितानेवालों का वह एक अनोखा जमघट था। सबके मन में एक अजब-सी मस्ती थी, और आंखों में नित नये सपनों की खुमारी थी। उल्लास और उमंग से उछलते दिल दिन-रात का भेद भूलकर अपनी-अपनी रुचि के कामों में डूबे रहते थे। नए-नए प्रसंग, नई चुनौतियां, नए सवाल, नित नए आवाहन, इन सबके बीच समय तो हिरन की तरह चौकड़ियां भरता हुआ बीतता जाता था। उकताने-सुस्ताने की फ़ुरसत किसे थी? एक अजब जमाना था और एक अजब-सी हवा बह रही थी। उस समय हम सब अपने-अपने काम में अन्दर से और बाहर से जुड़े हुए, भीगे हुए, सुध-बुध भुलाए हुए, डूबे पड़े रहते थे। तब जहां सारे देश के लिए गांधीजी प्रेरणा और पुरुषार्थ के अजस्र स्रोत का काम कर रहे थे, वहां हमारे 'मंडल' और 'त्यागभूमि' परिवार के लिए हरिभाऊजी नित नई प्रेरणा के और नित नए प्रकाश के स्रोत बने हुए थे। उन दिनों की उस आपसी आत्मीयता, पारिवारिकता, घनिष्ठता और मुक्तता की मीठी याद आज भी हमारे मनःप्राण को मिठास से भर देती है।

उन दिनों गुजरात के सूरत जिले की बारडोली तहसील के किसानों ने बढ़े हुए लगान के विरोध में सत्याग्रह की लड़ाई छेड़ रखी थी। गांधीजी के मार्गदर्शन में वल्लभभाई पटेल बारडोली के किसानों का नेतृत्व कर रहे थे। उनके कुशल और चौकस नेतृत्व ने बारडोली के किसानों में जो चेतना जगाई, जो जान फूंकी, साहस और शौर्य के साथ त्याग और बलिदान की जो मशाल जलाई, उसका बहुत गहरा असर बारडोली की, गुजरात की और हिन्दुस्तान की जनता पर हुआ। आखिर अंग्रेज सरकार झुकी। बारडोली के किसानों की भारी जीत हुई। विजयी बारडोली का डंका सारे देश में बज उठा। गुजरात की जनता ने वल्लभभाई की सरदारी को सराहा। गुजरात के सरदार सारे देश के सरदार बन गए और यह सरदारी उनके जीवन के साथ अन्त तक जुड़ी रही। बारडोली की इस अपूर्व विजय का आंखों देखा हाल अपने पाठकों तक पहुंचाने के लिए 'सस्ता साहित्य मंडल' ने अपने एक साथी श्री वैजनाथ महोदय को गुजरात भेजा। वे हफ़्तों तक बारडोली के उस इलाके में घूमे, जहां किसान भाइयों और बहनों ने बड़ी निर्भीकता से नित नई सूझ, साहस और हिम्मत के साथ, अंग्रेज सरकार के अन्यायों, अनीतियों और अत्याचारों का सामना अविचल भाव से किया था। गुजरात से लौटकर महोदयजी ने बारडोली के सफल सत्याग्रह का आंखों देखा हाल अपनी अनूठी शैली में लिख डाला। 'मंडल' ने 'विजयी बारडोली' के नाम से उसे पुस्तक-रूप में प्रकाशित किया। 'मंडल' का यह प्रकाशन

उन दिनों खूब लोकप्रिय हुआ। इसकी खूब सराहना की गई। इससे खूब प्रेरणा ली गई। एक के बाद, एक कई आवृत्तियां इसकी निकलीं। कोई चार सौ पृष्ठों की यह किताब उन दिनों खूब चली। घर-घर में बड़े चाव से पढ़ी गई।

सन् १९२८-२९ के ज़माने में ही गांधीजी ने 'यंग-इण्डिया' और 'नवजीवन' में अपनी 'आत्मकथा' छपानी शुरू की थी। स्वर्गीय हरिभाऊजी ने 'मंडल' के लिए उसका हिन्दी अनुवाद किया और 'आत्मकथा अथवा सत्य के प्रयोग' के नाम से 'मंडल' ने उसे पुस्तक-रूप में प्रकाशित करके हिन्दी-भाषी जगत् को अपनी ओर से एक अनमोल भेंट दी। हिन्दीवालों ने इस ग्रंथ का भी बड़ा गौरव किया। शाश्वत साहित्य की श्रेणी में आनेवाले इस ग्रंथ की नई-नई आवृत्तियां आज भी निकलती रहती हैं।

सन् १९३० में गांधीजी ने नमक-सत्याग्रह शुरू किया। हजारों ही नहीं, लाखों की संख्या में हमारे देशवासी इस सत्याग्रह में सम्मिलित हुए। लाठियां और गोलियां बरसीं, सत्याग्रहियों को सड़कों पर घसीटा गया। उन पर घोड़े दौड़ाये गए। जेलों के फाटक खुले और लोग लाखों की संख्या में हँसते-हँसते जेलों में बन्द हुए। मई, १९३० में गांधीजी भी पकड़े गए। सरकार ने उन्हें पूना के निकट यरवदा के केंद्रीय कारागार में बन्द कर दिया। वहां से गांधीजी अपने आश्रमवासी साथियों के नाम हर मंगलवार को पत्र भेजने लगे। फिर जेल में ही उन्होंने आश्रम के ११ व्रतों पर अपने विचार लिखने शुरू किये। हर हफ्ते एक-एक व्रत पर उनके मौलिक चिन्तनवाले लेख आने लगे। बाद में 'मंगल प्रभात' के नाम से ये सारे लेख पुस्तक-रूप में प्रकाशित हुए। इस प्रकाशन का पुण्य भी 'मंडल' को ही मिला। पिछले ४०-४५ वर्षों में इस 'मंगल प्रभात' के भी अनेक संस्करण निकल चुके हैं। 'मंडल' की सदाबहार पुस्तकों में इसकी गिनती होती है। इसने आजतक न जाने कितने लोगों को अपनी जीवन-दिशा बदलने के लिए प्रेरित और अनुप्राणित किया है। 'आत्मकथा' की तरह 'मंगल प्रभात' ने देश की पुरानी और नई पीढ़ी को लगातार प्रभावित किया है। उन दिनों यरवदा जेल से ही गांधीजी ने गीता के हर अध्याय का सार अपनी सीधी-सादी और सचोट भाषा में आश्रमवासियों के चिन्तन-मनन के लिए भेजना शुरू किया था। बाद में 'मंडल' ने बोलचाल की भाषा में लिखे गए गीता के इस सार का हिन्दी अनुवाद 'गीता बोध' के नाम से प्रकाशित किया और उस जमाने में वह भी खूब चला। खूब पढ़ा गया। खूब पसंद किया गया। कई वर्षों तक 'मंडल' ने इन पंक्तियों के लेखक का ही हिंदी अनुवाद 'गीता बोध' के रूप में छापा।

सन १९३०-३१ के जमाने में भी गांधीजी ने गीता के संस्कृत श्लोकों का गुजराती अनुवाद किया और उसे अपनी विशद प्रस्तावना के साथ 'अनासक्तियोग' के नाम से प्रकाशित करवाया। 'मंडल' के हिन्दी प्रकाशनों में 'अनासक्तियोग' का भी अपना एक विशेष स्थान रहा है। पहला हिन्दी अनुवाद इस लेखक का छापा। बाद में बापू की अनुमति और अनुकूलता से श्रद्धेय महावीर प्रसादजी पोद्दार का अनुवाद प्रकाशित हुआ, जो आजतक बराबर चल रहा है। इस पुस्तक ने भी हिन्दी जगत को गीता-सम्बन्धी चिन्तन की एक नई दिशा और नई दृष्टि दी है। उन्हीं दिनों 'मंडल' ने गांधीजी की 'रचनात्मक कार्यक्रम' नामक प्रसिद्ध पुस्तिका भी प्रकाशित की।

गांधीजी ने सन् १९०८ में 'हिन्द-स्वराज्य' के नाम से अपनी जो अत्यन्त मौलिक और क्रांतिकारी पुस्तक लिखी थी, 'मंडल' ने उसका भी हिन्दी अनुवाद प्रकाशित किया। 'मंडल' की सदाबहार पुस्तकों में इसका भी अपना एक विशेष स्थान है। जिन्हें बार-बार पढ़कर भी मन भरता नहीं है और हर बार पढ़ने पर कोई-न-कोई नई चेतना, नई प्रेरणा, नई दिशा और दृष्टि मिलती है, ऐसी जीवित जाग्रत पुस्तकों में 'हिन्द-स्वराज्य' का अपना खास महत्व है।

हिन्दी में गांधी-साहित्य के प्रकाशन और प्रचार में 'सस्ता साहित्य मंडल' ने प्रकाशन-जगत की जो अगुवाई की है, उसके कारण हिन्दी-साहित्य के इतिहास में 'मंडल' का नाम सदा गौरव के साथ लिया जायगा, इसमें सन्देह नहीं। गांधी-साहित्य की ही परम्परा में आगे चलकर 'मंडल' ने जवाहरलाल नेहरू की 'मेरी कहानी', 'विश्व इतिहास की झलक' आदि-आदि अनेक पुस्तकें प्रकाशित कीं। इधर 'मंडल' की ओर से जवाहरलाल नेहरूजी का संपूर्ण

वाङ्मय प्रकाशित होने लगा है और उसके २० में से ९ खण्ड प्रकाशित भी हो चुके हैं। 'मंडल' ने भारत के पहले राष्ट्रपति स्वर्गीय बाबू राजेन्द्र प्रसादजी की आत्म-कथा सहित अनेक ग्रन्थ प्रकाशित किये हैं। 'मंडल' को चक्रवती राजगोपालाचार्य के रामायण और महाभारत संबंधी सुप्रसिद्ध ग्रंथों के हिन्दी अनुवाद प्रकाशित करने का गौरव प्राप्त हुआ है। 'मंडल' ने आचार्य विनोबा के 'गीता-प्रवचन' सहित अनेकानेक ग्रन्थों और पुस्तकों को प्रकाशित करके हिन्दी-भाषी जगत की अनमोल सेवा की है। 'मंडल' ने वियोगी हरिजी, हरिभाऊजी, नानाभाई भट्ट, स्व० किशोरलालजी मशरूवाला, जमनालालजी बजाज, घनश्यामदास जी बिड़ला, काका साहब कालेलकर आदि के ग्रंथ प्रकाशित करके हिन्दी साहित्य की उल्लेखनीय श्रीवृद्धि की है।

'त्यागभूमि' को मासिक और साप्ताहिक रूप में सफलतापूर्वक चलाने के बाद सन १९४० में 'मंडल' ने 'जीवन-साहित्य' के नाम से एक नये मासिक का प्रकाशन अपने नई दिल्ली-कार्यालय से शुरू किया। हिन्दी के मासिक पत्रों में 'जीवन-साहित्य' का अपना एक अनोखा, व्यक्तित्व बना है। 'अहिंसक नवरचना' उसका ध्यान-मंत्र है। स्वर्गीय हरिभाऊजी इस पत्र के आदि-सम्पादक रहे। पत्र-जगत में इसकी अपनी साख और धाक जानी-मानी है। पिछले ३६ वर्षों में 'जीवन-साहित्य' ने समय-समय पर देश के महापुरुषों के विषय में जो एक-से-एक बढ़िया विशेषांक निकाले हैं, हिन्दी-भाषी जगत् में और उसके बाहर भी उन्हें बहुत चाहा और सराहा गया है।

आजादी के पहले 'मंडल' के सामने अपने काम का जो मिशन रहा, और इस मिशन के चलते 'मंडल' ने अपने विविध प्रकाशनों के द्वारा अपने हजारों-हजार पाठकों के सामने तप, त्याग, सेवा, समर्पण, साधना और उपासना की जो उज्ज्वल ज्योति सतत जलाई, उसके कारण मेरी ही तरह दूसरे अनगिनत पाठकों के दिलों पर 'मंडल' के अपार उपकारों का गहरा असर है। 'मंडल' ने अपने पाठकों की एक विशिष्ट रुचि बनाई है, जो स्वस्थ, सुसंस्कृत, परिष्कृत और उदात्त रुचि कही जा सकती है। इसके लिए 'मंडल' के प्रकाशनों का पाठक वर्ग उसकी भरपूर सराहना करेगा और उसके इस ऋण-भार को सतत और सहर्ष याद करता रहेगा। 'मंडल' के इस ऋण से उऋण होना तो हममें से किसी के लिए कभी सम्भव होगा नहीं, क्योंकि यह ऋण उऋण होने की अपेक्षा से हम पर कभी चढ़ा ही नहीं है। इसका अपना एक अनोखा ही रूप-स्वरूप है और इसकी अपनी एक अनोखी मिठास भी है।

जिन दिनों स्वर्गीय जमनालालजी बजाज और स्वर्गीय हरिभाऊजी उपाध्याय-जैसे गांधीजी के अन्तेवासियों के मन में 'सस्ता साहित्य मंडल' की स्थापना का संकल्प जागा था, उन दिनों की परिस्थितियां आज की हमारी परिस्थितियों से बहुत भिन्न थीं। वह हमारी पराधीनता का जमाना था और हमारे दिलों में स्वाधीन होने की लौ सुलग चुकी थी। तब हम चाहते थे कि स्वाधीनता का पवित्र और प्रेरक सन्देश भारत के हर घर और हर भारत-वासी के दिल-दिमाग तक पहुंचे, इसलिए अहमदाबाद के तत्कालीन 'सस्तुं साहित्य वर्धक कार्यालय' से प्रेरणा लेकर स्वर्गीय जमनालालजी ने भी हिन्दी में हिन्दीभाषी जनता तक सस्ते मूल्यवाली अच्छी पुस्तकें पहुंचाने के उद्देश्य से सन १९२५ में राजस्थान के अजमेर नगर में 'सस्ता साहित्य मंडल' नामक प्रकाशन-संस्था का शुभारम्भ किया। स्वर्गीय हरिभाऊजी ने और उनके अनुज भाई मार्तण्डजी ने 'मंडल' के जन्मकाल से ही अपने को उसके लिए अक्षरशः समर्पित कर दिया। जहाँ तक मैं जान पाया हूं, शुरू के सालों में 'मंडल' को चलाने में इसके संचालकों की दृष्टि दुकानदारी की नहीं, मकानदारी की ही अधिक रही। आज भी दृष्टि तो वही है, पर परिस्थितियां इतनी बदली हैं और पुस्तकों का प्रकाशन इतना महंगा हो चुका है कि ४०-५० साल पहले की तरह आज सस्ती कीमत वाली पुस्तकें छापना और बेचना बहुत ही मुश्किल हो गया है। आजादी के इन २९ सालों में देश-प्रदेश में शिक्षा का तो काफी विकास और विस्तार हुआ है, पर उसी हिसाब से शिक्षित समाज की अध्ययनशीलता और स्वाध्याय-प्रियता का विकास नहीं हो पाया है। हमारे देश में शिक्षा आज भी नौकरी के साथ जुड़ी हुई है। नागरिक को स्वतंत्र, स्वावलम्बी, सच्चरित्र और स्वाध्यायशील नागरिक बनाने का उच्च उद्देश्य सामने रखकर हम अपने देश में अपनी शिक्षा-व्यवस्था और शिक्षा-विषयक रीति-नीति को

(शेष पृष्ठ १८९ पर)

'मंडल' : मेरा क़द्रदान

□

चन्द्रगुप्त वार्ष्णेय

सुप्रसिद्ध जर्मन दार्शनिक नीत्शे की एक उक्ति है : किसी प्रकार की प्रतिभा का धनी होना काफी नहीं है; उसका धनी होने के लिए मनुष्य को आपकी अनुमति भी लेनी पड़ती है।

इसका भावार्थ यह है कि कोई मनुष्य चाहे जितना प्रतिभावान क्यों न हो, जबतक उसकी प्रतिभा को दूसरे लोग स्वीकार न करें, तबतक वह प्रतिभावान नहीं माना जाता। दूसरे शब्दों में यों भी कह सकते हैं कि जबतक किसी आदमी के गुणों को पहचाननेवाला गुण-ग्राहक (कद्रदान) न मिले, तबतक उसके गुणों की ख्याति नहीं होती। लेकिन इसका उलटा भी देखने में आता है। गुण-हीन लोगों पर भी गुणों का आरोप करके उन्हें ख्यातिनामा बना दिया जाता है, भले ही यह ख्याति थोड़े दिनों की हो। कभी-कभी दो अखाड़ेबाज आपसी मिलीभगत से एक-दूसरे का गुणगान करके नामवरी हासिल कर लेते हैं। इनका उसूल होता है : 'मनतुरा हाजी बगोयम, तू मरा क़ाजी बगो" (मैं तुझे हाजी कहूंगा, तू मुझे क़ाजी कहना)।

मैं साहित्यकार होने का दावा तो नहीं करता, लेकिन लेखक और अनुवादक के रूप में जो कुछ भी मैं हूं, उसके लिए मैं 'सस्ता साहित्य मंडल' का आभारी हूं। लिखने का जो अंकुर मेरे दिमाग में उग चुका था, उसे पनपाने का सारा श्रेय 'मंडल' को है, यह मैं बिना संकोच के कह सकता हूं।

'मंडल' से मेरे संबंध की शुरुआत १९२९ के आसपास हुई थी। तब से यह संबंध बराबर बढ़ता ही गया और अबतक कायम है। हुआ यह था कि उस समय हिन्दी की प्रतिष्ठित मासिक पत्रिका 'चांद' के एक अंक में 'सौन्दर्य' शीर्षक से मेरा लेख छपा था। यह मेरा पहला ही लेख था, और इसके छपने पर मुझे वैसा ही हर्ष हुआ था जैसा किसी नये लेखक को अपनी पहली रचना प्रकाशित होने पर होता है। इसके बाद एक दिन जब मैं 'मंडल' के कार्यालय में गया तो मुकुटजी (मुकुट बिहारी वर्मा) से मुलाकात हुई। वे 'त्यागभूमि' के संपादकीय विभाग में काम करते थे। उन्होंने 'चांद' में छपे मेरे लेख की चर्चा की और 'त्यागभूमि' के लिए कुछ लिखने का आग्रह किया। मुझे क़द्रदान मिल गया और मेरे उत्साह को संवेग प्राप्त हुआ। मैंने मेहनत करके 'सिनेमा' पर वैज्ञानिक लेख तैयार किया। यह मुकुटजी को पसंद आया और 'त्यागभूमि' में प्रकाशित हुआ। मेरा खयाल है कि उन दिनों हिन्दी पत्र-पत्रिकाओं में छपनेवाले लेखों में यह अपने ढंग का पहला लेख था। फिर तो 'मंडल' के कार्यालय में जाने का सिलसिला जम गया और वहां दा सा'ब (हरिभाऊजी उपाध्याय) के अलावा क्षेमानन्दजी 'राहत', जगन्नाथ प्रसादजी 'मिलिन्द', हरिकृष्ण जी 'प्रेमी', शंकरलालजी वर्मा और शोभालालजी गुप्त, रामनाथ 'सुमन' जैसे साहित्यकारों तथा पत्रकारों के संपर्क में आने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। कुछ महीनों बाद क्षेमानन्दजी के प्रयत्नों से प्रताप जयन्ती मनाई गई और इस अवसर पर 'त्यागभूमि' का विशेषांक प्रकाशित हुआ। इस अंक में मेरे दो लेख छपे थे : एक असली नाम से और दूसरा छद्म नाम से। इस प्रोत्साहन से मेरी कलम चल निकली।

१९३२ में 'त्यागभूमि' मासिक पत्रिका से साप्ताहिक पत्र बन गया। इसमें 'गृद्धदृष्टि' शीर्षक व्यंग्य-स्तंभ में 'जटायु' उपनाम से लिखा करता था।

'मंडल' का कार्यालय दिल्ली जाने के बाद मार्तण्ड मेरे सम्पर्क की कड़ी बने रहे और उन्हीं की क़द्रदानी की वजह से 'मंडल' के प्रकाशनों में मेरा अंशदान हुआ। सबसे पहले 'कांग्रेस का इतिहास' के अनुवाद में मैंने हाथ बंटाया और फिर नेहरू की 'विश्व इतिहास की झलक' के प्रकाशन में। 'झलक' के प्रथम संस्करण में कई लोगों के किये हुए अलग-अलग अंशों के अनुवाद थे, इसलिए भाषा में एकरूपता नहीं आ पाई थी और कहीं-कहीं केवल शब्दानुवाद होकर रह गया था। तब दूसरे संस्करण के लिए मार्तण्ड ने इसे मांजने का

काम मेरे सुपुर्द किया। मैंने देखा कि अनुवाद के संशोधन में जितनी मेहनत और जितना समय लगता है, उतने में उसका नये सिर से अनुवाद किया जा सकता है। सो मैंने यह सुझाव मार्तण्ड के सामने रखा और उन्होंने इसे मान लिया। इस कार्य को पूरा करने में मुझे करीब दो साल लग गये थे। इस अनुवाद की बदौलत लुई फिशर की 'लाइफ आफ महात्मा गांधी' के अनुवाद का काम भी मुझे दिया गया। इन दोनों अनुवादों की भाषा किस कोटि की है, इसके बारे में अपनी ओर से मैं कुछ नहीं कह सकता। परन्तु इस प्रसंग में मैं उन बातों का जिक्र करना जरूरी समझता हूं, जिन्हें मैंने ध्यान में रखा था।

मेरी मान्यता है कि किसी भाषा की रचना का दूसरी भाषा में अविकल अनुवाद असंभव है। हरेक भाषा की अपनी प्रकृति होती है, वाक्य-रचना होती है और मुहावरे होते हैं। सबसे बड़ी उलझन क्लिष्ट शब्दों और वाक्यों के अनुवाद में सामने आती है। इसलिए अनुवादक को भाषा के मजमून का ध्यान रखते हुए लेखक के दिमाग में पैठना पड़ता है ताकि असली भावना नष्ट न होने पाये। अनुवादक को अनुवाद की भाषा के व्याकरण, वाक्य-रचना तथा मुहावरे में बिठाना पड़ता है। मैंने इन्हीं बातों पर अमल करने का भरसक प्रयत्न किया है।

अन्त में इतना ही जोड़ना चाहता हूं कि मार्तण्ड की देखरेख में 'मंडल' ने हिन्दी-साहित्य को जो दिया है, और नये लेखकों को प्रोत्साहन देने का जो कार्य किया है, उसे शब्दों में व्यक्त नहीं किया जा सकता। उनके सहयोगी यशपाल जैन का भी इसमें महत्वपूर्ण योगदान रहा है। मार्तण्ड का सेहरा उनके सिर पर बंधना बिल्कुल समीचीन है। मेरे साहित्य-जगत में प्रवेश में 'मंडल' का कितना बड़ा हाथ है, यह मैं बता चुका हूं। ●

(पृष्ठ १८७ का शेष)

कब जड़मूल से बदल पायंगे, कहना कठिन है। इस विषय में हमारा राष्ट्रीय संकल्प अभी तक प्रबल हो ही नहीं पा रहा है। इसका सीधा असर हमारे पुस्तक-प्रकाशन और पत्र-पत्रिका-प्रकाशन पर पड़ता ही है। चिन्तन-मनन के साथ चरित्र-निर्माण की प्रेरणा देनेवाले अच्छे साहित्य की मांग देश में उत्तरोत्तर घटती जा रही है। 'सस्ता साहित्य-'मंडल' पर भी इसकी छाया पड़ी है और पड़ी रही है। इस कारण उसके सस्ते स्वरूप पर ग्रहण-सा लगा है। उसके प्रकाशन अब जनसाधारण की पहुंच के बाहर होते जा रहे हैं। 'मंडल' के लिए और 'मंडल' से जुड़े हम सबके लिए आज का यह महंगापन चिन्ता का ही विषय बना है। इस समय हम साहित्य-प्रकाशन के क्षेत्र में भी एक दुष्टचक्र के भंवर-जाल में फंसे हैं, सुरुचि सम्पन्न पाठकों और ग्राहकों की कमी का प्रभाव प्रकाशनों की संख्या पर पड़ता है। 'मंडल' की पठनीय और मननीय पुस्तकें दो-तीन हजार से अधिक छप नहीं पातीं। छपी पुस्तकें फटाफट खप नहीं पातीं। कम संख्या में छपती हैं, इसलिए छपाई महंगी पड़ती है। झट-झट खपती नहीं, इसलिए पूंजी का प्रवाह रुक जाता है। लेखक-अनुवादक को भरपूर पारिश्रमिक नहीं मिल पाता। प्रकाशक को अपेक्षित मुनाफा नहीं हो पाता। प्रकाशकों का और लेखकों-अनुवादकों का अपना कोई सामूहिक बल खड़ा नहीं हो पाता। सब अपनी जगह अकेले ही जूझ-जूझ कर थक जाते हैं और क्षीण-प्राण बनकर ज्यों-त्यों अपना काम घसीटते रहते हैं। औसत लेखक और प्रकाशक की आज अपने देश-प्रदेश में यही नियति लगती है। पता नहीं, इसमें नया आशाजनक सुधार और परिवर्तन कब आ पायगा! चतुर्मुखी शैक्षणिक, सामाजिक और आर्थिक क्रांति के बिना साहित्य-क्षेत्र का और प्रकाशन क्षेत्र का हमारा वर्तमान दारिद्रय दूर होता दीखता नहीं। काश, इस इष्ट परिवर्तन के लिए हम सबकी सामूहिक शक्ति लग पाए!

'सस्ता साहित्य मंडल' की स्वर्ण जयन्ती के मंगल अवसर पर 'मंडल-परिवार' को अपने अन्तरतर के सारे वन्दन, अभिनन्दन और मंगल चिन्तन समर्पित करते हुए मैं उसके उज्ज्वल भविष्य की कामना करता हूं और उसका जो सुहावना तथा मनभावना ऋण मुझपर और मेरे समूचे परिवार पर इन ५० वर्षों में सतत चढ़ता चला आ रहा है, उसके लिए अपनी आन्तरिक कृतज्ञता व्यक्त करता हूं।

नए पुरुषार्थी और पराक्रमी भारत की भावनाओं को सींच-सींच कर पुष्ट और प्रबल बनाते रहने का अपना मिशन 'मंडल' आज के इस कठिन और विपरीत काल में भी संपूर्ण सजगता और सफलता के साथ सतत पूरा करता रहे, यही हार्दिक कामना और प्रार्थना है।

सुखद स्मृतियां

□

जगन्नारायण देव शर्मा 'कविपुष्कर'

जिस 'सस्ता साहित्य मंडल' का बीजारोपण श्रद्धेय पं० हरिभाऊजी के प्रोत्साहन और सेठ जमनालालजी बजाज के आर्थिक साहाय्य से अजमेर में हुआ और श्री जीतमलजी लूणिया के प्रधान मंत्रित्व काल में वृक्ष बन कर पल्लवित और संवर्धित हुआ, वह श्री मार्तण्ड उपाध्याय के मंत्रित्व में, दिल्ली में पहुँचकर, विकास की दिशा में आशातीत फूला-फला। इसमें सन्देह नहीं कि इसका श्रेय मार्तण्डजी को है, उनके उत्साह, मनोयोग और सततोद्योग से इसे उत्तरोत्तर सफलता ही मिलती गई। इसके लिए वह मेरे ही नहीं, वरन् हिन्दी जगत के हार्दिक धन्यवाद के पात्र हैं!

सन् १६२२ की बात है। मैं माहेश्वरी-भवन, कलकत्ता में रहता था और 'माहेश्वरी सभा' का प्रधान लेखक, मंत्री का सहकारी और पुस्तकालय का प्रधान पुस्तकाध्यक्ष था। वहां मेरे परमप्रिय शिष्य श्री सीताराम 'भ्रमर' कवि का उसी भवन में, स्वर्गवास हो गया। अतः दुःखी होकर उस संस्था को छोड़कर काशी राज्य के अंतर्गत रामनगर में, अपने घर चला आया।

उन्हीं दिनों की बात है। श्री जीतमलजी लूणिया 'हिन्दी-साहित्य-मन्दिर' को इन्दौर से काशी ले आए थे और चौक में एक कमरे में उसका कार्यालय खोल रखा था। वह पं०हरिभाऊजी उपाध्याय द्वारा संपादित हिन्दी-मासिक 'मालव मयूर' का प्रकाशन करते थे। यह प्रयाग की 'सरस्वती' से आकार-प्रकार में छोटा होने पर भी बड़े महत्व का था।

एक दिन की बात है। मैं घूमता-घामता इस हिन्दी-साहित्य-मन्दिर और मयूर-कार्यालय में पहुंच कर लूणियाजी से मिला। परस्पर वार्तालाप और परिचय प्राप्त होने पर उन्होंने एक कार्यकर्त्ता की आवश्यकता जतलाई। मैंने उनसे कह दिया कि यदि एक सप्ताह में वह मुझे पत्र देंगे तो मैं इस कार्य में उनको योगदान दे सकूंगा, वरना बुलावा आ रहा है, मैं पुनः कलकत्ता चला जाऊंगा।

इतनी बातें कहकर मैं रामनगर चला आया। इसी सप्ताह में जीतमलजी ने पत्र लिखकर मुझे बनारस बुलाया और अपने 'हिन्दी साहित्य मन्दिर' और 'मयूर' पत्र का सारा भार मुझको सौंप दिया। अब मैं उनके यहां नियुक्त होकर कार्य करने लगा। पुस्तक और पत्र-प्रकाशन, संशोधन, पत्र-व्यवहार, वही-खाता, हिसाब, पार्सल, सूचीपत्र, वी. पी., मनी आर्डर आदि सभी कार्य मुझे करने पड़ते थे। वह मेरे विश्वास पर सबकुछ छोड़कर इन्दौर, अजमेर, कलकत्ता, बंबई, दिल्ली, लखनऊ, कानपुर, आगरा जाकर अपने काम कर आते थे। कार्यालय और दूकान की ताली-कुंजी मेरे पास रहती थी। मेरी सहायता के लिए श्री रामचन्द्र जी शर्मा और श्री बसन्तलालजी यादव—दो और कार्यकर्त्ता थे। मैं उनसे यथासाध्य काम लेता था।

पहले-पहल इसी कार्यालय में श्रद्धेय पं० हरिभाऊजी, श्री सुखसंपतिरायजी भंडारी, चन्द्रराजजी भंडारी, कृष्णलालजी गुप्त और भ्रमरलालजी सोनी भानपुरा (इन्दौर) वालों से परिचय हुआ और प्रेम-संबंध दृढ़ होता गया। फिर ये लोग पृथक् भी मुझसे योग्य सहायता लेते रहे।

सन् १६२४-२५ की बात है कि हरिभाऊजी आये और यहीं ठहर गये। उन्होंने कहा, "जीतमलजी, एक बड़ा सुयोग प्राप्त हो गया है। सेठ जमनालालजी बजाज के यहां २४ हजार रुपये धर्मार्थ (दान में) जमा हैं। उनके द्वारा वे राजस्थान में राष्ट्रभाषा हिन्दी का प्रचार करना चाहते हैं। मैं चाहता हूं कि यदि तुम कविपुष्करजी को लेकर अजमेर चलो तो बड़ा अच्छा हो! वहां एक ऐसी संस्था खोली जाय, जो हिन्दी की महत्वपूर्ण पुस्तकें प्रकाशित कर ग्राहकों को लागत मूल्य में दे सके। इस प्रकार का उद्योग गुजराती में 'सस्तुं साहित्य वर्धक कार्यालय' कर रहा है। उसको बड़ी सफलता मिली है। हम लोग भी प्रयत्न कर देखें।"

जीतमलजी ने कहा कि मेरे मन्दिर, छपे ग्रंथ और 'मयूर' आदि का क्या होगा? हरिभाऊजी ने कहा कि

सब ज्यों-का-त्यों, तुम्हारा रहेगा। सबको अजमेर ले चलो। वहां आपका घर भी है, मैं भी वहां विशेष रूप से रह सकूंगा। जीतमलजी ने कहा कि आप अब उसकी योजना बनाकर आइए।

हरिभाऊजी वर्धा तथा कलकत्ता आदि स्थानों पर गये। कुछ दिनों बाद आकर उन्होंने कहा कि मैं सेठ जमनालालजी, श्री घनश्यामदासजी, महावीर प्रसादजी पोद्दार आदि से मिल आया। वे लोग मेरी योजना के प्रारूप से सहमत हो गये। उन लोगों को ट्रस्टी बना कर कार्यारंभ कर दिया जायगा। मैं काम से जाता हूं। आपकी कठिनाइयों का मुझे ध्यान है।

इस बार आने पर उन्होंने कहा, "सस्ता साहित्य मंडल' अजमेर के लिए २४ हजार रुपये मिल जायंगे। ५ हजार आप लेकर अपना स्टाक अजमेर ले चलें। आप 'मंडल' के मंत्री और काशी के ये पंडितजी आपके सहायक और हम प्रेरक रहेंगे।"

हरिभाऊजी के चले जाने पर जीतमलजी और हम दोनों पुतस्कों के बंडलों को बंधवाने में लग गये। आठ दिन में सारी तैयारी हो गई। इस बीच मैं सख्त बीमार हो गया। अतः लूणियाजी ने मुझे सवारी द्वारा रामनगर मेरे घर पर पहुंचा दिया और कहा कि आपकी नियुक्ति ज्यों-की-त्यों रहेगी। अच्छे होने पर हम आपको अजमेर बुला लेंगे। अभी तो 'मंडल' का श्रीगणेश ही करना है। कुछ पुस्तकें प्रेस में हैं—उनका कार्य आप देखियेगा। उस समय सारी पुस्तकें काशी के श्री जतन बरतर स्थित सुविख्यात श्री लक्ष्मीनारायण प्रेस में छपा करती थीं। गुर्जरजी, सोमणजी, शास्त्रीजी तथा गर्देजी वहां बड़े-बड़े विद्वान कार्य करते थे।

जीतमलजी अजमेर चले गये। पत्र-व्यवहार होता रहा। 'मंडल' का सूचीपत्र छप गया। 'मंडल' के प्रकाशन में 'सस्ती साहित्य माला' और 'प्रकीर्णक पुस्तक माला' नामकी दो मालाओं में पुस्तकें छपने लगीं। अच्छे-अच्छे लेखकों के द्वारा लिखी गईं मौलिक और अनुवादित पुस्तकों का समादर किया गया। प्रथम और द्वितीय वर्षों में बहुत-सी पुस्तकें प्रकाशित हुईं। लागत मूल्य और स्थायी ग्राहकों के कारण प्रचार-कार्य में भी इस संस्था को सफलता मिली।

'मंडल' द्वारा प्रथम वर्ष में, दोनों मालाओं में, ३००० पृष्ठों की १७ पुस्तकें छप गईं। दूसरे वर्ष में ४००० पृष्ठों की २० पुस्तकें निकलीं। एक रुपये में प्रायः ६०० से ऊपर पृष्ठ देने का आयोजन किया गया था। स्थायी ग्राहकों को तो विशेष सुविधा दी गई थी।

'सस्ती साहित्य माला' और 'प्रकीर्णक माला'—दोनों में देश-विदेश के सुप्रसिद्ध विद्वानों के मौलिक और अनूदित ग्रंथ निकाले जाते थे।

सन् १९२५ की बात है। कानपुर में अ० भा० राष्ट्र महासभा का ४०वां वार्षिक अधिवेशन, श्रीमती सरोजिनी, नायडू की अध्यक्षता में हुआ। उसमें हमारे 'मंडल' की दुकान भी पुस्तकों की पट्टी में लगी। श्री लूणियाजी ने मुझे भी बनारस से अपने साथ ले लिया। वहां हमारी दोनों मालाओं की सस्ती पुस्तकें धुआंधार बिकीं। काफी स्थायी ग्राहक भी हम लोगों ने बनाये। दूसरे पुस्तक-विक्रेता भी हमारी दुकान से ये पुस्तकें लेकर बेचते और कमीशन का लाभ उठाते रहे।

वहां से लौटकर मैंने और जीतमलजी ने महीनों 'मंडल' के लिए दौरे किये। भारत के अनेक प्रांतों के नगरों में गए। लोग हम लोगों का स्वागत कर पुस्तकें खरीदते और स्थायी ग्राहक बन जाते थे। 'मंडल' के प्रकाशन में उत्तरोत्तर सफलता मिलती गई।

हम लोग बड़े-बड़े सम्मेलनों, मेलों, प्रदर्शिनियों और महोत्सवों में दुकान ले जाते या दोनों ही पहुंचकर अपने 'मंडल' का जोरों से प्रचार करते। इस प्रकार के प्रयत्न से हमारे 'मंडल' के ट्रस्टी प्रसन्नता-पूर्वक हमें आगे बढ़ने के लिए सदा प्रोत्साहित करते गये।

'ब्रह्मचर्य-विज्ञान' नामक पुस्तक मैंने लिखी, इसकी कहानी यह है कि कानपुर के लाठी मोहल्ला की धर्मशाला में जीतमलजी ने 'ब्रह्मचर्य' विषयक पुस्तक लिखवाकर प्रकाशित करने का विचार स्थिर किया। वहां ठहरे हुए स्वामी शिवानन्दजी से निवेदन किया कि आप इस कार्य को स्वीकार करें, परन्तु उन्होंने अस्वीकार कर दिया। उस समय मैं भी मौजूद था।

'ब्रह्मचर्य' के विषय में एक ग्रंथ लिखने की सुप्रसिद्ध काका साहब कालेलकर से भी प्रार्थना की गई। उनके पास बहुत-सी बंगला, अंग्रेजी आदि भाषाओं की इस विषय की पुस्तकें तथा सामग्री थी, किन्तु अवकाश न मिलने के कारण वे लिख न सके।

अन्त में मैंने 'मंडल' के प्रभाव को ध्यान में रख कर यह कार्य स्वयं करने का साहस किया। 'मंडल' से छुट्टी लेकर अपने घर रामनगर में ८-९ महीने के समय में परिश्रम करके 'ब्रह्मचर्य-विज्ञान' नामक एक बड़ी पुस्तक तैयार की और जीतमलजी को अजमेर भेजी। उन्होंने उसे श्री लक्ष्मीनारायण प्रेस में छपने दे दिया और प्रूफ रीडिंग का काम मुझे ही सौंप दिया। संपादकाचार्य पं० लक्ष्मीनारायण जी गर्दे ने उसकी भूमिका लिखी।

'ब्रह्मचर्य-विज्ञान' प्रकीर्णक ग्रंथ माला के दूसरे वर्ष का प्रथम पुष्प था, जिसके प्रायः ३-४ संस्करण छपे और बिके। उसपर पं० वैजनाथ महोदय ने कुछ सुझाव भी भेजे थे। नये संस्करण के लिए उनका उपयोग भी मैंने किया। बिक्री इस पुस्तक की खूब हुई।

स्वामी श्रद्धानन्द के गुरुकुल कांगड़ी में एक बहुत बड़ा मेला लगा था। उसमें भी हमारे 'मंडल' की दूकान सजाई गई थी।

वहां पर 'मंडल' की आशातीत सफलता हुई। बहुत से स्थायी ग्राहक बने। 'ब्रह्मचर्य-विज्ञान' की और पं० हरिभाऊजी लिखित 'स्वामीजी का बलिदान और हमारा कर्तव्य' नाम की पुस्तकों की बहुत-सी प्रतियां बिकीं। दूसरे स्थानों पर पहुँचने पर तार देकर पुस्तकें मंगानी पड़ीं।

भरतपुर में अ० भा० हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन का वार्षिक अधिवेशन हुआ। उसके अध्यक्ष महामहोपाध्याय पं० गौरीशंकर हीराचन्द ओझा थे और महाराज भरतपुर श्रीकृष्ण स्वागताध्यक्ष थे।

शिविर में पंडाल बना था। सोने-चांदी की दो कुर्सियां लगी थीं। ओझाजी को महाराज ने सोने की कुर्सी पर बिठाया और चांदी की कुर्सी पर स्वयं बैठे।

यहां भी 'मंडल' की दूकान गई थी। पुस्तक-पट्टी भी बड़ी मजेदार बनी थी। 'मंडल' के स्थायी ग्राहक खूब बने और माला की फुटकर पुस्तकें भी बहुत बिकीं।

यहां अनेक कवि, लेखक, साहित्यकार, संपादक, विद्वान हमारी दूकान पर आते रहे तथा वे 'मंडल' के ट्रस्टियों – श्री हरिभाऊजी, जीतमलजी को हार्दिक धन्यवाद देते रहे।

इस संस्था से विभिन्न विषयों की बहुत-सी पुस्तकें निकाली जा चुकी थीं। उनकी मांग भी जोरों से हो रही थी। ऐसी अवस्था में इनके प्रचार और 'मंडल' के उद्देश्यों के विस्तार के लिए एक पत्रिका निकालने की आवश्यकता हुई।

हरिभाऊजी और जीतमलजी ने अन्तरंग गोष्ठी में 'त्यागभूमि' प्रकाशित करने की योजना बनाई, किन्तु छपाई का काम बनारस में करना असुविधाजनक था। इसलिए 'मंडल' का निजी प्रेस करना निश्चित हुआ।

इसके लिए २० हजार रुपयों की सहायता पाने के लिए स्वयं हरिभाऊजी श्री घनश्यामदासजी से मिले। उन्होंने १० हजार की तो तत्काल व्यवस्था कर दी और शेष १० हजार की पूर्ति करा देने का वचन दिया।

हरिभाऊजी कह कर गये थे कि घनश्यामदासजी मेरे परम मित्र और विश्वासी व्यक्ति हैं। उनसे काम बन जायगा। मैं सफल होकर बंबई से प्रेस लाऊंगा तब ग्रंथों और 'त्यागभूमि' की छपाई होगी और यही हुआ भी। इस प्रकार 'मंडल' के प्रेस की यथासमय स्थापना हुई।

सन् १९२८ की बात है। कलकत्ते में राष्ट्रीय महासभा का ४३वां वार्षिक अधिवेशन हुआ। पं० मोतीलालजी नेहरू अध्यक्ष थे। जे० एम० सेन गुप्त स्वागताध्यक्ष थे। उसमें भारत के स्वाधीन भविष्य के लिए ब्रिटिश सरकार को 'अन्तिम चेतावनी' दी गई थी। एक बड़ी सुन्दर प्रदर्शिनी भी लगी थी। उसी में हमारे 'मंडल' की दुकान लगाई गई। यहां भी पुस्तकों की अच्छी बिक्री हुई।

अजमेर में 'मंडल' के माध्यम से हम लोग एक प्रेमी परिवार में आबद्ध हो गए थे और साथ ही वहां का साहित्यिक राष्ट्रवादी हिन्दी पोषक विद्वानों का विशिष्ट मित्र-मंडल भी इस परिवार का सहयोगी बन गया था। वे दिन बड़े ही आनन्द और आमोद-प्रमोद के थे—उनकी याद अब भी

आया करती है।

मैं 'सस्ता साहित्य मंडल' की योजना के प्रारूप की मंत्रणा और अजमेर में उसके बीजारोपण के समय से, दोनों मालाओं के दो वर्षों में अनेक ग्रंथों के प्रकाशन होने तथा 'त्यागभूमि' सचित्र मासिक पत्रिका के मुद्रण-यंत्रालय और प्रकाशन के प्रारम्भ तक, उसका किसी-न-किसी रूप में, कार्य करता रहा। क्योंकि भारतवर्ष में सबसे सस्ती लागत मूल्य में हिंदी की सर्वोपयोगी पुस्तकें प्रकाशित करने के उद्देश्य से ही 'मंडल' की स्थापना की गई थी।

'मंडल' में मैं उसके प्रधान मंत्री श्री जीतमलजी लूणिया का सहकारी बनकर कार्यालय के सभी कार्यों में सक्रिय उत्तरदायी था। श्री जीतमलजी अथवा श्री हरिभाऊजी उपाध्याय जो भी परामर्श द्वारा मुझे कार्यभार देते थे, उसे संभालता था। हरिभाऊजी ने सेठ जमनालालजी से मेरे सामने ही परिचय देते हुए कहा कि यह काशी के पंडितजी (कविपुष्कर) और जीतमलजी हमारे मंडल के दो 'स्थायी स्तंभ' हैं।

'मंडल' में मेरे कार्यकाल में पं० बैजनाथजी महोदय (पुस्तक विभाग के संपादक), श्री क्षेमानन्दजी राहत ('त्यागभूमि' के सहसंपादक), ओंकारनाथ छीपा (पुस्तकों के प्रचारक), पं० रामस्वरूप शर्मा और श्री हरिशंकर सहमण्डल (मेरे सहयोगी कार्यकर्त्ता), बाबा नृसिंहदास (सहकारी मंत्री), जीतमलजी लूणिया (प्रधान मंत्री), पं० हरिभाऊजी उपाध्याय ('त्यागभूमि' के प्रधान संपादक), श्री मुकुट विहारी वर्मा और श्री कृष्णचन्द्र विद्यालंकार (पत्रिका के लेखक), पं० नन्दकिशोरजी (प्रेस के मैनेजर) और दो चपरासी एक गौड़ ब्राह्मण और दूसरे श्रीवास्तव कायस्थ थे।

उस समय सेवाभाव से निर्वाह के लिए जीतमलजी ६०) मासिक और मैं ४०) मासिक पारिश्रमिक लेता था, परन्तु मेरे सम्पूर्ण जलपान, भोजन, यातायात आदि खर्च का भार सभी कुछ 'मंडल' वहन करता था। इस प्रकार के नियुक्त कार्यकर्त्ता हम दो ही थे और सभी लोगों के कार्यों का निरीक्षण भी हम ही दोनों करते थे।

मेरी दादीजी का देहान्त हो जाने से मेरे परिवार को संभालने वाला कोई न रह गया। अजमेर में रहकर 'मंडल' का आवश्यक और विशाल कार्य संभालने में विवशता आ गई। फिर भी अनेक वर्षों तक कुछ-न-कुछ दूर से भी सेवा करता ही रहा। □

पापी मनुष्य चाहे जितना पाप करे, लेकिन अंतिम समय में अपना पाप कबूल करके प्रायश्चित करे तो ईश्वर उसे माफ कर देता है। ईश्वर की इस सृष्टि में प्रत्येक मनुष्य का ही नहीं, जीव-जंतु और पशु-पक्षियों तक का कल्याण हो, ऐसी भावना मन में रखनी चाहिए, और ऐसे बल प्राप्त करने का एकमात्र उपाय सुबह-शाम ईश्वर का ध्यान करना है।

| गांधीजी

'त्यागभूमि' बल और बलिदान की पत्रिका

□

मुकुट बिहारी वर्मा

पत्रकारिता के जीवन को अपनाये मुझे अर्द्धशताब्दि से अधिक हो गया। यह मेरा अहोभाग्य है कि राष्ट्रार्पित और मनुष्य को ऊंचा उठाने वाली पत्रकारिता में ही मेरा पत्रकार-जीवन व्यतीत हुआ। इस काल में निस्संदेह अनेक अनुभव हुए, परन्तु यह मानना पड़ेगा कि 'त्यागभूमि' का जो सेवा-काल रहा वह मेरे निर्माण-काल का शायद सबसे समुज्ज्वल समय था।

'त्यागभूमि' 'सस्ता साहित्य मंडल' के प्रारंभिक काल की देन थी, जबकि अजमेर में उसका कार्यालय था और श्री जीतमल लूणिया उसके मंत्री थे। हरिभाऊजी उपाध्याय का 'मंडल' से ठीक क्या संबंध था, यह मुझे नहीं मालूम; लेकिन उनकी भूमिका निश्चित रूपेण ऐसी थी, मानो वही नीति-नियामक और सर्वोपरि थे। 'त्यागभूमि' का सारा काम तो सर्वथा उन्हीं के निर्देशानुसार हुआ। इसलिए उसका जो रूप बना तथा जैसी वह यशस्वी हुई, उसका सारा श्रेय निश्चित रूप से उन्हीं को है। हम जिन लोगों ने उसमें काम किया, वह भी उन्हीं की वजह से। उनके आमंत्रण पर और उन्हीं के नीति-रीति-निर्देशन में हमने अपना योगदान उसमें किया।

संवत् १९८४ की विजयादशमी को मासिक पत्रिका के रूप में 'त्यागभूमि' का प्रथम अंक निकला था और तीसरे वर्ष (संवत् १९८७) श्रावण मास में उसका जो अंक निकला, वही सरकारी प्रहार के कारण उसका अंतिम अंक हुआ। इसके बाद साप्ताहिक रूप में वह निकली जरूर, और कुल मिलाकर वह भी ठीक ही थी, लेकिन मासिक वाली बात उसमें नहीं आपाई। यों जहां तक मेरा सवाल है, मैंने दोनों में ही आरंभ से अंत तक काम किया और दोनों का ही बहुत कुछ दायित्व मेरे ऊपर रहा। इसके अलावा, बीच के काल में, 'मंडल' की पुस्तकों के संपादन में श्री वैजनाथ महोदय का हाथ बंटाया।

'त्यागभूमि' में मेरा योगदान एक संयोग की ही बात थी। 'माधुरी' के अत्यल्पकालीन कार्य के सिवा तबतक मासिक पत्र के कार्य का मुझे कोई अनुभव नहीं था। दैनिक 'आज' में थोड़े कार्य के अलावा, प्रायः साप्ताहिक पत्रों में ही तबतक मैंने कार्य किया था और 'त्यागभूमि' निकली, उससे पहले 'स्वदेश' (गोरखपुर) का स्थानापन्न संपादक और 'भारतविजय' (बंबई) का संपादक रहने के बाद अजमेर में मैं ऐसी स्थिति में था जब पत्रकारिता से संपर्क रखते हुए भी मैं नौकर कहीं नहीं था। ऐसे समय क्षेमानंदजी 'राहत' के आग्रह पर मैं हरिभाऊजी से मिलने उनके घर गया और उन्होंने 'त्यागभूमि' की योजना बताकर अपने सहायक के रूप में उसके संपादन-विभाग का कार्य मेरे सुपुर्द कर दिया।

मेरे लिए यह अप्रत्याशित था और मुझे यह निश्चित भी नहीं था कि मैं ठीक तरह काम कर सकूंगा, क्योंकि मासिक पत्र का मुझे खास अनुभव नहीं था और गांधी-अनुरक्त होते हुए भी मन में आशंका थी कि हरिभाऊजी जैसे गांधीवादी के साथ मैं चल सकूंगा या नहीं। इस आशंका का कारण मेरा 'राजस्थान सेवा संघ' वालों से सान्निध्य और उनकी रीति-नीति कुछ उग्र होना था। अपने स्वभाव के अनुसार यह बात मैंने उन्हें स्पष्ट करदी और जब वह वेतन की बात करने लगे तो कहा कि पहले देखलें कि मैं चल भी सकूंगा या नहीं। आखिर इसी आधार पर 'त्यागभूमि' निकलने से तीन महीने पहले उसका काम उन्होंने मुझे सौंपा था, जबकि उनके साथ राहतजी के संयुक्त संपादक होने के अलावा और कोई सहायक उस समय नहीं था।

'त्यागभूमि' 'जीवन, जागृति, बल और बलिदान की पत्रिका' थी। इसी का द्योतक उसका यह आदर्श वाक्य था:

आत्मसमर्पण होत जहँ, जहाँ विशुद्ध बलिदान।
मर मिटने की साध जहँ, तहँ हैं श्री भगवान॥

और 'नेति-नेति' की कविता से प्रथमांक का प्रारंभ किया गया था, जिसमें ये पंक्तियां भी थीं :

हां, अंतस्तल का अंतिम कण तक मातृ-चरण अर्पण कर दें!
वह अमर भिखारी द्वार खड़ा है, उसकी भी झोली भर दें!

कहने की आवश्यकता नहीं कि यह 'नेति-नेति' संयुक्त संपादक क्षेमानंद 'राहत' के अलावा और कोई नहीं था, जिनकी राष्ट्रार्पण भावना कविता में साकार हुई थी और अग्रलेख तो हरिभाऊजी का होना ही था। अग्रलेख में उन्होंने बताया था : 'त्यागभूमि' केवल बुद्धि की भूख बुझाने नहीं आई है, बल्कि आत्मा को बल देने के लिए आई है।" इसी भावना से ओत-प्रोत हो हमने 'त्यागभूमि' का कार्य किया।

जैसा कि मैं बता चुका हूं, 'त्यागभूमि' का काम करने की जब मुझसे बात चली, मुझे आशंका थी कि मैं उसका काम कर सकूंगा या नहीं, अथवा यह कहना ज्यादा ठीक होगा कि हरिभाऊजी के साथ मेरी पटेगी भी या नहीं। लेकिन संयोग कुछ ऐसे हुए कि शुरू से ही उसका काम मेरा ऐसा काम हो गया, जिसमें अवरोध और कठिनाई का आभास कभी नहीं हुआ; बल्कि सच पूछो तो उसमें मैं रम गया और ऐसा आनंद आने लगा, जैसा उससे पहले तो नहीं ही आया था, उसके बाद भी शायद ही अनुभव हुआ हो।

हरिभाऊजी पहले अंक की तैयारी के समय कार्यवश अकसर बाहर रहे और राहतजी का यह हाल कि जो लेखादि उन्हें पढ़कर सुनाया, वह सुन लिया। सुनकर कुछ 'हृदय की फुलझड़ियां' जैसे नोट कहीं फुटनोट में जोड़ दिये या कविता के नीचे 'हृदय के टुकड़े' लिख दिये, या जो उन्हें लिखना होता—कविता या लेख, संपादकीय टिप्पणी आदि—वह लिख देते; बाकी संपादन-संशोधन, क्रम आदि से उन्हें कोई सरोकार नहीं था। प्रारंभ में लेखादि हरिभाऊजी ने ही मंगाये, बाद में तो मैं स्वयं भी काम करने लगा और जब श्री रामनाथ 'सुमन' आ गये तो वह भी इस काम को करते थे।

स्तंभों का 'त्यागभूमि' में विशेष स्थान था। स्त्रियों के लिए 'आधी दुनिया', किशोरों के लिए 'उगता राष्ट्र', स्वास्थ्य के लिए 'हमारा स्वास्थ्य', विदेशी घटनाओं के लिए 'विश्व-दर्शन'। इसी तरह आर्थिक, साहित्यिक-सांस्कृतिक आदि विविध विषयों के स्तंभ थे। 'आधी दुनिया' तो फिर बढ़कर एक तिहाई से ज्यादा स्थान लेने लगा था।

श्री कृष्णचंद्र विद्यालंकार गुरुकुल कांगड़ी से स्नातक होकर पत्रकारिता का ज्ञान प्राप्त करने 'राजस्थान सेवा संघ' में आये थे, जहां से उसका मुखपत्र 'तरुण राजस्थान' (साप्ताहिक) निकलता था। इन दिनों वह प्रसिद्ध इतिहासज्ञ गौरीशंकर हीराचंद ओझा के यहां काम करते थे। मेरा तो 'संघ' के समय से ही उनसे परिचय था, 'त्यागभूमि' में हरिभाऊजी ने उनका आंशिक सहयोग प्राप्त किया। इतिहास के लेख प्रामाणिकता की दृष्टि से एक बार हम उन्हें दिखा लेते थे, इसके अलावा विश्व-दर्शन के साथ-साथ आर्थिक टिप्पणियां भी वह तैयार करते थे। सुमनजी आये तब से साहित्य का स्तंभ उन्होंने शुरू किया, साथ ही काशी (वाराणसी) तथा प्रयाग के साहित्यिकों के साथ 'त्यागभूमि' का संपर्क जोड़ा।

सारी सामग्री समय पर प्रेस को पहुंचाने और लेखों के मंगाने, संशोधनादि के साथ 'आधी दुनिया' और 'उगता राष्ट्र' का पूर्ण दायित्व मेरे ऊपर था। अतः जैसे हरिभाऊजी हर महीने 'त्यागभूमि' का मुख्य लेख लिखते थे, मुझे 'आधी दुनिया' के लिए स्त्रियों सम्बन्धी किसी विषय पर मुख्य लेख तैयार करना होता और स्त्रियों-सम्बन्धी घटनाओं पर टिप्पणियां लिखनी पड़तीं। स्त्रियों सम्बन्धी अच्छे लेख जुटाना उस समय आसान काम नहीं था, जो आते उनमें से ज्यादातर को नया रूप देना पड़ता और कुछ खुद ही छद्म नामों से तैयार करने पड़ते थे। 'उगता राष्ट्र' को भी ऐसा बनाना था, जिससे उगती पीढ़ी देश-भक्ति और उच्च आदर्शों की प्रेरणा तथा स्फूर्ति प्राप्त करे। इसमें भी अनुवाद, संकलन के अलावा खुद भी लिखना पड़ता था। साधु टी० एल० वास्वानी के लेखों में जीवन, जागृति, बल, बलिदान मानो छलछलाता था, अतः उनकी चीजों का इस स्तम्भ में खूब उपयोग किया। श्री शांतिप्रिय द्विवेदी इसमें काफी लिखते थे, श्री सोहनलाल द्विवेदी की कविताएं पहली बार दी गई और श्री शांतिप्रसाद वर्मा के (जो अब राजनीति विज्ञान में राष्ट्रीय फ़ेलो हैं) गद्यगीत अकसर रहते थे। ये दोनों ही स्तम्भ उस समय बहुत लोकप्रिय थे।

मेहनत तो निश्चय ही खूब करनी पड़ती थी, पर उन दिनों बाहर के काम करके कमाई का जमाना नहीं था और खुद भी उन्हीं भाव में लीन होने से उस मेहनत का अपना आनन्द था। फिर लेख-टिप्पणियों के नीचे नाम देने की प्रथा से शोहरत के साथ आत्मविश्वास भी बढ़ता था।

मानना होगा कि यह सब सम्भव हुआ हरिभाऊजी के विश्वास और उनकी साथियों को छूट देने की पद्धति से ही। पहले अंक के समय ही बहुत कुछ अपने आप काम करना पड़ा, फिर तो उनका ऐसा आश्वासन रहा कि उनकी लिखी चीज भी अगर कहीं खटकी तो उन्होंने उसका बुरा नहीं माना। अपने लिखे लेख एक बार मैं उन्हें अवश्य दिखाता था, उनके पसन्द करने पर ही वे छपे। मेरा उत्साह तथा आत्मविश्वास इससे निश्चय ही बढ़ा।

मेरे निज के लाभ का जहां तक सवाल है, सच पूछो तो साहित्यिक ज्ञान 'त्यागभूमि' से ही पैदा हुआ और गुजराती से 'भारत के स्त्री-रत्न' तथा मराठी से 'जीवन-विकास' अनूदित पुस्तकों के अलावा 'स्त्री-समस्या' नाम की एक मौलिक पुस्तक भी इसी समय प्रकाशित हुई। इससे तथा लेख, टिप्पणियों, समालोचनाओं के नीचे नाम जाने से मेरा नाम और परिचय भी हुआ। 'आधी दुनिया' के कारण मैं उस समय हिंदी-संसार में प्रसिद्ध महिलाओं के सम्पर्क में भी आया, जिनमें से कुछ के साथ तो बाद में भी स्नेह-सम्बन्ध रहा। अनेक स्त्रियों की समस्याओं को लेख-टिप्पणियों के रूप में सामने लाकर यथाशक्ति उनके समाधान भी प्रस्तुत किये। 'राखी का सन्देश' लेख पर तो बहुत व्यापक प्रतिक्रिया हुई थी और कुमारी लज्जावती, प्रिंसिपल लीलावती भंवर, तोरणदेवी शुक्ल 'लली', विद्याधरी जौहरी आदि अनेक गण्यमान्य महिलाओं के बधाई-सन्देश मिले थे। श्री पारसनाथजी उस समय बिड़लाजी के प्राइवेट सेक्रेटरी थे। प्रथमांक में प्रकाशित मेरे 'हमारा स्वास्थ्य' लेख ने उन्हें आकर्षित किया। उसका ही शायद यह परिणाम था कि 'हिंदुस्तान टाइम्स' के मैनेजिंग डाइरेक्टर बनने पर जब उन्होंने 'हिंदुस्तान' का प्रकाशन शुरू किया तो उसमें मुझे भी बुला लिया।

'त्यागभूमि' सम्भवतः श्री घनश्यामदासजी बिड़ला की दिलचस्पी और सहायता से निकली थी, इसीलिए बिड़लाजी की मौलिक रचनाएं उसमें छपीं। इनमें कुछ तो विदेश-यात्रा से भेजे उनके पत्रों से संकलित की गईं, पर कुछ स्वयं लेख रूप में भी प्राप्त हुईं। उनकी लेखन-शैली ने मुझे प्रभावित किया और 'मुझसे सब अच्छे' लेख तो इतना पसन्द आया कि अभी भी उसके कारण बिड़लाजी मेरे लिए बहुत सम्मान्य हैं। उस समय के अन्य प्रसिद्ध और उदीयमान व्यक्तियों को भी 'त्यागभूमि' ने अपनी लपेट में लिये बिना न रखा।

गांधीजी के निकटवर्त्ती लोगों के लेख अक्सर गुजराती में आते और जवाहरलालजी, लाला लाजपतराय जैसे राजनैतिक क्षेत्र में चमकने वालों के अंग्रेजी में। हम उनका हिंदी में अनुवाद कर देते थे। कुछ विशिष्ट क्षेत्र के व्यक्तियों के लेख हिंदी में भी आये, पर उनको सुसम्बद्ध हमें ही करना पड़ता था। जैनेन्द्र कुमार की प्रथम कहानी 'त्यागभूमि' ने ही छापी थी। डॉ० केसकर का लेख भी हमने छापा था। रामधारीसिंह 'दिनकर' की कविता 'त्यागभूमि' की फ़ाइल में मौजूद है। मैथिलीशरण गुप्त और सियारामशरण गुप्त की कविताएं हम छापते थे, जिनमें सियारामशरण की 'खादी की चादर' से तो मैं बहुत प्रभावित हुआ था। श्री बालकृष्ण शर्मा 'नवीन' का 'उर्मिला' खंडकाव्य भी 'त्यागभूमि' में ही छपा था। श्री चन्द्रगुप्त विद्यालंकार की कहानी छपी थी। लाहौर के आचार्य विश्वबन्धु गुप्त, गुरुकुल के प्रो० रामदेव, सत्यव्रत जी सिद्धांतालंकार, शंकरदेव विद्यालंकार, कानपुर के श्री देवव्रत शास्त्री, प्रयाग के श्री प्रफुल्लचन्द्र ओझा 'मुक्त' तथा अन्य कितने ही नाम याद आते हैं, पर पंजाब के सरदार शार्दूलसिंह कवीश्वर के लेख 'विद्रोह की पवित्रता' में जो आग थी वह अब भी याद आती है। आचार्य ध्रुव, काका साहब कालेलकर, किशोरलाल मशरूवाला आदि गांधीवादी चिंतकों को तो हम प्राथमिकता देते ही थे, अन्य विचारवालों की भी उपेक्षा नहीं की। हीरालालजी शास्त्री और बिड़लाजी के बीच, नाम गुप्त रखते हुए, जो वाद-विवाद चला, वह इस बात की याद दिलाता है कि हम कितनी स्वतन्त्रता से काम लेते थे। वस्तुतः आज के अनेक प्रसिद्ध साहित्यकार तभी उदीयमान हुए थे और उनमें से अनेक की रचनाएं 'त्यागभूमि' में छपी हैं। सर्वोदय के नेता श्री सिद्धराज ढड्ढा का लेख भी हमने 'साप्ताहिक

त्यागभूमि' में छापा था, जबकि वह कलकत्ता में शायद मारवाड़ी चेम्बर आफ कामर्स के सेक्रेटरी थे और वही शायद उनका प्रथम लेख था। सच तो यह है कि जिन्होंने 'त्यागभूमि' में लिखा, वही नहीं, बल्कि जिन्होंने उसमें काम किया, वे सभी आगे जाकर विख्यात हुए और ऊंची स्थिति को पहुंचे।

नेहरूजी तो उस समय युवकों की आशाओं के तारे थे, पर 'त्यागभूमि' में उन्होंने दिचचस्पी रखी और उसे 'अद्वितीय पत्रिका' बताया था। लेख तो उनके अंग्रेजी में ही आते थे, पर एक पत्र हिंदी में हरिभाऊजी के नाम आया था, जो उनके हाथ का लिखा था और विषयक्रम ही नहीं, उसकी लिखावट भी बहुत साफ-सुंदर थी। लाला लाजपतरायजी की दिलचस्पी का तो यह हाल था कि पत्र का नाम 'त्यागभूमि' देखकर वह उबल पड़े। एक लम्बे पत्र में लिखा, 'आपने अपने पत्र का नाम 'त्यागभूमि' रखा है। मेरी समझ में नहीं आया, क्यों? क्या 'त्यागभूमि' से यह अभिप्राय है कि हमारी भूमि वह है, जिसको उसके पुत्रों ने त्याग दिया है या इससे यह मंतव्य है कि हमारी भूमि में त्याग-भावना प्रधान है?....मेरी सम्मति में आपको इसका नाम या तो 'स्वर्गभूमि' रखना चाहिए था या 'नरकभूमि'।"

लालाजी ने आगे यह भी लिखा, "मेरी तो समझ में नहीं आता कि हम त्याग का स्वर क्यों अलापते हैं। हम तो बहुत त्याग कर चुके। इस त्याग ने हमारा खाना खराब कर दिया, हमको धूल में ही मिला दिया और हमें न घर का छोड़ा न घाट का। इस समय तो हमें पुरुषार्थ का, साहस का, हौसले का और आशा का प्रचार जरूरी है, न कि त्याग का।"

हरिभाऊजी ने लालाजी का पूरा पत्र 'त्यागभूमि' में प्रकाशित किया और बड़ी विनम्रता से जवाब दिया, जिसमें और बातों के साथ लिखा, "त्याग और 'त्यागभूमि' से हमारा अर्थ और उद्देश्य केवल यही है कि देश को पराधीनता की बेड़ियों से छुड़ाने के लिए भारत का बच्चा-बच्चा अपना सर्वस्व होम देने को तैयार हो जाय। जबतक वह देश को आजाद नहीं देख लेता तबतक किसी दूसरी चीज में उसका मन न लगे। यह दर्द, यह कलंक, यह बेचैनी और यह बलिदान का भाव पैदा करना ही 'त्यागभूमि' के जीवन का लक्ष्य है।"

ऐसी भावना और केवल स्फूर्तिदायक सत्साहित्य ही देशवासियों तक पहुंचाने की दृष्टि 'त्यागभूमि' की थी। अंत तक 'त्यागभूमि' ने इसी भावना का निर्वाह किया। उसका अंतिम उल्लेख भी इसी भावना से ओत-प्रोत रहा। हरिभाऊजी उस समय जेल में थे और स्थानापन्न संपादक तो यद्यपि सुमनजी थे, पर सरकारी प्रहार के सम्मुख वह मैंने ही लिखा था, जिसका शीर्षक था 'विजय की ओर' और उसमें 'त्यागभूमि' की यह अंतिम वाणी थी, "नहीं कह सकते कि वह शुभ दिन कब होगा, जब हम विजय प्राप्त कर लेंगे; परन्तु हम बढ़ उसी तरफ रहे हैं, इसमें संदेह नहीं।"

लेख में आगे लिखा गया था, "संसार का सर्वश्रेष्ठ महापुरुष महात्मा गांधी इस समय हमारा मंत्रदाता है, कर्मण्य और वीर युवक जवाहर हमारा अगुआ और सत्य-अहिंसा के ईश्वरीय अस्त्र हमारे मददगार। ईश्वर का वरद हस्त हमारे सिर पर है, संसार की पवित्र आत्माएं हमें प्रेरणा दे रही हैं और अपना शुभ उद्देश्य हमारे साथ है। भारत के नर-नारी, बूढ़े-जवान और बच्चे तक, अपने रक्त और हड्डियों से स्वाधीनता के मन्दिर का निर्माण करने के लिए जूझ पड़े हैं।"

अंत में यह स्फूर्तिदायक उद्बोधन था, "तिमिर नष्ट हो रहा है, उषा अपनी लालिमा से आकाश को अरुणिमामय बनाकर शुभ प्रकाश की सूचना दे रही है। वह भगवान भुवनभास्कर चले आ रहे हैं। वह देखो, उधर एक ओर स्वाधीनता का मंदिर निर्मित हो रहा है, जिस पर शहीदों के खून से लिखा जा रहा है—**स्वतंत्र भारत**। अब बिलम्ब की जरूरत नहीं। विजय की देवी माला लिये हमारी प्रतीक्षा में खड़ी है; बस जरूरत है यही कि हम किसी मायाजाल में फंसे बिना इसी दृढ़ता और साहस के साथ आगे बढ़ते रहें, जबतक कि लक्ष्य पर न पहुंच जायं।"

और इस तरह 'वन्देमातरम्' के साथ 'त्यागभूमि' ने विदा ली।

कलकत्ता और उत्तर प्रदेश के कुछ स्थानों तक ही

[शेष पृष्ठ २०२ पर]

'त्यागभूमि' की प्रेरक भूमिका

□

भंवरमल सिंघी

चालीस वर्ष पहले जब मैं कालेज में पढ़ता था और देश के स्वतंत्रता-संग्राम के विषय में जानने और समझने की चेतना पैदा होने लगी थी और चूंकि कांग्रेस की तत्कालीन नीति के अनुसार देशी राज्य इस संग्राम से बाहर रखे गये थे, जयपुर में इस आंदोलन का प्रत्यक्ष परिचय और तज्जनित प्रेरणा पाने की स्थिति नहीं थी। जो कुछ इस दिशा में मिलता था, वह समाचार-पत्रों और पत्रिकाओं से ही मिलता था। इनके द्वारा ही महात्मा गांधी और स्वतन्त्रता-संग्राम के अन्यान्य नेताओं के त्यागमय संघर्ष की बातें हम तक पहुंचती थीं। वह त्याग और त्यागियों के संघर्ष का युग था। सर्वत्र त्याग की वीणा बजती थी और बजायी जाती थी। महात्माजी ने स्वातंत्र्योपलब्धि के लिए त्याग का महामंत्र दिया था।

जिन पत्र-पत्रिकाओं को मैं उन दिनों पढ़ता था, उनमें 'त्यागभूमि' से सर्वाधिक प्रेरणा पाता था। उसमें प्रकाशित लेखों एवं कविताओं के राष्ट्रीय दृष्टिकोण ने मुझमें स्वतन्त्रता की उन भावनाओं को उत्पन्न किया, जगाया और मजबूत किया, जिनके बल पर मैंने भावी जीवन में स्वतन्त्रता-संग्राम का पथ ग्रहण किया। 'त्यागभूमि' के माध्यम से मेरे मन पर दो लेखकों की अद्भुत छाप पड़ी: एक थे श्री क्षेमानन्द राहत और दूसरे थे श्री हरिभाऊ उपाध्याय। उनके लेखन में प्रेरणा पैदा करने की अद्भुत शक्ति थी। श्री क्षेमानन्द राहत के छोटे-छोटे लेख मुझे कई बार तो बेचैन कर देते थे, रुला देते थे। इन दोनों ही व्यक्तियों को मैंने कभी देखा नहीं था। देखी थी 'त्यागभूमि' और पढ़े थे उसमें उनके लेख। कभी उनकी तस्वीर देखी हो, ऐसा भी याद नहीं। वास्तव में उस जमाने में चित्र आदि छापने का आज की तरह का रिवाज भी नहीं था। उनका लेखन ही उनका चित्र था, व्यक्तित्व था।

मुझे न उस वक्त पता था और न आजतक मालूम हुआ कि पत्रिका का नाम 'त्यागभूमि' रखने के पीछे क्या विचार, भावना और कल्पना थी। मुझे तो यही लगता था कि भारत को त्याग की प्रेरणा और क्षमता प्रदान करने वाली भूमि बनाना चाहिए। एकाध बार यह भी मन में आया था कि राजस्थान को त्याग और बलिदान की भूमि माना जाता था, इसीलिये संभवतः राजस्थान से प्रकाशित होने वाली पत्रिका का नाम 'त्यागभूमि' रखा गया हो।

उन दिनों राजपूताना की विभिन्न रियासतों में अंग्रेजी हुकूमत के संरक्षण में सामंतवादी राज्यतंत्र चलता था—पहला ताला सामंतवादी व्यवस्था का और उसके ऊपर साम्राज्यवादी व्यवस्था का था। इस तरह से रियासतों में रहने वाले लोग दोहरी गुलामी में कैद थे—एक राजाओं की और दूसरी अंग्रेजों की। इस शासन-व्यवस्था के मध्य राजपूताना में सिर्फ अजमेर ही एक ऐसा इलाका था, जहां कोई राजा नहीं था और अन्य प्रदेशों की तरह ही सीधी हुकूमत अंग्रेजों की थी। इसलिए स्वाधीनता-संग्राम का जो कुछ कार्य और आंदोलन राजस्थान में होता था, उसका केन्द्र अजमेर ही था। वहां कांग्रेस का संगठन भी था। वास्तव में, अजमेर ने इस दिशा में बहुत महत्वपूर्ण भूमिका का निर्माण और निर्वाह किया। इसी भूमिका के अंग-स्वरूप महात्मा गांधी के आशीर्वाद और जमनालालजी बजाज की प्रेरणा से तथा श्री हरिभाऊ उपाध्याय और श्री जीतमलजी लूणिया के प्रयत्नों से वहां 'सस्ता साहित्य मंडल' की स्थापना हुई, जिसका ध्येय स्वतन्त्रता की राष्ट्रीय चेतना पैदा करने वाले साहित्य का प्रचार करना था। 'त्यागभूमि' का मूल लक्ष्य यही था और इस लक्ष्य की सफलता में निश्चय ही 'त्यागभूमि' का बहुत बड़ा योगदान था। मेरा विश्वास है कि उस पत्रिका ने जिस प्रकार मुझे प्रेरित किया, राष्ट्रीयता की भावना मुझमें पैदा की, उसी प्रकार से अन्य हजारों-हजारों लोगों को भी प्रेरित और

प्रोत्साहित किया होगा। श्री क्षेमानन्द राहत की कलम से लिखी गई लघु कथाओं और गद्य-काव्यों में ऐसी आग रहती थी, जो मुर्दों में जान फूंकती थी।

जैसा मैंने ऊपर बताया, उस समय श्री राहत को कभी देखा नहीं था, परन्तु कई वर्षों बाद कलकत्ता आ जाने पर एक बार उनसे भेंट हुई। उन्हें देखकर और बातें करके विश्वास ही नहीं हुआ कि इतने सरल और शांत स्वभाव के व्यक्ति में इतनी प्रखर आग कैसे और क्यों कर पैदा हुई। पर जो आग—अहिंसक संग्राम की आग—महात्मा गांधी ने पैदा की थी, वह तो सारे देश में फैली हुई थी। अहिंसा में प्रतिकार का अग्नि-संस्कार प्रज्ज्वलित हुआ था। महात्मा गांधी ने अहिंसक संग्राम का एक बिलकुल नया प्रयोग शुरू किया था। अहिंसा और युद्ध (दो विरोधी दीखनेवाले तत्वों) में उन्होंने एक अपूर्व शक्तिशाली समन्वय स्थापित किया था। अहिंसा के द्वारा युद्ध भी हो सकता है, इस कल्पना को उन्होंने अपने अद्भुत प्रयोगों से साकार किया था। सारे वातावरण में अहिंसा का स्वर था—समाज में, धर्म में, साहित्य में, कला और राजनीति में।

एक ओर जहां संग्राम चल रहा था, सत्याग्रह हो रहा था, जेल भरी जा रही थी, लाठियों और गोलियों के प्रहार हो रहे थे, वहीं दूसरी ओर अहिंसक समाज और अहिंसक अर्थव्यवस्था की रचनात्मक योजनाएं बन रही थीं। गांधीजी की सबसे बड़ी महत्ता इसी में थी कि वे एक छोर पर हर अन्याय और अत्याचार के विरुद्ध युद्ध चला रहे थे और दूसरे छोर पर समाज का अहिंसक ढांचा खोज और स्थापित कर रहे थे। उनकी विचारधारा के अनुसार एक के बिना दूसरा सम्भव नहीं था। उनके शब्द-कोष में युद्ध का नाम सत्याग्रह था और निर्माण का नाम सर्वोदय का रचनात्मक कार्य था। दोनों एक ही सिक्के के दो पहलू थे। इस सिद्धांत के प्रयोग की शिक्षा देने की दृष्टि से विभिन्न भाषाओं में प्रचार कार्य करने के लिए जन-साधारण की जरूरत के अनुसार सस्ते एवं साहित्य की आवश्यकता थी। 'सस्ता साहित्य मण्डल' की स्थापना इसी आवश्यकता की पूर्ति के लिए और इसी योजना के अंग के रूप में हुई थी। मुझे याद है कि मण्डल द्वारा प्रकाशित उन छोटी-छोटी सस्ती पुस्तकों का कितना महत्व था, जिनके माध्यम से ही हम-जैसे विद्यार्थी स्वतन्त्रता संग्राम की आंधी का अनुभव कर सकते थे, नेताओं के विचारों और कार्यों के सम्बन्ध में जान पाते थे—प्रेरणा प्राप्त कर पाते थे। इस दृष्टि से 'सस्ता साहित्य मण्डल' मात्र किताबें छापने और बेचने का 'मण्डल' नहीं था, बल्कि राष्ट्रीय जागरण के प्रचार का प्रतिष्ठान था। इसके पीछे आर्थिक योजना नहीं थी, अहिंसक संग्राम की जीवन-पीठिका थी। 'मण्डल' ने 'त्यागभूमि' जैसी पत्रिका निकाल कर एक नया कीर्तिमान स्थापित किया था। सामग्री-संकलन और सम्पादन की सारी योजना और व्यवस्था के पीछे उत्सर्ग की अपूर्व भावना थी। वह किसी का व्यवसाय नहीं था, किसी व्यक्ति विशेष की प्रवृति नहीं थी, वह तो थी सारे राष्ट्र की योजना, सारे राष्ट्र की प्रवृति—महात्मा गांधी की साहित्य-पीठिका!

चालीस वर्षों के अंतराल के बावजूद आज भी 'त्यागभूमि,' मेरे मन और मस्तिष्क पर जमी हुई है उसके कतिपय पृष्ठ तो आज भी ज्यों-के-त्यों मेरी आंखों के सामने कौंध जाते हैं। कुछ पृष्ठ तो मैंने काट कर काफी दिनों तक अपने पास रख छोड़े थे, पर १९४२ में मेरी गिरफ्तारी के समय पुलिस द्वारा की गई तलाशी के समय ऐसे इतस्ततः हो गये कि फिर मिले ही नहीं। जो हो, उनकी जीवन-वीणा आज भी सुनता हूं। उनके आग्नेय शब्द आज भी मेरे कानों में गूंजने लगते हैं। वास्तव में, 'त्यागभूमि' से मैंने राष्ट्रीय चेतना पाई, अहिंसा का प्रतिकार-दर्शन पाया, साहित्य-लेखन की प्रेरणा भी पाई। सच पूछें तो क्या नहीं पाया? मेरे जीवन के निर्माण में उस पत्रिका का भी बहुत बड़ा योगदान रहा है।

आज जब 'सस्ता साहित्य मंडल' अपने पचास वर्षों की यात्रा का इतिहास लिख रहा है, उस इतिहास के पथ पर उसके द्वारा प्रसूत प्रेरणा से प्रभावित और प्रेरित पथिकों के समुदाय में मैं अपने-आपको भी देख रहा हूं और उस महान यात्रा का पुण्य-स्मरण कर मेरा मस्तक श्रद्धा के साथ झुक रहा है, सदा-सर्वदा झुकता रहेगा। □

अजमेर-काल के सहयोगी

□

मार्तण्ड उपाध्याय

महात्मा गांधी कहा करते थे कि उद्देश्य शुभ हो, साधन प्रचुर हों, पर कार्यकर्त्ता योग्य और प्रामाणिक न हों तो संस्था बनकर बिगड़ जाती है। पर उद्देश्य शुभ हो और कार्यकर्त्ता योग्य तथा प्रामाणिक हों तो साधन अपने आप जुटते चले जाते हैं और कोई भी लोकसेवी संस्था अपने पांव पर खड़ी होने में सफल हो जाती है।

'मंडल' के बारे में बहुत अंशों में यह बात चरितार्थ होती है।

'मंडल' की स्थापना में जिन लोगों का हाथ था, वे सब गांधीजी की ऊपर लिखी कसौटी पर कसे गये व्यक्ति थे। सर्वश्री जमनालालजी बजाज और हरिभाऊ उपाध्याय के साथ सेवा की उमंग वाले प्रामाणिक, परिश्रमी और विनम्र श्री जीतमलजी लूणिया इस कार्य के लिए अपने को समर्पित करने के कारण प्रथम प्रमुख व्यक्ति थे। जब जमनालालजी बजाज और हरिभाऊ उपाध्यायजी ने 'मंडल' जैसी संस्था की स्थापना की चर्चा उनसे की और उसके लिए प्रकाशन-कार्य में अनुभवी सेवापरायण तथा निःस्वार्थ काम करने वाले प्रामाणिक व्यक्ति की आवश्यकता बताई तो उन्होंने सहज मुस्कान से उत्तर दिया, "ऐसा आदमी मैं कहाँ खोज पाऊंगा? अगर आपको मुझ पर विश्वास हो और मुझे योग्य समझते हों तो अपना काशी का 'हिंदी साहित्य मंदिर' समाप्त करके 'मंडल' के कार्य में अपना जीवन देने को तैयार हूं।"

जमनालालजी को ऐसे ही व्यक्ति की तलाश थी। वह जीतमलजी के इस उत्तर से बहुत प्रभावित हुए। उन्होंने तुरन्त कहा, "आपकी काशी की दुकान का अच्छी पुस्तकों का सारा स्टाक हम खरीद लेते हैं। आप आज से ही अपने को 'मंडल' का मंत्री समझ कर कार्य प्रारम्भ कर दें। पुस्तकें काशी से अजमेर मंगा लें और 'मंडल' की एक पुस्तक-भंडार की दुकान खोलकर 'मंडल' की पुस्तकों के साथ उनकी भी बिक्री करते रहें।"

यों सबसे पहले 'मंडल' के कार्य में श्री जीतमलजी के सहयोगी हुये पंडित जगन्नारायण देव शर्मा 'कवि-पुष्कर'। ये १९२२ से ही जीतमलजी के प्रकाशन-कार्य में सहयोग देते आ रहे थे, और जब जीतमलजी 'मंडल' में आ गये तो पंडितजी को जीतमलजी ने अजमेर आकर 'मंडल' में उनको सहयोग देने का निमंत्रण दिया। वे तुरंत राजी हो गये। शुरू-शुरू में 'मंडल' का कार्य अजमेर में जमाने तथा छपाई आदि की सुविधा अजमेर में न रहने से पुस्तकों की छपाई की व्यवस्था काशी में करने आदि में जगन्नारायणजी का बड़ा योग रहा। इसके अलावा हिसाब-किताब सम्पादन, प्रूफरीडिंग से लगाकर बंडल बांधने तक का काम भी उन्होंने प्रसन्नता-पूर्वक किया।

पंडितजी का और हरिभाऊ उपाध्यायजी का साथ बनारस में बहुत पुराना रहा। जब हरिभाऊजी काशी से अपने अध्ययन-काल में ही 'औदुंबर' नामक मासिक पत्र १९१५ में निकालते थे तब जगन्नारायण देव शर्मा उसमें लेखादि लिखते थे तथा प्रूफ-संशोधन एवं व्यवस्था-कार्य में भी मदद करते थे।

जैसे-जैसे 'मंडल' का कार्य बढ़ता गया, उसके जैसे ही योग्य कार्यकर्त्ता जुड़ते गये।

पुस्तकों के संपादन कार्य के लिए 'मंडल' को सर्वप्रथम मिले श्री वैजनाथजी महोदय, जो कुछ समय पहले श्री हरिभाऊजी के साथ-साथ अहमदाबाद में महात्माजी के 'हिन्दी नवजीवन' के कार्य में सहयोगी रह चुके थे। अजमेर से निकली 'मंडल' की हर पुस्तक उनकी निगाह से और कलम के नीचे से गुजरी है। इसके अलावा उन्होंने पहले 'मालवमयूर' में और बाद में 'त्यागभूमि' के संपादन में भी श्री हरिभाऊजी का साथ दिया। बाद में श्री जीतमलजी लूणिया के अस्वस्थ हो जाने और उस कारण मन्त्री पद से मुक्त हो जाने पर 'मंडल' के सम्माननीय सदस्य चुने

गये और 'मंडल' के मंत्री भी, और 'मंडल' के दिल्ली आने तक वह उसके मंत्री रहे।

'मंडल' ने प्रारम्भ से ही जिस योजना के अन्तर्गत प्रकाशन-कार्य शुरू किया, उसमें एक रुपया देकर स्थाई ग्राहक बनाने का काम प्रमुख था। जो एक रुपया देकर 'मंडल' के स्थाई ग्राहक बन जाते थे, उन्हें एक वर्ष में १६०० पृष्ठों का साहित्य चार रुपये में दिया जाता था। इस प्रकार शुरू के दो वर्षों में ही 'मंडल' के २००० से ऊपर स्थाई ग्राहक बन गये थे। ऐसे ग्राहक बनानेवालों में अजमेर के श्री ओंकारनाथजी बाकलीवाल ने अथक परिश्रम किया और उत्तर प्रदेश तथा बिहार में सैकड़ों की संख्या में 'मंडल' के स्थाई ग्राहक बनाये।

व्यवस्था में काम बढ़ जाने तथा प्रेस की स्थापना एवं 'त्यागभूमि' के प्रकाशन की योजना बन जाने के कारण व्यवस्था का भार जीतमलजी पर अधिक हो गया। इस कारण श्री नृसिंहदासजी अग्रवाल (बाबाजी) व्यवस्थापक के रूप में 'मंडल' में शामिल हुए। उनके आने से 'मंडल' में एक नवीन उत्साह, जान और जोश आ गया।

'मंडल' के हिसाब तथा पुस्तक-डिस्पैच विभाग में नसीराबाद के श्री रामलाल गोयल तथा शिवदयाल सिंहल, ब्यावर के श्री रामस्वरूप मिश्र, अजमेर के श्री मूलचन्द नागौरी और श्री दयालदास दौसावाला मुख्य थे। इनमें श्री रामलालजी गोयल 'मंडल' के मुख्य रोकड़िया, श्री मूलचन्दजी नागौरी 'त्याभूमि' के रोकड़िया थे। श्री पुरुषोत्तम पंत तथा श्री हरिशंकर मंडपजी लिपिक के रूप में 'मंडल' परिवार में सम्मिलित हुए।

जब प्रेस की स्थापना का निश्चय हुआ तो उसकी व्यवस्था के लिए इन्दौर के अनुभवी प्रेस के संचालक श्री नन्दकिशोरजी द्विवेदी प्रेस व्यवस्थापक के रूप में 'मंडल' परिवार में आये। पर अजमेर में उनका स्वास्थ्य ठीक न रहने के कारण १-१॥ वर्ष के बाद वह त्यागपत्र देकर चले गये। उनकी जगह आये आगरा के श्री गोपीवल्लभ उपाध्याय, जो पूना के प्रसिद्ध 'चित्रमय जगत' के हिन्दी संपादक थे और गांधीजी के 'हिन्दी नवजीवन' में हरिभाऊजी के सहयोगी थे। बाद में व्यवस्थापक के रूप में सम्मिलित हुए श्री शंकरलाल अग्रवाल, जो प्रेस बंद हो जाने तक रहे।

प्रेस के हिसाब-विभाग में श्री नरोतीलाल जैन तथा सहायक व्यवस्थापक तथा प्रूफ-संशोधन विभाग के अधिकारी के रूप में आये श्री गोपीकृष्ण विजयवर्गीय तथा श्री ओंकारलाल शास्त्री।

'मालव मयूर' का जब 'त्यागभूमि' के रूप में अवतरण हुआ और वह 'जीवन जागृति बल और बलिदान' का संदेश लेकर आई तो हरिभाऊजी के साथ उसके सहसंपादक हुए श्री क्षेमानन्द राहत, जो घोर राष्ट्रीयतावादी, भावुक कवि तथा हिन्दी भक्त थे और उनके प्रथम सहयोगी हुए श्री मुकुट बिहारी वर्मा। 'त्यागभूमि' में 'आधी दुनिया' तथा 'उगता राष्ट्र', ये दो स्त्रियों एवं युवकों के स्तंभ हुआ करते थे और ये दोनों स्तंभ मुकुटजी के जिम्मे थे।

श्री राहतजी एक वर्ष तक ही सहसंपादक रह सके। अस्वस्थता के कारण उन्होंने त्यागपत्र दे दिया। उनके बाद 'त्यागभूमि' के संपादन विभाग में आये सर्वश्री रामनाथ सुमन, हरिकृष्ण प्रेमी तथा बाद में 'त्यागभूमि' के साप्ताहिक हो जाने के बाद श्री शोभालाल गुप्त। श्री कृष्णचंद्रजी विद्यालंकार 'त्यागभूमि' के दो-तीन स्तंभ देखा करते थे—आर्थिक, मजदूर संबंधी तथा अन्तर्राष्ट्रीय विषय। वे प्रसिद्ध इतिहासज्ञ श्री गौरीशंकर हीराचन्द ओझा के 'राजस्थान का इतिहास' लेखन में सहायक थे और 'त्यागभूमि' के उपरोक्त स्तंभ अपने अतिरिक्त समय में सम्भाला करते थे।

'मंडल' के संपादन-कार्य में कुछ काल के लिए श्री शंकरलालजी वर्मा तथा श्री काशिनाथजी त्रिवेदी भी बैजनाथजी के सहायक होकर रहे थे।

श्री हरिभाऊजी का कार्य तो अच्छे, सुयोग्य, प्रामाणिक सेवाभावी कार्यकर्त्ता जुटाना, 'मंडल' के कार्य को प्रेरणा और गति देना रहता था तथा एक पारिवारिक वातावरण का निर्माण करना और ऊपरी देख-रेख रखना। उन्हीं के प्रयत्नों से अजमेर में ऐसे सेवाभावी, प्रामाणिक और निष्ठावान कार्यकर्त्ता एकत्र हुए, जिन्होंने बाद में देश के स्वतन्त्रता-संग्राम में अग्रसर होकर भाग लिया और स्वतंत्र भारत के निर्माण में योग देकर उच्च-से-उच्च पद को सुशोभित किया और अवसर आने पर बिना पद के लोभ के वहां से हट भी गये।

अजमेर काल के इन कार्यकर्त्ताओं में आज भी हमारे बीच में जो हैं और जिनकी शुभकामनायें हमें मिलती रहती हैं, वे हैं :

१. श्री नन्दकिशोरजी द्विवेदी २. श्री जीतमलजी लूणिया ३. श्री बैजनाथजी महोदय ४. श्री जगन्नारायण देव शर्मा ५. श्री गोपीकृष्ण विजयवर्गीय ६. श्री ओंकारनाथजी बाकलीवाल ७. श्री काशिनाथजी त्रिवेदी ८. श्री रामलाल जी गोयल ९. श्री ओंकारलाल शास्त्री १०. श्री मूलचन्द जी नागौरी ११. श्री शंकरलाल अग्रवाल १२. श्री शिवदयाल सिंघल। □

कविपुष्करजी का प्रेम-स्मरण

□

हरिभाऊ उपाध्याय

श्री जगन्नारायणदेव शर्मा 'कविपुष्कर' जी से मेरा प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष परिचय बहुत पुराना है। जब मैंने काशी से 'औदुम्बर' मासिक (१९१३ से १५) पत्र निकाला था, तब वे उसके पाठक थे। फिर हिन्दी साहित्य-मन्दिर, काशी से मेरे संपादकत्व में जब १९२३ में, 'मालवमयूर' निकला तब 'मयूर' के प्रकाशक श्री जीतमलजी लूणिया ने उसमें उनका सहयोग लिया था और जब (१९२६) में 'सस्ता साहित्य मंडल' अजमेर में स्थापित हुआ, तब तो उसमें पूर्णरूप से उन्होंने अपनी सेवाएं अर्पित की थीं। वह 'मंडल' के दौरे, प्रचार एवं कार्यालय का भार संभालते थे। 'ब्रह्मचर्य-विज्ञान' नामक पुस्तक भी लिखी थी। उस समय लूणियाजी और कविपुष्करजी मंडल के दो सुदृढ़ स्तम्भ थे। वहां रहते हुए वे हम लोगों के प्रेम और विश्वास-भाजन बन गये थे। जब 'त्यागभूमि' मासिक पत्रिका (१९२८ में) निकली तब उसमें उनकी कविताएं छपती रहीं।

एक बार मैंने उनसे कहा, "पंडितजी, राहतजी (क्षेमानन्दजी राहत, त्यागभूमि के सह-संपादक) की दाढ़ी पर कोई कविता बनाइए।" उन्होंने तुरन्त रचना करके सुनाई :

"राहतजी की लम्बी दाढ़ी, कैसी सुन्दर चिकनी गाढ़ी।
बात बोलते और हिलाते, मुसकाते औ' आँख मिलाते।"

यह आशु कविता सुनकर हमलोग खूब हँसे और मैंने कहा था, "वास्तव में आप आशु कवि हैं। आपने पुरस्कार के योग्य कार्य किया है। काशी के कंकर भी शंकर समान हैं। क्या कहना!"

काशी का मुझपर बड़ा ऋण है। इसी धाम से मैंने आत्मोन्नति का मार्ग ग्रहण किया और जीवन को सफल बनाने का यत्न किया और इसलिए मैं काशी के कृतविज्ञ कविपुष्करजी को स्नेह और आत्मीयता की दृष्टि से देखता हूं। उनके अभिनन्दन के सुअवसर पर उनका स्मरण कर उनके संपर्क और संसर्ग के कुछ शब्द यहां लिखते हुए मैं कुछ उऋणता अनुभव करता हूं। □

[पृष्ठ १९७ का शेष]

अपनी दृष्टि सीमित रखने वालों के लिए उससे बाहर का हिन्दी का काम शायद विशेष उल्लेखनीय नहीं होता। इसीलिए दुःख के साथ मैंने देखा है कि हिन्दी पत्र-पत्रिकाओं के बारे में प्रामाणिकता के साथ लिखे माने जानेवाले लेखों में 'सरस्वती' के साथ 'माधुरी', 'सुधा' और 'विशाल भारत' का उल्लेख तो प्रायः मिलता है, 'प्रभा' और 'मर्यादा' का जिक्र भी मिल जाता है, पर 'त्यागभूमि' को महत्व नहीं दिया जाता। इन पत्रिकाओं के महत्व को मैं अस्वीकार नहीं करता और इनकी श्रेष्ठता तथा इनकी देन के लिए कोई शक-शुबहा मेरे अंदर नहीं है। परन्तु इनका क्षेत्र जहां साहित्य या राजनीति तक सीमित था, वहां 'त्यागभूमि' साहित्य, राजनीति और संस्कृति सभी दृष्टियों से भारत की स्वतन्त्रता और भारतीयों के समग्र उत्थान के लिए समर्पित थी। इसी प्रयास में सरकारी कोप का भाजन बनकर वह समाप्त भी हुई और उसमें काम करने वाला शायद ही कोई व्यक्ति ऐसा बचा हो, जिसने देश के स्वातंत्र्य-यज्ञ में अपनी थोड़ी-बहुत आहुति न दी हो।

इसीलिए चालीस बरस से ऊपर हो गये उस समय को और हिन्दी-साहित्य ने तब से अबतक न जाने कितनी उन्नति और समृद्धि कर ली है, फिर भी बड़े दर्द के साथ मैं अनुभव करता हूं कि 'त्यागभूमि' जैसी पत्रिका उसके बाद और उससे पहले भी कोई नहीं निकली और बदली हुई परिस्थिति में अब निकलने की भी कोई संभावना नहीं है। □

'मंडल' और मार्तण्डजी

□

सुधीन्द्र

यदि हिन्दी की इनीगिनी श्रेष्ठ प्रकाशन-संस्थाओं का नाम लिया जाय तो उनमें 'सस्ता साहित्य मंडल' का स्थान अग्रगण्य होगा। पराधीन भारत में, एक महापुरुष के आशीर्वाद से, लघुरूप में जब इस संस्था की नींव अजमेर में डाली गई थी, तब शायद ही किसी को कल्पना रही हो कि एक दिन इसका रूप इतना व्यापक और कार्यक्षेत्र इतना विस्तृत हो जायगा।

कहते हैं, संस्था व्यक्ति की विराट छायामात्र होती है और निश्चय ही 'मंडल' के लिए यह बड़े गौरव की बात है कि उसकी स्थापना और विकास में अनेक मूर्धन्य व्यक्तियों का हाथ रहा है। उसकी स्थापना हुई स्वर्गीय जमनालालजी बजाज की प्रेरणा से, उसे आशीर्वाद दिया विश्वन्द्य गांधीजी तथा अन्य विभूतियों ने और उसकी नींव को जमाया श्री घनश्यामदासजी बिड़ला, श्री हरिभाऊजी उपाध्याय, श्री महाबीर प्रसादजी पोद्दार, स्वामी आनन्दजी, श्री जीतमल लूणिया, श्री वैजनाथ महोदय, प्रभृति संस्थापकों ने। उसके प्रारम्भिक कार्य-विस्तार के पीछे साधना रही श्री जीतमलजी लूणिया की, लेकिन उसके दीर्घकालीन विकास के साथ जिस व्यक्ति का नाम अभिन्न रूप से जुड़ा है वह हैं श्री मार्तण्ड उपाध्याय।

थोड़ी-सी स्कूली शिक्षा पाकर मार्तण्डजी ने अपने जीवन का प्रारम्भ बाईस वर्ष की अवस्था में इसी संस्था के द्वारा किया और तब से लेकर वह एकाग्रनिष्ठा से परिश्रमपूर्वक 'मण्डल' के कार्य को करते आ रहे हैं। उन्होंने अपनी भूमिका तैयार की साबरमती आश्रम में और बाद में जो कुछ सीखा, वह 'मण्डल' में, और यदि आज 'मंडल' इतना पल्लवित हुआ है तो इसका बहुत कुछ श्रेय उनकी सूझबूझ और सतत विकासशील प्रवृत्ति को है। वे अत्यंत संकोचशील हैं और क्रियात्मक सार्वजनिक जीवन से प्रयत्नपूर्वक दूर रहते हैं। इतने सम्मेलन होते हैं, इतनी सभाएं होती हैं, लेकिन क्या मजाल कि मार्तण्डजी उनमें दिखाई दे जायं! उनके इस संकोची स्वभाव से एक बड़ी हानि हुई है तो एक लाभ भी। हानि यह कि वह लोक जीवन के साथ अपना गहरा सम्बन्ध स्थापित नहीं कर पाए और उनका विकास एकांगी रह गया। लाभ यह हुआ कि उनकी शक्ति केन्द्रीभूत होकर 'मण्डल' पर लगी रही। उनका चिन्तन हर घड़ी 'मण्डल' के विकास के लिए होता रहा और इस प्रकार उनकी पूर्ण शक्ति का लाभ 'मंडल' को प्राप्त हुआ।

'मंडल' के साथ अनेक महापुरुषों के नाम सम्बद्ध हैं और गांधीजी के साबरमती आश्रम में तथा बाद के जीवन में जितने महापुरुषों के परिचय तथा संसर्ग का सुयोग मार्तण्डजी को मिला, उतना शायद ही किसी दूसरे व्यक्ति को मिला होगा, लेकिन इस व्यापक सम्पर्क से उनमें कभी भी व्यक्तिगत आकांक्षा उत्पन्न नहीं हुई और न उन्होंने कभी उस सम्पर्क का संस्था के लिए भी अनुचित लाभ लिया।

'मंडल' के अल्प साधनों को लेकर वह निरन्तर गतिशील रहे और उन साधनों का पूरा-पूरा उपयोग करके 'मण्डल' को इतना आगे बढ़ाया। पच्चीस हजार की पूंजी सन् १९२५ में भले ही पर्याप्त रही हो, लेकिन आज के युग में तो वह बहुत ही कम मानी जायगी। लेकिन अपनी कुशलता, व्यावहारिकता और मितव्यता से उन्होंने इस अत्यल्प पूंजी से आश्चर्यजनक कार्य कर दिखाया।

'मण्डल' की स्थापना के मूल में जो एक प्रेरणा, एक उद्देश्य और एक मिशन रहा है, उसकी अपनी परम्परा है, और उस परम्परा को मार्तण्डजी ने बड़ी खूबी के साथ निभाया, नहीं आगे भी बढ़ाया। एक समय था जबकि युग-प्रवाह में बहुत-सी प्रकाशन-संस्थाओं के पैर उखड़ गए थे, लेकिन मार्तण्डजी ने सदा सब और साध कर संस्था को चलाया।

युगपुरुष महात्मा गांधी के जीवनदर्शी, जीवनस्पर्शी चिन्तन, मनन, विचार और कार्य को भारतीय जनता के लिए राष्ट्रभाषा हिन्दी के माध्यम द्वारा सस्ते-से-सस्ते मूल्य में सुलभ करने के लिए 'मण्डल' की स्थापना हुई थी। जिस प्रकार आदर्श जीवन वह माना जाता है, जो सरल, सादा किन्तु उदात्त हो, उसी प्रकार आदर्श साहित्य वह है, जो अल्प व्ययसाध्य हो, किन्तु उच्च एवं विचार-पूर्ण हो। यह कहना कदाचित अत्युक्तिपूर्ण न होगा कि हिन्दी में इस आदर्श को चरितार्थ करने वाली संस्था को ढूंढने में दृष्टि 'मण्डल' की ओर ही जाती है।

'मंडल' का प्रारम्भ गांधीजी की कृति 'दक्षिण अफीका के सत्याग्रह का इतिहास' के साथ सन् १९२५ में हुआ था। सन् १९३४ तक उसका कार्यालय अजमेर में रहा और उन सात-आठ वर्षों में 'मण्डल' ने सुविख्यात भारतीय तथा विदेशी लेखकों, विचारकों एवं लोकनेताओं की ६७ पुस्तकें प्रकाशित कीं। 'त्यागभूमि' नामक मासिक पत्रिका निकली। निश्चय ही 'मण्डल' के जन्म से राष्ट्र की निर्माणकारी साधना की एक नवीन दिशा खुली। भारत की अकिंचन जनता को जितना प्राणवान साहित्य 'मण्डल' ने अल्प मूल्य में दिया, उतना कितनी संस्थाएं दे पाई हैं। जब देश में दर्जनों प्रकाशन-संस्थाएं पुस्तकों का अधिक-से-अधिक दाम रखकर लोकरंजन की दृष्टि से पुस्तकें तैयार करके मुनाफा कमाती हैं, तब कमाई की इस सरल पद्धति के मोह से बचकर सत्साहित्य को मिशन के रूप में प्रचारित और प्रसारित करने का काम छोटा नहीं कहा जा सकता।

सन् १९३४ में 'मण्डल' का कार्यालय दिल्ली में आ गया और तब से अबतक यहीं है। पीछे निगाह डालकर देखें तो पता चलेगा कि अजमेर के दिन बड़े ही संकट के दिन थे। 'मण्डल' का संचालन करने वाले व्यक्ति राजनीति के क्षेत्र के थे और जब कोई राष्ट्रीय उथल-पुथल होती थी तो वे जेल के मेहमान बन जाते थे। विदेशी शासन की उन पर कोपदृष्टि थी और यह स्वाभाविक ही था कि उसका प्रभाव 'मण्डल' पर भी पड़ता। 'मण्डल' की कई पुस्तकें जब्त हुईं, पत्रिका से जमानत मांगी गई। उसके प्रेस पर ताला पड़ा और उसके कार्य में कदम-कदम पर रोड़े अटकाए गए, लेकिन जिस वृक्ष की जड़ मजबूत होती है, उसे तूफान भी सहज ही नहीं उखाड़ पाते। 'मण्डल' की नींव इतनी सुदृढ़ थी कि राजनैतिक बवंडर उसका कुछ भी बिगाड़ न कर सका, यद्यपि उसकी प्रगति धीमी अवश्य रही।

सन् १९३४ से लेकर १९४४ तक का काल भी राष्ट्रीय आंदोलनों और ब्रिटिश सरकार के अन्याय और अत्याचारों के कारण बहुत सुविधाजनक नहीं था। दिल्ली का क्षेत्र व्यापक होते हुए भी 'मण्डल' का कार्य तेजी से नहीं बढ़ सका। फिर भी जिन बाधाओं का सामना अजमेर में करना पड़ा था वे कम हुईं और कार्य की सुविधाएं बढ़ीं।

इन सारी राष्ट्रीय हलचलों के बीच 'मण्डल' को आगे बढ़ाए ले जाने का श्रेय मुख्यतः मार्तण्डजी को ही है। वे राजनीति में नहीं पड़े, जेल से बचे और राष्ट्रीय नेताओं के विचारों को जन सामान्य तक पहुंचने के नये-नये रास्ते खोजते और निकालते रहे। उन्होंने गांधीजी की, जवाहरलालजी की, राजाजी की तथा अन्य अनेक भारतीय नेताओं की पुस्तकें तो निकाली ही, साथ ही गांधी के विचारों को समर्थन और पोषण देने वाले विदेशी चिन्तक जैसे टाल्स्टाय, क्रोपाटकिन और रस्किन आदि की भी चुनी हुई किताबें निकालीं। पुस्तकों के चुनाव के पीछे एक सूझभरी दृष्टि रही और जितनी भी पुस्तकें निकालीं गई, वे प्रायः उच्चकोटि की थीं। यह कहना अनुचित न होगा कि 'मण्डल' के अनेक प्रकाशनों ने पाठकों के नैतिक धरातल को ऊपर उठाया, उनमें राष्ट्रीय भावना का संचार किया और उन्हें देश हित के लिए त्याग-तपस्या करने की प्रेरणा दी।

'मण्डल' से जो पुस्तकें प्रकाशित हुई हैं, उनकी लोकप्रियता का अनुमान इस बात से किया जा सकता है कि उनमें से अनेक पुस्तकों के कई-कई संस्करण हुए हैं।

'मंडल' ने अपना ध्यान मुख्यतः गांधीजी की विचार धारा पर केन्द्रित रखा है। इसका बहुत बड़ा लाभ यह हुआ कि आज गांधीजी, विनोबाजी, काका साहब कालेलकर आदि की प्रामाणिक पुस्तकें हिन्दी में प्राप्त करनी हों तो 'मण्डल' के अतिरिक्त और किसी संस्था की ओर आपका ध्यान नहीं जायगा। [शेष पृष्ठ २०९ पर]

'मंडल' से मैंने क्या सीखा

□

रामलाल गोयल

मैं 'मंडल' में सन् १९२७ में, करीब १८ वर्ष की उम्र में—मैट्रिक की परीक्षा देने के बाद—शामिल हुआ था। उस समय बाबा श्री नृसिंहदासजी व्यवस्था का कार्य देखते थे। श्री जीतमलजी लूणिया 'मंडल' के मंत्री थे। उस समय वह 'मंडल' का पुराना हिसाब बनाने में लगे हुए थे। अजमेर से जब 'मंडल' दिल्ली गया तबतक यानी मार्च १९३४ तक 'मंडल' में काम करता रहा।

उन दिनों 'मंडल' राजनैतिक गतिविधियों का मुख्य केन्द्र था। अतः मुझपर उस समय के वातावरण के जो संस्कार थे, वे अबतक बरकरार हैं। उसी के फल-स्वरूप सन् १९४२ के अगस्त मास में हुए 'भारत छोड़ो' आंदोलन में गिरफ्तार होकर लगभग ७ मास जेल में रहा। १५ अगस्त १९७२ से भारत सरकार की ओर से मुझे २०० रुपये मासिक की पेंशन भी मिल रही है।

जिस समय मैं 'मंडल' में था उस समय श्री लूणियाजी तथा श्री बाबाजी के अलावा मैं पूज्य दासाहब (हरिभाऊजी उपाध्याय), श्री क्षेमानन्दजी राहत, श्री रामनाथ सुमन तथा श्री मार्तण्ड उपाध्याय के विशेष संपर्क में आया। इन सब लोगों की आत्मीयता का व्यवहार तथा 'जनता-जनार्दन की सेवा ही भगवान की सेवा है' और बहुत-सी बातें सीखने को मिलीं। मेरे सारे जीवन पर इसका बहुत असर पड़ा है। इस कारण मैं अपने को परम सुखी और प्रसन्न पाता हूं। अब मेरा जीवन आध्यात्मिक एवं धार्मिक रुचि लिये हुए है।

मैं 'मंडल' में अकाउंटेंट के रूप में काम करता था। नसीराबाद का रहने वाला हूं और उन दिनों नसीराबाद रहा करता था और रोज रेल से अजमेर आता-जाता था।

मेरे काम से श्री लूणियाजी और श्री बाबाजी बहुत संतुष्ट थे।

हिसाब रखने के साथ पुस्तकों की बिक्री बढ़ाने के हेतु मैं आगरा, दिल्ली, लखनऊ, कानपुर, बनारस, इलाहाबाद आदि स्थानों का दौरा किया करता था।

उन दिनों प्रकाशित 'मंडल' की कई पुस्तकें आपत्ति-जनक-राजद्रोहात्मक समझकर, उस समय की अंग्रेजी सरकार ने जब्त करली थीं और ८-१० बार 'मंडल' की तलाशी भी ली थी। प्रेस से जमानत भी मांगी गई थी और कुछ समय के लिए 'मंडल' पर सरकार ने ताला भी डाल दिया था।

इन दिनों में जिन महानुभावों के संपर्क में आया और उनके बारे में मेरे जो भाव थे वे निम्न प्रकार हैं :

१. **श्री जीतमलजी लूणिया**—कठोर परिश्रमी, अपने कार्य में दक्ष, दूरदर्शी, स्वयं डटकर काम करने वाले व उसी प्रकार दूसरों से भी काम लेने वाले, व्यवसायी, व्यवहार कुशल, अन्दर-बाहर एक-से। उनकी कार्यशैली का मुझ पर काफी प्रभाव पड़ा।

२. **श्री बाबा नृसिंहदासजी**—खादी-कांग्रेस आदि के प्रबल पोषक, सब कार्य साफ-सुथरा तथा ठीक समय पर होने के घोर पक्षपाती।

३. **श्री हरिभाऊजी उपाध्याय**—आध्यात्मिक, धार्मिक, साहित्यिक रुचि वाले तथा जनता-जनार्दन की सेवा को भगवद्भक्ति मानने वाले, उच्च विचारों के धनी, परम भागवत् जिनकी आध्यात्मिक व भगवद्-भक्ति-संबंधी विचार-धारा का मुझपर काफी असर पड़ा। व्यावसायिक वृत्ति से दूर।

४. **श्री रामनाथ सुमन**—उच्च विचारक एवं लेखक, साहित्य-सेवी, व्यावसायिक वृत्ति से अलग।

५. **श्री मार्तण्ड उपाध्याय**—सरल स्वभाव के धनी, सेवाभावी, सबके कार्य की प्रशंसा करके प्रोत्साहित करने वाले, बहुत-कुछ जानते हुए और अधिक जानने को उत्सुक। □

मेरा योगदान

□

मूलचंद नागौरी

मैं सन् १९२६ में, जबकि शंकरलालजी जज की कोठी में 'मंडल' का दफ्तर था और पूज्य दासाहब (हरिभाऊजी), जीतमलजी लूणिया और नृसिंहदास बाबाजी कार्यकर्त्ता थे, 'मंडल' में आया था। 'मंडल' में मैं खंजाची की हैसियत से २५ रुपये मासिक पर काम करता था।

उन दिनों वृंदावन में कोई मेला था, उसमें प्रचारार्थ 'मंडल' की दुकान लेकर गया था। वहां से भरतपुर में होने वाले 'हिन्दी साहित्य सम्मेलन' में दुकान ले गया। दोनों जगह खूब प्रचार और बिक्री का कार्य हुआ।

बाद में जब 'मंडल' का काम बढ़ा तो कैसरगंज बाबू मोहल्ला में छगनलाल अजमेरा (हिन्दू होटलवालों) के मकान में 'मंडल' का दफ्तर गया।

जब 'त्यागभूमि' मासिक पत्रिका निकली तो मैं उसके प्रचारार्थ और ग्राहक बनाने के लिए बंबई गया और वहां श्री जमनालालजी बजाज की फर्म में कालबा देवी रोड पर ठहरा। बंबई में करीब एक महीना रहकर तथा 'त्यागभूमि' के काफ़ी ग्राहक बनाकर वापस आया।

'मंडल' का काम अधिक बढ़ जाने पर श्री रामलालजी गोयल और श्री शिवदयाल सिंहल 'मंडल' में काम करने लगे। श्री रामलालजी 'मंडल' का हिसाब-किताब रखने लगे और मैं 'त्यागभूमि' का हिसाब रखने लगा। प्रेस में श्री नरोतीलालजी काम करने लगे।

सन् १९३० के आसपास कचहरी रोड पर घासीराम की धर्मशाला में प्रांतीय कांग्रेस का दफ्तर था। श्री बाबाजी के आग्रह से मैं ही उसका भी कैशियर और अकाउण्टेण्ट था। संस्था को सरकार ने जब गैर-कानूनी करार दिया और तलाशी लेने आये तो मैंने बड़ी चतुराई से वहां के सब हिसाब के और दूसरे काग़जात हटवा दिये। पुलिस को आपत्तिजनक कोई भी सामान नहीं मिला।

हटूंडी का 'गांधी आश्रम' का सारा काम भी मेरे हाथों ही हुआ था। मैं रोज रेल से अजमेर से हटूंडी जाता और वापस अजमेर आता था। हटूंडी में मकान बनाने का काम चल रहा था। उसका सारा हिसाब-किताब का काम 'त्यागभूमि' के काम के साथ मैं ही देखता था।

मैंने 'मंडल' में चार वर्ष, १९२६ से १९३० तक काम किया। मैंने तीनों जगह सच्चरित्रता और ईमानदारी से काम किया। 'मंडल' के मंत्री श्री जीतमलजी लूणिया का मेरे पास प्रमाण-पत्र है और पूज्य दासाहब हरिभाऊजी तो मुझे विनोद में 'कुबेर' की पदवी दिया करते थे।

उस समय 'मंडल' में जो भी कार्यकर्त्ता थे, वे बड़े परिश्रम और लगन से कार्य करते थे।

आजकल मेरी आर्थिक स्थिति कमजोर है। वृद्धावस्था भी है। आय का विशेष कोई साधन नहीं है। अतः गुजारा मुश्किल से चलता है।

पर मेरे 'मंडल' में काम करने के वे दिन बहुत अच्छे, उत्साह के और आनन्द के बीते थे। □

अगर बाहर की रोशनी भीतर की ज्योति का ही नमूना है तब तो खैर है; और अगर भीतर अंधेरा है और बाहर हम दिया-बत्ती जलाते हैं और ऐसा मान लेते है कि यह सब तो चलता है, तब हम पाखंडी और झूठे बनते हैं।

—गांधीजी

हिंदी-सेवा के पचास वर्ष

□

प्रमिला कल्हन

'सस्ता साहित्य मंडल' सामान्य प्रकाशन-संस्था नहीं है। अपने ढंग की वह एक विशेष प्रकाशन-संस्था है। यही कारण है कि वह सर्व-साधारण की सहानुभूति और सहयोग की अपेक्षा रखती है।

गांधीजी की प्रेरणा से १९२५ में 'मंडल' की स्थापना हुई थी। उसके संयोजक श्री जमनालालजी बजाज थे, जिन्होंने गांधीजी के बहुत-से विचारों को कार्यान्वित किया और उनके द्वारा प्रेरित बहुत-सी संस्थाओं को चलाया। 'मंडल' ने रु० ८०,००० की पूंजी से, जो कि मुख्यत: श्री जमनालाल बजाज द्वारा 'तिलक स्वराज फंड' और श्री घनश्यामदास बिड़ला तथा अन्य दानियों द्वारा प्राप्त हुई थी, अजमेर में अपना कार्य प्रारम्भ किया। १९३४ में उसका कार्यालय दिल्ली में आ गया। उसका प्रथम प्रकाशन गांधीजी-लिखित **'दक्षिण अफ्रीका के सत्याग्रह का इतिहास'** था। इसके बाद तो वह अबतक लगभग १५०९ से ऊपर पुस्तकें प्रकाशित कर चुका है। प्रकाशित पुस्तकों में मौलिक, अनुवाद और संकलन, सभी प्रकार की पुस्तकें हैं।

'सस्ता साहित्य मंडल' का मुख्य उद्देश्य जन-साधारण के लिए ऐसी उपयोगी एवं महत्त्वपूर्ण पुस्तकें सस्ते-से-सस्ते मूल्य पर सुलभ करना रहा है, जो नैतिक अथवा सामाजिक दृष्टि से उच्च कोटि की हों। मुनाफा कमाना 'मंडल' को कदापि इष्ट नहीं है। यही कारण है कि 'मंडल' की पुस्तकें अन्य प्रकाशकों के प्रकाशनों के मूल्यों की अपेक्षा काफी सस्ती हैं।

पुस्तकों के चुनाव में भी 'मंडल' अत्यन्त सावधान रहता है। उसकी अबतक की प्रकाशित पुस्तकों में लगभग ८०-८५ पुस्तकें स्वयं गांधीजी द्वारा लिखित अथवा उनकी विचारधारा से सम्बन्धित हैं। अन्य लेखकों में, जिनकी पुस्तकें 'मंडल' ने निकाली हैं, आचार्य विनोबा, डा० राजेंद्रप्रसाद, पं० जवाहरलाल नेहरू, डा० राधाकृष्णन, श्री चक्रवर्ती राजगोपालाचार्य, डा० भगवानदास, श्री काकासाहेब कालेलकर आदि के नाम उल्लेख-योग्य हैं। विदेशी ग्रन्थकारों में टाल्स्टाय, क्रोपाटकिन, विक्टर ह्यूगो, खलील जिब्रान, स्टीफन ज्विग, आंद्रे जीद आदि हैं। इस प्रकाशन-संस्था की उपयोगिता तथा ऊंचे आदर्शों के बारे में दो मत नहीं हो सकते। इस संस्था के संचालक-गण भी सेवाभाव से प्रेरित होकर अपना कर्तव्य-पालन कर रहे हैं।

इतने वर्षों तक निःस्वार्थ सेवा करने के दौरान 'मंडल' ने अपने कार्यक्षेत्र को अधिक विस्तृत कर लिया है और आगे और भी अधिक व्यापक करने के लिए उत्सुक है। उसके संचालक अनुभव करते हैं कि यदि थोड़ी और पूंजी हो तो वे अधिक संख्या में पुस्तकों के संस्करण निकाल सकते हैं और इस प्रकार पुस्तकों के मूल्य में और कमी कर सकते हैं। 'मंडल' नये क्षेत्रों में भी प्रवेश करना चाहता है; परन्तु पुस्तकों के चुनाव में अपने आदर्शों के प्रति सदा जागरूक रहकर।

'मंडल' उपन्यासकारों, साहित्यिकों, आलोचकों तथा इतिहासकारों की रचनाएं भी सस्ते मूल्य में निकालना चाहेगा। हिंदी की महत्त्वपूर्ण पुस्तकें प्रायः इतनी महंगी होती हैं कि अधिकांश लोग उन्हें खरीद नहीं सकते। 'मंडल' ऐसी पुस्तकों को सामान्य स्थिति के पाठकों के लिए सुलभ बनाने की चेष्टा करेगा।

हमें विश्वास है कि ऐसे समय में, जबकि राष्ट्र-भाषा के विकास के लिए सर्वतोमुखी प्रयत्न हो रहा है, 'मंडल' हिन्दी की वृद्धि में आगे विशेष सहायक होगा। □

'मंडल' की सेवाएं

□

सीताराम सेकसरिया

'सस्ता साहित्य मंडल' अपनी स्वर्ण जयन्ती मना रहा है, यह जानकर प्रसन्नता हुई। 'मंडल' की स्थापना और उद्देश्यों से मैं आरम्भ से ही परिचित रहा हूं। जहां तक मुझे याद है, सन् १९१९ में अग्रवाल महासभा के अधिवेशन में मैं बम्बई गया था। पूज्य जमनालालजी की पेढ़ी के नीचे 'हिन्दी ग्रन्थ रत्नाकर' की दुकान थी। स्व० प्रेमचन्दजी उसके संचालक थे। जमनालालजी ने 'हिन्दी ग्रंथ रत्नाकर' के सम्बन्ध में प्रशंसा भरी बातें की थीं और श्री नाथूरामजी प्रेमी की साहित्य-साधना के विषय में बताया था। बात शायद गुजराती के 'सस्तुं साहित्य वर्द्धक कार्यालय' की चली थी। गुजरात की यह एक आदर्श संस्था थी, जो गुजराती साहित्य का उत्तम और सस्ता प्रकाशन उपलब्ध करा रही थी। समय पाकर पूज्य बापूजी के आशीर्वाद के साथ सन् १९२५ में 'सस्ता साहित्य मंडल' की स्थापना हुई। उसकी ओर से 'त्यागभूमि' मासिक पत्रिका का प्रकाशन भी हुआ, जो हिन्दी मासिक पत्र-जगत में अपना अद्वितीय स्थान बनाकर भी जीवित नहीं रह सकी। इस पत्रिका के द्वारा ही भाई श्री हरिभाऊजी का पहली बार परिचय हुआ। क्षेमानंदजी राहत का भी परिचय मिला। १९२९ में जब मैं प्रथम बार हटूंडी गया तब भाई जीतमलजी लूणिया से और वैजनाथजी महोदय से सम्बन्ध जुड़ा। बाबा नृसिंहदासजी से परिचय की बात तो राजनीति से सम्बन्ध रखती है, इसलिए यहां उसका उल्लेख नहीं करना है। भाई लूणियाजी प्रेस में काम करते थे तथा 'सस्ता साहित्य मंडल' की गतिविधियों में हिस्सा लेते थे। मैं समझता हूं कि शायद आज के जीवित व्यक्तियों में उनका स्थान सर्वोपरि है। उनकी सेवा 'सस्ता साहित्य मंडल' के लिए बहुत महत्वपूर्ण रही है। हरिभाऊजी उपाध्याय के बारे में इस छोटे-से लेख में क्या लिखा जा सकता है। एक प्रकार से 'सस्ता साहित्य मंडल' और भाई उपाध्यायजी एक-दूसरे के पर्यायवाची थे। हरिभाऊजी की बहुमुखी प्रवृत्तियां रहीं। मैं हटूंडी आश्रम में रहा। भाई हरिभाऊजी के पूज्य पिताजी के दर्शन भी किये। हम लोगों का कौटुम्बिक सम्बन्ध-सा रहा है। 'सस्ता साहित्य मंडल' के बारे में सोचते समय अनायास ही ये पुराने संस्मरण ताजा होने लगते हैं। 'मंडल' की स्थापना अजमेर में हुई थी। अनन्तर अनेक कारणों से उसका कार्यालय दिल्ली आ गया और वह अपना काम दिल्ली से करने लगा। उसका उत्तरोत्तर विकास होता गया। 'मंडल' द्वारा गांधी साहित्य का जो विधिवत प्रकाशन हुआ, वह अपने ढंग का निराला और बृहत है। 'मंडल' ने अपने प्रकाशनों द्वारा समाज में सद्विचार और सदाचार के प्रसार का बहुत महत्वपूर्ण कार्य किया। उत्तम साहित्य को सस्ते मूल्य में देने की दृष्टि से 'मंडल' का प्रकाशन-जगत में अपना स्थान है। लेकिन इधर महंगाई और परिवर्तनों का स्वाभाविक प्रभाव होना अनिवार्य था। वह हुआ; पर 'मंडल' ने सत्साहित्य के प्रकाशन के उद्देश्य में ढिलाई नहीं आने दी। इसका प्रकाशन आज भी अपना विशेष ढंग रखता है और 'मंडल' द्वारा प्रेरणाप्रद सत्साहित्य का ही प्रकाशन होता है। 'मंडल' ने समाज को उत्तम साहित्य दिया, साथ ही साहित्यकारों की भी सेवा की, उनका आदर किया, उनके साहित्य का प्रचार किया। बापूजी और उनसे सम्बन्धित सभी मनीषियों के विचारों को साधारण-से-साधारण आदमी तक पहुंचाने का कार्य किया। वास्तव में ये सब महत्वपूर्ण कार्य कहे जा सकते हैं। 'जीवन साहित्य' मासिक भी विगत ३६ वर्षों से अपने ढंग से सत्साहित्य का निरन्तर प्रचार कर रहा है। आज जिस प्रकार की प्रवृत्तियां पनप रही हैं, उससे हर भले काम में तरह-तरह की कठिनाइयां बढ़ गई हैं, पर वस्तुतः ऐसे समय में स्थित रहकर दीप जलाये रखना कहीं अधिक आवश्यक है। रात तो सदा रहती नहीं, गहरा अंधेरा सूर्य के प्रकाश को अपने आप

आमन्त्रण देता है। गहरे अंधेरे में प्रकाश छिपा रहता है। वह प्रकाश ही हमें गहन अंधकार का अनुभव कराता है। गहरे अंधेरे में कुछ क्षण बाद हम अपनी आँखों में कुछ ज्योति देखते हैं तो अंधेरे का रूप स्पष्ट होता है।

'जीवन साहित्य' और 'सस्ता साहित्य मंडल' मात्र एक पत्र और एक साधारण संस्था नहीं हैं। उनके पीछे एक महान उद्देश्य और साधना रही है। साधना के द्वारा ही संस्थाओं का सही विकास हो सकता है। जहां साधना समाप्त हो जाती है, वहां संस्थाएं या तो मर जाती हैं, या गलत तरीके अख्तियार कर लेती हैं।

भाई मार्तण्डजी और यशपालजी के कंधों पर 'सस्ता साहित्य मंडल' और 'जीवन साहित्य' का भार आया। उन्होंने अपनी पूरी जिम्मेदारी और निष्ठा से संस्था को संभाला। भाई मार्तण्डजी अस्वस्थता के कारण एक प्रकार से कुछ दिनों से अवकाश ग्रहण कर चुके हैं, पर 'मंडल' की जिम्मेदारी से वे कैसे बच सकते हैं! मेरे सामने चालीस वर्ष से अधिक का, पचास भी कहें तो बेजा नहीं है, इतिहास है। मैंने संस्था को तथा भाई हरिभाऊजी के सम्बन्धों को देखा-सुना है। 'मण्डल' बापूजी और जमनालालजी से सम्बन्धित रहा है। हमारे पास उसका अच्छा उपयोग और अच्छा प्रबन्ध तो उस समय के लोगों का है ही, साथ ही बापूजी और जमनालालजी के प्रति श्रद्धा आदर रखनेवाले हर व्यक्ति का पुनीत कर्तव्य है कि वह जो कर सके, करके संस्था की उपादेयता और उद्देश्यों की रक्षा करे। दुःख है, उस समय के बहुत कम लोग आज रह गये हैं। यह सब तो होता ही है, पर उद्देश्य और प्रेरणा के स्रोत नहीं बदलते। मुश्किलें बहुत हैं, तब भी अपनी पूरी शक्ति से काम करने पर और उद्देश्यों के प्रति ईमानदारी से श्रद्धा रखकर प्रयत्न करने पर कठिनाइयां खत्म हो जाती हैं। बहुत बातों का मन में आना स्वाभाविक-सा है, पर आगे जो होना है, वह तो आज जो करने वाले हैं उनके किये ही होगा, और मेरा विश्वास है कि निश्चय ही वह शुभ होगा।

मेरी आशा है कि भविष्य में 'मंडल' और 'जीवन साहित्य' अपने इतिहास की रक्षा करते हुए, पुरानी स्मृतियों और परम्पराओं को संजोये रखकर, समाज और साहित्य की सेवा करते रहेंगे। □

[पृष्ठ २०४ का शेष]

'मण्डल' का संचालन एक समिति द्वारा होता है, जिसमें अनेक गण्यमान्य व्यक्ति हैं। इन सबका विश्वास मार्तण्डजी ने अपनी विवेकशीलता तथा कार्यदक्षता से सम्पादन कर लिया।

'मण्डल' का अपना प्रेस नहीं है। उसकी पुस्तकों की छपाई सुविधानुसार अच्छे प्रेसों में कराली जाती है।

प्रकाशन के क्षेत्र में नये-नये लोग आ रहे हैं और पुराने तेजी से आगे बढ़ने का प्रयत्न कर रहे हैं। लेकिन अनेक योजनाओं के बावजूद 'मण्डल' की गति में युगानुसार वेग दिखाई नहीं देता। सम्भवतः इसका कारण यह है कि मार्तण्डजी तेज चलने के अभ्यासी नहीं रहे, पर स्मरण रहे, 'मण्डल' की गति भले ही धीमी हो, उसका क्षेत्र भले ही सीमित रहे, लेकिन मार्तण्डजी ने जो भी कदम उठाये हैं, बहुत सोच-समझकर उठाये हैं। इसमें देर हुई है, लेकिन ऐसी भूल की सम्भावना नहीं रहती, जिसके लिए बाद में पछताना पड़े।

मार्तण्डजी का एक गुण दोष की हद तक पहुंच गया, वह था उनका दूसरों पर विश्वास करने का स्वभाव। वह प्रत्येक व्यक्ति पर विश्वास कर लेते हैं, यहां तक कि कभी-कभी उन्हें धोखा भी हो गया है। आदमी की परख उन्हें रही है, लेकिन फिर भी वह अपने स्वभाव में परिवर्तन नहीं ला सकते।

'मण्डल' की पुस्तकों की प्रामाणिकता, शुद्धता और बाह्यरूप रंग की मनोहारिता का श्रेय मार्तण्डजी की सूझ और जागरूकता को है। वह पुस्तक को प्रेस में देने से पहले ध्यान से पढ़ते हैं। अनुवाद होता है तो उसे अच्छी तरह से देख लेते हैं। कई बार तो ऐसा होता है कि वह सारी पांडुलिपि को रंग डालते हैं। बड़े-बड़े साहित्यकारों और नेताओं की पुस्तकों में भी आवश्यकता पड़ने पर संशोधन करने में उन्हें हिचक नहीं हुई। वह मराठी, गुजराती और अंग्रेजी भली प्रकार जानते हैं और जब इन भाषाओं के अनुवाद प्रकाशित करते हैं तो बड़ी सावधानी से मूल पुस्तक का चुनाव करते हैं।

आदर्श और व्यवहार का जितना सुन्दर मेल मार्तण्डजी ने साधा है, उतना बहुत कम व्यक्तियों में मिलता है।

आज यद्यपि समय अनुकूल नहीं दीख पड़ता है, पर इसमें सन्देह नहीं कि हिन्दी का भविष्य उज्ज्वल है और जो सदाकांक्षाएं आज पूरी नहीं हो रही हैं, वे कल, कल नहीं तो परसों अवश्य पूरी होंगी। □

'मंडल' के पचास वर्ष : कुछ विचार

□

श्रीनारायण चतुर्वेदी

'सस्ता साहित्य मंडल' एक प्रकाशन-संस्था है, किन्तु वह सामान्य व्यवसायी प्रकाशन-संस्था नहीं, एक विशिष्ट प्रकार का असाधारण और कुछ विशिष्ट उद्देश्यों को लेकर स्थापित की गई संस्था हैं। संक्षेप में, वे उद्देश्य कम मूल्य पर जनता को सत्साहित्य सुलभ करना और उस साहित्य के द्वारा उनका नैतिक स्तर उठाना, उनमें राष्ट्र-प्रेम उत्पन्न तथा दृढ़ करना हैं तथा बाद में महात्मा गांधी और आचार्य विनोबा भावे के उपदेशों का प्रचार करना भी हो गया। इन उद्देश्यों में उसे पर्याप्त से कुछ अधिक ही सफलता मिली। इसका जितना श्रेय उसके संचालकों को है, उतना ही देश की परिवर्तित परिस्थितियों को है।

यह संस्था इस वर्ष पचास वर्ष की हो गई। इस बात पर हर्ष मनाना स्वाभाविक है, क्योंकि इस देश की हिन्दी प्रकाशन-संस्थाएं अल्पजीवी होती हैं। कई वर्ष पूर्व मुझे इंग्लैण्ड के प्रकाशकों की 'वार्षिकी' (ईयर बुक) देखने को मिल गई थी और मुझे यह देखकर आश्चर्य हुआ था कि उस देश में कितनी ही प्रकाशन-संस्थाएं डेढ़-दो सौ वर्ष पुरानी हैं। हिन्दी-प्रकाशन का इतिहास अभीतक नहीं लिखा गया। वह बड़ा रोचक और शिक्षाप्रद है। उससे प्रकाशकों का ही ज्ञान न होगा, प्रकाशनों का और उनकी बदलती प्रवृत्तियों का भी बड़ा मनोरंजक पता लगेगा। पिछली शती के अंत में हिन्दी में तीन प्रकाशकों ने बड़ी ख्याति प्राप्त की: बांकीपुर-पटना के खड्ग विलास प्रेस, लखनऊ के मुंशी नवल किशोर और बंबई के खेमराज श्रीकृष्ण दत्त ने। शती के आरंभ में इस माला में इलाहाबाद का इंडियन प्रेस जुड़ गया। पर आज खड्ग विलास प्रेस और नवल किशोर प्रेस प्रकाशक के रूप में अज्ञात हो गये हैं और इंडियन प्रेस सुप्तावस्था में है। केवल खेमराज श्रीकृष्णदास (श्री वेंकटेश्वर प्रेस) अभी जीवन्त है, किन्तु वह भी नये प्रकाशन न करके अपने पुराने प्रकाशनों के पुनर्मुद्रण में व्यस्त रहता है। ये प्रकाशन संस्कृत ग्रंथ या उनके हिन्दी-अनुवाद हैं। केवल हिन्दी की महत्त्वपूर्ण पुस्तकें ही उसने निकालीं। तुलसी-रामायण आदि हिन्दी काव्य भी उसने निकाले, पर उसे अपने पुराने प्रकाशनों की मांग पूरी करने में ही इतनी शक्ति लगा देनी पड़ती है कि नये प्रकाशनों का उसे अवकाश ही नहीं। अतएव आधुनिक हिन्दी साहित्य के प्रकाशन में उसका योगदान नहीं के बराबर है। पिछली शती में काशी के लाजरस साहब ने मेडिकल हाल प्रेस, चन्द्रप्रभा प्रेस आदि ने खूब प्रकाशन किये और बाद में 'भारत-जीवन' ने अनेक हिन्दी पुस्तकें निकालीं, किन्तु वे सब प्रकाशक अब कहां हैं? प्रयाग में रामनरेश त्रिपाठी का हिन्दी मंदिर और रामजीलाल शर्मा के हिन्दी प्रेस टूटते हुए सितारों की तरह कुछ दिनों खूब चमक कर विलीन हो गये। हिन्दी में इस समय कई सौ प्रकाशक हैं, किन्तु उनमें अधिकांश पाठ्य-पुस्तकें, विद्यार्थियोपयोगी पुस्तकें (जैसे समीक्षाएं) आदि प्रकाशित करते हैं। ज्ञान मंडल आदि उच्च साहित्य के लिए स्थापित प्रकाशन-संस्थाओं का प्रकाशन-उत्साह मन्द पड़ गया है। वे अधिक चलनेवाले कोशों आदि के प्रकाशन में लग गई हैं। वह काम भी अत्यन्त उपयोगी है, किन्तु उससे उच्च साहित्य के प्रकाशन की कमी पूरी नहीं होती। नागरी प्रचारिणी सभा और हिन्दी साहित्य सम्मेलन ने भी आरंभ में इस ओर ध्यान देकर सस्ते और उच्चस्तरीय साहित्य के प्रकाशन किये। सभा के कुछ पुराने प्रकाशन प्रायः स्थायी मूल्य के होते थे। किन्तु अब उन संस्थाओं की पुस्तकें भी अन्य प्रकाशकों की तरह 'सुलभ' न होकर इतने मूल्य की होती हैं कि वे सामान्य विद्या-प्रेमियों के वित्त के बाहर हैं। उनकी आंतरिक दलबंदी के कारण पुस्तकों का चयन भी उस व्यापक दृष्टि से नहीं होता, जैसा पहले होता था।

सरकार भी प्रकाशन के मैदान में आ गई है। उत्तर प्रदेश ही में हिन्दी समिति ने कई सौ प्रकाशन किये। मेरा

का माल है। फिर भी वह खुले बाजार में किसी प्रकाशकों से बाजी नहीं ले पाती है। पर सरकारी प्रकाशक होने के कारण उसे बाजार में प्रतिद्वंद्विता नहीं करनी पड़ती। जब सरकार ने देखा कि उसकी किताबें नहीं बिकतीं और कई लाख का स्टाक जमा हो गया है तब उसने आदेश निकाल दिया कि प्रत्येक अनुदान-प्राप्त पुस्तकालय सरकार से प्राप्त अनुदान के २५ प्रतिशत रुपये से हिन्दी समिति की पुस्तकें खरीदे। कई वर्ष से आदेश लागू है। इसके मजेदार परिणाम हुए। एक बड़े पुस्तकालय के प्रबंधक ने मुझे बतलाया कि हम हिन्दी समिति की सभी पुस्तकें कभी की खरीद चुके, किन्तु चूंकि हमें अनुदान के २५ प्रतिशत की उसकी पुस्तकें खरीदना अनिवार्य है, अब हमें इसके प्रकाशनों की दूसरी-तीसरी प्रतियां मंगानी पड़ रही हैं। सरकार जो पुस्तकें खरीदती है, इस खरीद में भी आदेश दे देती है कि इतनी राशि की पुस्तकें हिन्दी समिति की खरीदी जायं। राष्ट्रीयकृत संस्थाओं के प्रकाशनों की खपत का यह सरल उपाय है। वहां एक 'हिन्दी ग्रंथ अकादमी' भी है और जब से भारत सरकार ने उससे अपना हाथ खींच लिया है तब से राज्य सरकार को उसकी पुस्तकों की बिक्री की भी चिन्ता हो गई है और देखना है कि वह उसके लिए क्या उपाय करती है। 'हिन्दुस्तानी एकादमी' स्वायत्तशासी अर्द्ध सरकारी संस्था है, पर उसके प्रकाशन उतने नहीं बिक पाते, और सरकारी खरीद में भी उसका हिस्सा कम ही रहता है, क्योंकि उसका पूरा भार सरकार पर नहीं है। बड़ी साहित्यिक संस्थाओं को भी कुछ भाग मिल जाता है। अतएव सामान्य प्रकाशकों की पुस्तकों को, उनकी और उनके प्रकाशनों की संख्या और अनुपात को देखते हुए, सरकार से अपेक्षतया कम संरक्षण मिलता है। लोगों की, विशेषकर सीमित आय के मध्यवर्ग की, क्रयशक्ति बहुत कम हो गई है। वे सामान्यतया पुस्तकें नहीं खरीद सकते। इसलिए आज सरकार ही पुस्तकों की सबसे बड़ी खरीददार है। इसी कारण केवल अच्छा साहित्य प्रकाशन करके जीवित रहना प्रकाशकों के लिए यदि असंभव नहीं तो अत्यंत कठिन अवश्य हो गया है। इसीलिए हिन्दी प्रकाशन का केन्द्र उत्तरप्रदेश से हटकर दिल्ली पहुंच गया है, क्योंकि दिल्ली सारे भारत की राजधानी है। दिल्ली के प्रकाशक सरकारी और विदेशी खरीददारों की मांग सहज में पूरी कर सकते हैं, साथ ही वे इतने उद्योगशील हैं और इतनी पूंजी लगा सकते हैं कि उनके बिक्री के विभाग बड़े सुसंगठित और कार्यकुशल हैं और वे दिल्ली में बैठे बैठे सारे हिंदी क्षेत्र के राज्यों का पर्यवेक्षण कर सकते हैं, संपर्क स्थापित कर सकते हैं और अपनी बिक्री बढ़ा सकते हैं। इससे उन्हें लाभ भी अधिक होता है। वे प्रतिष्ठित लेखकों को अच्छी रायल्टी, अग्रिम राशि तथा अन्य सुविधाएं दे सकते हैं। इसी कारण अब हिंदी के प्रायः सभी 'बड़े' लेखकों ने अपने प्रांतों के कम उद्योगी और कम साधनों वाले प्रकाशकों से अपनी पुस्तकें लेकर दिल्ली के प्रकाशकों को दे दी हैं। प्रकाशन के इस केन्द्रीयकरण से सबसे अधिक हानि उन छोटे और उदीयमान लेखकों को होगी, जिनकी पहुंच दिल्ली तक नहीं है। वे उपेक्षित, अज्ञात और अप्रकाशित रह जायंगे।

इधर और भी अनेक प्रवृत्तियां बढ़ी हैं। दिल्ली की पाकेट बुक्स ने प्रकाशन में एक क्रांति ला दी है। सस्ती पुस्तकों की सदैव मांग रहेगी और अच्छी पूंजी लगाने वाले पाकेट बुक्स के प्रकाशकों का भविष्य उज्ज्वल है। वे सामान्यतः कैसा साहित्य देते हैं, यह दूसरी बात है, किंतु दिल्ली के बड़े प्रकाशकों ने अभी तक साहित्य की प्रतिष्ठा को धक्का नहीं पहुंचाया।

मैं उन प्रचारक संस्थाओं की बात यहां न करूंगा, जो धार्मिक या राजनैतिक साहित्य प्रचारार्थ प्रकाशित करती हैं। वास्तव में प्रकाशन-उद्योग पर उनका प्रभाव कम पड़ता है। उदाहरण के लिए, गीता प्रेस के प्रकाशनों से सामान्य प्रकाशकों को कोई खतरा नहीं है।

वास्तव में साहित्य का प्रकाशन अच्छे, दूरदर्शी और उदार दृष्टि वाले साधन-सम्पन्न प्रकाशक ही कर सकते हैं। वे ही प्रकाशन और अच्छे साहित्य-सृजन की रीढ़ हैं। बहुत से सरकारी प्रकाशन अच्छे हैं (जैसे बुक ट्रस्ट या प्रकाशन विभाग के), किंतु सरकारी होने के लाभ और सुविधाओं के बावजूद, वे लालफीताशाही और कल्पनाहीन तथा अव्यवसायी नौकरशाही के कारण निजी अच्छे प्रकाशनों से होड़ नहीं कर पाते और जैसे लक्षण हैं, उससे यही मालूम होता है कि वे बहुत दिनों तक उनकी बराबरी नहीं कर सकेंगे। साहित्य का प्रकाशन गुण और परिमाण में

बहुत-कुछ अच्छे एवं प्रतिष्ठित निजी प्रकाशकों पर निर्भर है।

ऐसी स्थिति में 'सस्ता साहित्य मंडल' के पचास वर्षों का जीवन और कार्य बहुत उल्लेखनीय और महत्त्वपूर्ण है। सामान्य पाठकों के लिए मनोरंजक और अधिक न बिकने वाले एवं तथाकथित 'लोकप्रिय' साहित्य का प्रकाशन न करके भी इतनी सफलता हुई तो उसका कारण उसके संचालक-मंडल के सदस्यों की नामावली से जाना जा सकता है। किंतु संचालक-मंडल अधिकतर शोभा-प्रतिष्ठा की वस्तु होते हैं। संस्था को उनके नाम का नैतिक लाभ भले ही हो जाय, किंतु वास्तविक कार्यभार उसके पूर्णकालिक अधिकारियों पर पड़ता है, जो वास्तविक रूप से प्रकाशन की योजना बनाते; लेखकों, विषयों और पुस्तकों का निर्णय करते; उनकी सुंदर छपाई का प्रबंध करते तथा जो अंत में उनकी बिक्री का प्रयत्न करते हैं। सौभाग्य से उसे इस काम के लिए कल्पनाशील और समर्पित भावना से काम आने वाले आदर्शवादी व्यक्ति मिल गये। यदि इसे श्री मार्तण्ड उपाध्याय और श्री यशपाल जैन की सेवाएं उपलब्ध न होतीं तो मुझे बहुत संदेह है कि इसे वह सफलता मिली होती, जिसके लिए आज वह गर्व कर सकता है।

आरम्भ में 'मंडल' को अपनी पुस्तकों का प्रचार करने में केवल प्रबुद्ध पाठकों पर निर्भर रहना पड़ता था, किंतु जब से राज्यों में कांग्रेस सरकारें आईं और उन्हें गांधी साहित्य और सर्वोदय साहित्य के प्रचार की आवश्यकता मालूम हुई तो उन्हें बरबस 'सस्ता साहित्य मंडल' के प्रकाशनों की ओर आकृष्ट होना पड़ा। अतएव प्रबुद्ध पाठकों के अतिरिक्त उसे परोक्ष रूप से कुछ राज्याश्रय भी प्राप्त हो गया, किंतु वह उसके कार्यविस्तार को देखते हुए उसे अर्थ-संकट से मुक्त करने को पर्याप्त न था। बहुत कम लोग जानते हैं कि 'मंडल' 'लाभ' पर नहीं, घाटे पर चल रहा है। किंतु उसकी साख इतनी ऊंची है कि वह घाटे की अर्थ-व्यवस्था को झेल रहा है।

'मंडल' ने अपने को गांधी या सर्वोदय साहित्य तक ही सीमित नहीं रखा। उसने भारत के प्रमुख मनीषियों की महत्वपूर्ण कृतियों को भी हिंदी में सुलभ करना आरम्भ किया। इस क्रम में उसने पं० जवाहरलाल नेहरू, राजेंद्र-बाबू, चक्रवर्ती राजगोपालाचार्य और काका साहब कालेलकर के समान महान व्यक्तियों और लेखकों की पुस्तकें हिंदी-पाठकों को सुलभ कर हिंदी-साहित्य की श्रीवृद्धि की।

उसने विभिन्न स्तरों के पाठकों के लिए सत्साहित्य की अनेक पुस्तक-मालाएं निकालीं। अपने-अपने ढंग से सभी महत्वपूर्ण हैं, किंतु शिक्षा में रुचि लेने के कारण मुझे उनमें सबसे उपयोगी 'समाज विकास माला' और उसके बाद 'जीव-जगत की कहानी-माला' मालूम हुई। मेरी दृष्टि में पहली पुस्तक-माला अपने ढंग की हिंदी में एक ही है। वह अत्यन्त उपयोगी है और विद्यार्थियों तथा वयस्कों के लिए समान रूप से उपयोगी है। वास्तव में, यदि कोई स्वयं या अपने बच्चों को भारत और भारतीय संस्कृति का आरम्भिक ज्ञान करना और रुचि उत्पन्न करना चाहता है तो उसे उस माला का सहारा लेना अनिवार्य है।

'मंडल' द्वारा प्रकाशित अनेक महत्वपूर्ण पुस्तकों का वर्णन करके इस लेख को बोझिल नहीं बनाना चाहता। इतना कहना ही पर्याप्त है कि पुस्तकों के चयन में, यहां तक कि उपन्यासों के चयन में भी, उसने उदात्त साहित्य को ही प्रश्रय दिया है। यह अवश्य है कि वह 'सस्ता' नहीं रह गया, शायद इसका कारण आजकल की बढ़ी कीमतें हैं। मुझे सामान्य प्रकाशकों और उसके प्रकाशनों के मूल्यों में कोई विशेष अंतर मालूम नहीं पड़ा। सम्भव है कि इस मामले का मेरा दृष्टिकोण ही गलत हो।

मैं न ज्योतिषी हूं और न भविष्यदर्शी, किंतु इस संस्था का 'शानदार था भूत' और 'वर्तमान' इतना गौरवमय और सफल है कि उसके 'भविष्य' की महानता पर, उसके महान उद्देश्यों और संगठन के संतुलन और मणि-कांचन के संयोग के कारण विश्वास किया जा सकता है। □

प्रगतिपथ प्रकाशमय हो

□

सूर्यनारायण व्यास

'सस्ता साहित्य मण्डल' का जन्म अजमेर में हुआ और वह प्रगति करता हुआ कनाट सर्कस, नई दिल्ली तक बढ़ आया। कौन जानता था कि 'मण्डल' का महत्व प्रकाशन-जगत में इतना अधिक बढ़ जायगा। वस्तुतः इसका श्रेय 'मण्डल' द्वारा प्रकाशित सात्विक साहित्य को है। उसका एक भी प्रकाशन ऐसा नहीं, जिसे जनता ने आदर से अपनाया न हो।

'मण्डल' की सबसे बड़ी देन गांधी-साहित्य है। इसी साहित्य ने उसे सर्वाधिक लोकप्रियता प्रदान की है। गांधी का गौरव हिन्दी में प्रतिष्ठित करने में 'मण्डल' ने मौलिक कार्य किया है, वैसे इतर राष्ट्रीय साहित्य भी उसका कम महत्व नहीं रखता। विदेशी भाषा और देश की विभिन्न भाषाओं से भी उसने बौद्धिक जग को सत्साहित्य प्रदान किया है। विनोबा वाणी को प्रकाशित कर समय की मांग को भी सूझ के साथ संभाला। प्रधानमन्त्री पं० नेहरूजी की महत्वपूर्ण रचनाओं को हिन्दी में सर्वप्रथम देने का श्रेय भी 'मण्डल' को प्राप्त है। 'मण्डल' ने प्रकाशन-जगत में सत्साहित्य भेंट कर मार्ग-प्रदर्शन का कार्य ही किया है। उसका साहित्य सर्वोत्तम भोजन है, जिसने समाज को स्वस्थता प्रदान की है। उसकी ध्येय-निष्ठा, कार्यतत्परता और सूझ को सभी ने सराहा है।

प्रायः प्रकाशक बाजार में चलने वाली चीजों को चुन कर उसके साथ प्रवाहित होना पसंद करते है, किन्तु 'मंडल' ने बाजार को अपने साथ चलने को विवश किया और यह उसमें सफल भी हुआ है।

जिस प्रकार ग्रन्थ-प्रकाशन में उसका अपना उद्दिष्ट है, पथ है, उसी प्रकार मासिक प्रकाशन में भी उसका अपना स्थान स्वतन्त्र रहा है। 'त्यागभूमि' के अंकों को जिन्होंने देखा है, वे कभी भुला नहीं सकते। 'त्यागभूमि' मासिक जगत में अपना आज तक कोई सानी पैदा नहीं कर सकी। 'मालव मयूर' से मुड़ कर नये रूप में अवतरित होकर उसने हिन्दी-जगत में चकाचौंध उत्पन्न कर दी थी। ऐसी सर्वांगपूर्ण, सुन्दर, सुरुचिपूर्ण, स्वस्थ और निर्भीक मासिक पत्रिका हिन्दी-जगत में दुबारा नहीं आई। आज भी उसका अभाव खटकता है। राजस्थान वास्तव में त्याग की भूमि है। उसमें से प्रसूत 'त्यागभूमि' पत्रिका ने अपना नाम और कार्य सार्थक कर दिया था। उसके इस नाम से प्रेरित हो, मैंने एक कविता लिखी थी, जो उसमें प्रकाशित भी हुई है। यह संक्षेप में उसका चित्र है :

जिस पुनीत धरती पर तूने
लिखा प्रताप चरित्र
गढ़, हल्दी का वही चित्र था,
बना सजीव, पवित्र।
एक बार तो उन चित्रों पर
फिरी रक्त की बाढ़
'त्यागभूमि' में प्रकृति-चितेरी
फिर वैसी छवि काढ़।

'त्यागभूमि' दीर्घजीवी नहीं बनी, यह हिन्दी का दुर्भाग्य कहना होगा। पर उसकी परंपरा का संक्षेप ही में क्यों न हो, 'जीवन साहित्य' निर्वाह कर रहा है। 'जीवन-साहित्य' की अपनी दिशा है, उसका एक लक्ष्य है, और वह उसमें सफल गति से बढ़ता जा रहा है। 'मण्डल' की मौलिकता का यह भी एक प्रतीक है।

प्रकाशन क्षेत्र में 'मण्डल' ने अपनी सफलता के ५० वर्ष पूर्ण कर लिये हैं। परवशता के काल में जन्म लेकर स्वाधीनता के सुवर्ण कार्य में वह यौवन में पदार्पण कर रहा है। वह जिन संस्कारों में पालित हुआ, पोषित हुआ, उसका यह यौवन राष्ट्रहित ही में योगदान देगा। उसका स्वास्थ्य समाज के सुरुचि-संरक्षण में सहायक होगा। 'मण्डल' हिन्दी की स्वस्थता, राष्ट्रीयता और सात्विकता का सजग प्रहरी है, उसका किशोर-काल उसके यौवन की उज्ज्वलता का प्रतीक बन गया है। उसे सबका संरक्षण प्राप्त है। इस कारण उसका भावी पथ प्रकाशमय एवं प्रशस्त है।

मैं उसकी प्रगति के ५० वर्ष पूर्ण कर लेने पर उसका अभिनन्दन करता हूं। □

प्रेरक पुस्तकें

□

प्रफुल्लचन्द्र ओझा 'मुक्त'

जैसे व्यक्ति के, वैसे ही संस्थाओं के जीवन-यापन के दो मार्ग खुले होते हैं—एक सोद्देश्य और दूसरा निरुद्देश्य। लेकिन 'उद्देश्य' शब्द थोड़ा भ्रामक है। दलील के लिए कोई कह सकता है कि 'आहार-निद्रा-भय-मैथुन' की प्राकृतिक प्रवृत्ति से परिचालित जीवन भी सोद्देश्य ही है—अच्छा भोजन, बढ़िया कपड़े और बाल-बच्चों के भरण पोषण के लिए अर्थोपार्जन ही ऐसे जीवन का उद्देश्य है; या कि 'मुनाफा' कमाने के लिए कोई संस्था चलाई जाय तो 'मुनाफ़ा कमाना' ही उस संस्था का उद्देश्य हुआ। लेकिन ये दलीलें निकम्मी हैं। ऐसे जीवन या ऐसी संस्था को सोद्देश्य नहीं कहा जा सकता। उद्देश्य शब्द अपने अन्दर एक शर्त छिपाये होता है—त्याग, तपस्या, सेवा, परहित की भावना, स्वयं ऊंचा उठना और अपने सहयात्रियों को भी अपने साथ ले चलना। यह शर्त जो पूरी कर सके, वही जीवन सोद्देश्य है—वह चाहे व्यक्ति का जीवन हो या संस्था का। निस्संदेह 'सस्ता साहित्य मंडल' का ५० वर्षों का उच्चावच मार्ग से गुजरता हुआ जीवन सोद्देश्य जीवन रहा है। सत्साहित्य को, सुलभ मूल्य में, देश के करोड़ों लोगों तक पहुंचाने के उद्देश्य से मंडल का जन्म हुआ था। पिछली आधी शती से वह अपने उद्देश्य की पूर्ति में निष्ठा के साथ जुटा हुआ है।

वर्तमान युग में हमारे देश ने एक ही 'पुरुषोत्तम' पैदा किया था और उस पुरुषोत्तम का नाम था महात्मा गांधी। महात्मा गांधी की प्रेरणा से जिस 'सस्ता साहित्य मण्डल' का जन्म हुआ, स्वाभाविक था कि उस पर उनकी छाप पड़े। महात्मा गांधी ही वह व्यक्ति थे, जिन्होंने सदियों की गुलामी से जड़ बने इस देश को झकझोरा, जगाया और स्वतंत्रता के लक्ष्य की ओर अभिमुख किया। महात्मा गांधी अकेले थे, सर्वथा साधनहीन थे, लेकिन उनका उद्देश्य महान था, उनका संकल्प पवित्र था और सत्य का अदम्य तेज उनके साथ था। देखते-ही-देखते एक करिश्मा-सा हुआ और सारा देश आजादी का मतवाला बनकर गांधी के पीछे चल पड़ा। उनकी प्रेरणा से अस्तित्व में आया 'मंडल' भी वैसा ही अकेला था, साधनहीन था, लेकिन कालांतर में 'मंडल' ने न केवल ऐसे पुरुषोत्तम का अधिकांश साहित्य भारत के शत-सहस्र पाठकों तक पहुंचाया, बल्कि निरंतर राष्ट्रीय भावना को जागृत करने, चेतना को प्रबुद्ध करने और जीवन को ऊंचा उठानेवाला साहित्य प्रस्तुत करता आया है। निश्चय ही 'मंडल' का जीवन सोद्देश्य जीवन रहा है।

जहां तक स्मरण है, 'मंडल' से प्रकाशित सबसे पहली जो पुस्तक मैंने पढ़ी थी, वह थी गांधीजी के द्वारा लिखित 'दक्षिण अफ्रीका के सत्याग्रह का इतिहास। उस समय मेरी उम्र १६ वर्ष के आसपास रही होगी। पढ़ने का व्यसन बहुत पहले से लग चुका था, लेकिन मेरी विशेष रुचि कथा-साहित्य में या यात्रा-वृत्तांत में थी। आखिर 'दक्षिण अफ्रीका के सत्याग्रह का इतिहास' मैंने कैसे पढ़ा? क्यों पढ़ा? स्पष्ट है कि पुस्तक के लेखक गांधी हमारे अति परिचित हो चुके थे। सत्याग्रह भी हमारे देश में स्थापित हो चुका था, हो रहा था। आत्मीयता की इस डोर ने ही मुझे 'दक्षिण अफ्रीका के सत्याग्रह का इतिहास' पढ़ने को उन्मुख किया। और कैसे बतलाऊं कि उस पुस्तक का मेरे किशोर मन पर क्या प्रभाव पड़ा? उसने मेरे मन में नये गवाक्ष खोले, नयी रुचियां जागृत कीं, मैं गांधी-साहित्य पढ़ने को उत्सुक रहने लगा।

कालांतर में गांधीजी की आत्मकथा पढ़ने को मिली। उसने एक रहस्य-लोक का परदा उठाया। सत्य का इतना प्रबल आग्रह भी किसी व्यक्ति के लिए संभव हो सकता है, यह उस समय तो अविश्वसनीय ही लगा था। लेकिन जो अविश्वसनीय था, वही सच था। गांधीजी कितने निर्मम थे अपने प्रति? अपनों के प्रति? सत्य से स्खलन न तो वे अपने में बर्दाश्त कर सकते थे, न अपने निकट के लोगों में। ऐसी निर्मम, निरासक्त भावना कोई हाड़-मांस का

पुतला अपने में विकसित कर सकता है, यह सचमुच विश्वास के योग्य बात नहीं थी। लेकिन आने वाले दिनों में वह सब प्रत्यक्ष देखने को मिला। मैंने जाना नहीं, मुझे पता नहीं चला, लेकिन इन दो पुस्तकों ने न जाने कब, कैसे, किस तरह मेरी मनोरचना आरंभ कर दी थी। मेरी रुचियां, मेरी मान्यताएं, मेरे विश्वास बदल रहे थे और जानता भी नहीं था कि परिवर्तन की यह प्रक्रिया किस तरह काम कर रही है।

'मण्डल' के प्रकाशन की दिशाएं बहुमुखी हैं। देश के बड़े-बड़े चिंतकों, मनीषियों और विद्वानों की कृतियां 'मंडल' ने प्रकाशित की हैं। लोक-नायक जवाहरलाल नेहरू, देश-रत्न राजेन्द्र प्रसाद, राजगोपालाचार्य, विनोबा भावे जैसे नर-रत्नों के विचारों से परिचित होने का सुयोग मुझे 'मण्डल' के माध्यम से ही प्राप्त हुआ। ये सभी महापुरुष हमारे युग की विभूति थे। हम इन्हें चलते-फिरते अपने सामने देखते थे। देखने में सभी सहज-सामान्य थे—दस और आदमियों-जैसे एक आदमी। लेकिन जब इनके विचारों के माध्यम से हम इन्हें देखते थे तो ये सामान्य नहीं, अति विशिष्ट जान पड़ते थे। वह विशिष्टता मन को आकर्षित करती थी। जीवन की धारा को परिवर्तित करती थी। अनायास हमारे मन में एक नयी प्रतीति जगाती थी, एक नया मनुष्य गढ़ती थी।

जवाहरलालजी उन दिनों भारतीय तरुणों के हृदय-सम्राट बने हुए थे। मेरे लिए तो बहुत निकट थे, इस अर्थ में कि जो इलाहाबाद उनकी कार्य-भूमि था, वही मेरी निवास-भूमि। आनंद भवन से हमारे मानस का एक अदृश्य अंतः सम्बन्ध बन गया था। राजकुमारों-जैसे जवाहरलाल का अधिकांश समय जेलों में बीतता था और इसके कारण गौरव से हमारे मस्तक तने रहते थे। जब उनकी आत्मकथा प्रकाशित हुई, कमलाजी का देहावसान हो चुका था। उसके समर्पण की दो पंक्तियां—कमला को, जिसकी अब याद ही रह गयी है—मर्म को छेद गयी थी। लेकिन आत्मकथा में उस अवसाद का कहीं पता नहीं था उसमें था उत्कट देश-प्रेम, देश की आज़ादी के लिए लेखक के हृदय में धधकती हुई आग। जैसे उस आत्मकथा का नायक व्यक्तिगत सम्बन्धों से, हर्ष-विषादों से दूर, बहुत ऊंचे, एक अदम्य लालसा के पंखों पर उड़ रहा हो और वह लालसा हो अपने परतंत्र देश की मुक्ति।

देशरत्न राजेन्द्रप्रसाद की आत्मकथा भी हमें 'मंडल' के माध्यम से ही मिल सकी। यह आत्मकथा राजेन्द्रबाबू की तरह ही शालीनता, विनय और आत्मगोपन का दस्तावेज थी। यह पुस्तक यद्यपि एक व्यक्ति की जीवन-कथा थी, लेकिन व्यक्ति उसमें प्रायः अनुपस्थित था। उसके बदले वह स्वतंत्रता-संग्राम की एक क्रमबद्ध और जीवंत कहानी थी, जिसमें चरित-नायक प्रसंगवश जहां-तहां आ गया था। यह राजेन्द्रबाबू की शालीनता के योग्य ही था कि उन्होंने आत्म-कथा लिखने के व्याज से स्वतंत्रता-संग्राम का वह प्रामाणिक इतिहास लिखा था, जिसके वे स्वयं एक सेनानी थे।

सन् १९२० में गांधीजी के नेतृत्व में स्वतंत्रता का जो आंदोलन आरम्भ हुआ था, उसकी परिणति १९४७ की स्वतंत्रता-प्राप्ति के रूप में हुई थी। मैं और मेरे-जैसे देश के करोड़ों लोग उसके जीवित किंतु मूक साक्षी थे। हमने उस आंदोलन को देखा था, किन्हीं अंशों में उनसे हमारा परिचय भी था, लेकिन वह परिचय सतही और एकांगी था। इन पुस्तकों ने हमें नई दृष्टि दी और हम अपने स्व-तंत्रता आंदोलन को अंतरंग रूप में देख-जान सके।

यहां मैंने जिन दो-चार पुस्तकों की चर्चा की है, निस्संदेह उनका मुझ पर बड़ा गहरा और स्थायी प्रभाव पड़ा है। मैं मानता हूं कि मेरी ही तरह अनगिनत लोग ऐसे होंगे, जिनके जीवन को इन पुस्तकों ने न केवल प्रभावित किया होगा, बल्कि उनके जीवन को, उनके चरित्र को नये सिरे से गढ़ा होगा। 'सस्ता साहित्य मंडल' इन पुस्तकों को हम तक पहुंचाने का माध्यम बना, यह उसकी सामान्य उप-लब्धि नहीं है।

लेकिन उसकी उपलब्धि यहीं तक सीमित नहीं है। उसने हज़ारों की संख्या में महत्त्वपूर्ण और उपयोगी पुस्तकें प्रकाशित की हैं और अपने उद्देश्य की ओर स्थिर-धीर गति से निरंतर आगे बढ़ता रहा है। उसकी यह यात्रा आज भी जारी है। हमें आशा करनी चाहिए कि यह क्रम चलता ही रहेगा।

महात्मा गांधी अपने जीवन के अंतिम २५-३० वर्षों तक भारतीय जीवन में इस तरह व्याप्त रहे, जैसे फूल में

[शेष पृष्ठ २२४ पर]

'मंडल' पुरानी याद नया सुझाव

□

कन्हैयालाल मिश्र 'प्रभाकर'

गांधी के युग की बात है। सादगी ही शान मानी जाती थी। इस सादगी की नींव उस मोटे गाढ़े की धोती ने भरी थी, जिसमें चादर की तरह दो पाट होते थे, उन्हें सीकर धोती की चौड़ाई तैयार होतीं थी और यह वह धोती थी, जिसे जवाहरलाल नेहरू ने भी पहना था और मेरे जैसे स्वयं-सेवकों ने भी।

उस ज़माने की पुस्तकें भी सादी होती थीं। कलकत्ते के रामलाल बर्मन और बेरी ने सजावट के कुछ नमूने ज़रूर बाजार में उतार दिये थे, फिर भी टाइटिलों के हुस्न की प्रदर्शनियां तबतक आरंभ न हुई थीं।

उन्हीं दिनों एक पुस्तक किसी मित्र के पास देखी। मामूली मलट का टाइटिल, मामूली काग़ज, मामूली छपाई; ध्यान आकर्षित करने लायक कोई बात नहीं, पर ध्यान-मुग्ध हो गया मित्र के एक वाक्य से—"मेरठ गया था, वहीं से एक मित्र से पढ़ने के लिए मांगकर लाया हूं। तुम पढ़ लो, तब वापस कर दूंगा।" उन दिनों देशभक्ति के, नवजीवन के प्रेरक साहित्य को प्राप्त करना, उसे एकान्त में पढ़ना और दूसरे साथियों को पढ़ने के लिए देना भी उस पीढ़ी का एक काम था। फिर कहीं पुस्तक अंग्रेज़ सरकार द्वारा जब्त हो, तो उसे बहुतों को चुपचाप पढ़वाना एक उत्तेजक काम हो जाता था। 'चांद' का 'फांसी अंक' मैंने जाने कितनों को पढ़ने के लिए दिया था। रात में चौकन्ने होकर उनके घर जाते, चुपचाप उन्हें फांसी अंक देते, सावधान करते और आंख बचाकर लौट आने की जाने कितनी घटनाएं इस समय स्मृतियों में अठखेलियां कर रही हैं। पुस्तक मांगी न देने की बात और उसे नारी की तरह दूसरे हाथ पड़ने से बचाने की चेतावनी भारत का नीतिकार बहुत दिन पहले दे गया था, पर उस युग की नीति यह थी कि जिस पुस्तक के पढ़ने से तुम्हें प्रेरणा मिली है, वह प्रयत्न करके दूसरों तक पहुंचाओ और उसे पढ़कर लौटाने में कभी लापरवाही न बरतो।

मैं अपने मित्र से वह खुरदरी-सी पुस्तक ले आया और ज्योंही मैंने उसका पहला पन्ना उलटा, एक अजीब और अपूर्व बात सामने आई कि प्रकाशक ने यह हिसाब दे रखा था कि इस पुस्तक की एक हज़ार प्रतियाँ छापने में कुल कितने रुपये लगे और एक प्रति की लागत क्या बैठी। मैंने देखा, उस प्रति की कीमत उतनी ही थी! मन पर गहरा-गहरा प्रभाव पड़ा कि जैसे सेवा-समिति की टोली लेकर किसी गांव में फैली बीमारी में सेवा का कार्य करके अभी-अभी लौटा हूं और उसकी रिपोर्ट मेरे सामने हो—यह कैसा प्रकाशक है, जो एक पैसा भी लाभ नहीं लेता और लागत के दामों चीज़ बेचता है, इनर टाइटिल पर नाम था—श्री जीतमल लूणिया, मंत्री सस्ता साहित्य मंडल, अजमेर।

यों मैंने पहली बार 'सस्ता साहित्य मंडल' का परिचय पाया—ऐसा परिचय कि आप-ही-आप वह आत्मीयता में बदल गया, क्योंकि गांधीजी की छाया में एक विशेष लक्ष्य की ओर बढ़नेवाले साथी थे। उन दिनों टेरेंस मैक्स्विनी की पुस्तक 'स्वतंत्रता के सिद्धान्त' और नशे के विरुद्ध ज़बर्दस्त प्रचार शक्ति से ओतप्रोत 'अनीति की राह पर' 'सस्ता साहित्य मंडल' ने ही समाज को भेंट दीं।

तब 'सस्ता साहित्य मंडल' तुलसी का बिरवा था। बाद में उसके साधन बढ़े, शक्ति बढ़ी, विस्तार बढ़ा और साधारण पाठक को गांधीजी और जवाहरलालजी के विचार 'मंडल' के द्वारा मिले। बाद में 'मंडल' और आगे बढ़ा और राष्ट्र के सफल प्रकाशकों में प्रतिष्ठित स्थान पर आ बैठा। कहूं, साधना का खेत व्यापार-बुद्धि से सिंचित हो लहलहा उठा। दूसरे शब्दों में, स्वतंत्रता से पहले देश में जो युग था, 'मंडल' उसके साथ रहा और स्वतंत्रता के बाद देश में जो युग आया, 'मंडल' आगे बढ़कर उसके साथ हो गया।

क्या मैं 'मंडल' की प्रशंसा कर रहा हूं? क्या मैं

[शेष पृष्ठ २१९ पर]

मंडल का लक्ष्य : चरित्र-निर्माण

□

मन्मथनाथ गुप्त

'चरित्र-निर्माण' शब्द सुनते ही कुछ लोगों के तेवर चढ़ जाते हैं, क्योंकि उनको इस शब्द में पुरानेपन की तेज बू आती है, पर ऐसे लोगों को पता नहीं, चरित्र पर आकर ही सारे वाद अटक रहे हैं। यदि अच्छी-से-अच्छी विचार-धारा या पद्धति हो, पर उसका क्रियान्वयन ऐसे लोगों के हाथों में पड़े, जो स्वार्थी, पदलोलुप, कामुक हों, तो उससे जनता का शोषण होगा, भाईभतीजावाद का बोलबाला होगा, शक्ति कुछ चालाक और संगठित लोगों के हाथों में होगी। इसी प्रकार यदि पद्धति लचर हो, जैसे राजतंत्र पर उसको काम में लानेवाले जनक-जैसे विदेह लोग हों या उमर, उसमान जैसे निःस्वार्थ लोग हों तो उससे हजारों लोगों को, आम जनता को लाभ होगा।

हमारे मित्र महान विद्वान एम० एन० राय, जिनके पाये का विद्वान भारतीय राजनैतिक क्षेत्र में शायद ही कोई रहा हो, भटकते-भटकाते इसी सत्य पर पहुंचे थे, अपने अन्तिम दिनों में। उन्होंने जिस 'रेडीकल ह्यूमनिजम' (उत्कट मानवतावाद) की उद्भावना तथा प्रचार किया, वह यही था कि लिबलिब मानवतावाद, जिसमें शोषक-शोषित पर ध्यान न देकर आसमानी वसुधैव कुटुम्बकम् की बातें की जाती हैं, बिल्कुल बेकार चीज है। अरस्तू बड़े भारी मानवतावादी थे, पर वह ईमानदारी से मानते थे कि समाज के ढांचे को बनाए रखने के लिए दासों की आवश्यकता है। उस युग की एथेन्स नगरी में एक-तिहाई लोग दास थे। दर्शन, कला, साहित्य में ऊंची-से-ऊंची उड़ान भरी गई, पर उन दासों की दृष्टि से देखिए। अरस्तू, अफलातून, हेरोडोटस, डिमोस्थिनिस, पेरिक्लिस, सब मानवतावादी थे, पर क्या हुआ ? सुकरात के युग में बहुत अच्छी पद्धति, लोकतंत्र, चालू था, मानवतावाद की बड़ी-बड़ी कसमें खाई गईं, पर क्या हुआ ? उस पद्धति में सुकरात को जहर का प्याला पीना पड़ा।

समाजवाद बहुत अच्छी विचारधारा है, क्योंकि इसमें मनुष्य द्वारा मनुष्य के शोषण का अंत हो जाता है, पर एम० एन० राय को, जो लेनिन-स्तालिन से समानता के आधार पर मिलते थे, यह दिखाई पड़ा कि कुछ संगठित लोग 'तू मुझे हाजी कह, मैं तुझे मुल्ला कहूं' के आधार पर गिरोह बनाकर शक्ति हथिया सकते हैं। इसीलिए उन्होंने कहा कि रेडिकल या क्रांतिकारी आमूलचूल परिवर्तनवाद के साथ मानवीय होना आवश्यक है। दूसरे शब्दों में एम० एन० राय को सारे शास्त्रों के अवगाहन और दोहन और विश्वव्यापी तजुर्बे के बाद यह निष्कर्ष निकालना पड़ा कि पूंजीवादी ढंग के भावुकतापूर्ण मानवतावाद से काम नहीं चलने का, उसे वाकई मानवतावादी होने के लिए वर्ग-हीन समाज की ओर जाना और उसके लिए संग्राम करना पड़ेगा। साथ ही समाजवादी पद्धति को मानवतावादी बना रहना पड़ेगा। समाजवाद आखिर है क्या ? उसमें मानवतावाद को व्यावहारिक रूप देना अभीष्ट है। स्तालिन के समाजवादी राष्ट्र में एम० एन० राय को कमी दिखाई पड़ी, तभी उन्होंने यह नया मतवाद चालू किया।

यहां बात उठ गई, इसलिए यह बता दिया जाय कि एम० एन० राय चिन्तन में उतना ऊंचा उठने पर भी, व्यावहारिक क्षेत्र में रोजाना राजनीति में बारबार हिमालय के समान गलतियां करते रहे। उन्होंने या दूसरों ने स्तालिन का जो मूल्यांकन किया, उससे भी मैं पूर्णतः सहमत नहीं। आज रूस महाशक्ति बना हुआ है, उसमें स्तालिन का जबर्दस्त दान रहा कि एक पिछड़े हुए देश को संसार की अगली पंक्ति में रखकर उसमें चार चांद लगा दिये। कर्मवीर व्यक्ति कुछ गलतियां भी करता है।

जो हो, आदर्श यह है कि :

(१) पद्धति अच्छी हो

पर यह अर्धसत्य है, दूसरा टुकड़ा यह है कि

(२) उसको काम में लानेवाले लोग निःस्वार्थ हों यानी अपना घर न भरें, भाई-भतीजावाद से दूर हों।

इस जगह पर आकर सभी मत और पथ एक हो जाते हैं। विवेकानन्द ने कहा था, "चालाकी से कोई बड़ा काम नहीं

हो सकता।" इसका मतलब है कि चरित्र चाहिए, त्याग चाहिए, तपस्या चाहिए। लोग इन शब्दों को सुनते ही मुंह बिचकाने लगते हैं, क्योंकि इन शब्दों के साथ जटा बढ़ाकर भूखों मरना या कोपीन लगाकर जंगल में रहने का चित्र सामने आ जाता है, जबकि असलियत यह है कि आज के तपस्वी प्रयोगशालाओं में, पुस्तकालयों में आंखें अणुवीक्षण या दूरवीक्षण यंत्र में गड़ाकर बैठते हैं, वे जंगलों में तेल खोजते हैं, यूरेनियम के पीछे दीवाने मजनूं बनकर घूमते हैं, भले ही उनकी जेबों में शराब की बोतलें हों।

चालाकी से गिरोह बनाकर किराए के विद्वानों की लेखनी और वक्तृत्वशक्ति की बदौलत राजपाट पर कब्जा किया जा सकता है, पर कोई ठोस काम नहीं हो सकता, न कोई सेवा ही हो सकती है। स्तालिन को लोग क्या-क्या कहते हैं, पर वह अपने परिवार को कोई महत्व नहीं देता था। उसका बेटा युद्ध में बन्दी हो गया, तो उसे खबर भेजी गई कि अमुक जर्मन सेनापति से उसे बदल लो। इस प्रकार का वह बन्दी-विनिमय युद्धकाल में न तो वर्जित है, न गर्हित, पर स्तालिन ने तौलकर देखा कि उस महान जर्मन सेनापति के लौट जाने से दुश्मनों का युद्ध-अभियान बहुत जोर पकड़ेगा, जबकि बेटे के लौट आने से अपने युद्ध-प्रयास को कोई विशेष लाभ न होगा, क्योंकि वह एक मध्यम दर्जे का सैनिक था, स्तालिन ने इस तबादले से इनकार कर दिया। नतीजा यह कि स्तालिन के बेटे को गोली मार दी गई और इसकी सूचना स्तालिन को दी गई। स्तालिन ने यह खबर बेटी स्वेतलाना को दी और काम पर चला गया।

इसी को हम चरित्र कहते हैं। चरित्र का सम्बन्ध लम्बी दाढ़ी, लम्बा चोगा या चिकनी-चुपड़ी बातों से नहीं। इसी सत्य को मैत्सिनी ने इस प्रकार कहा, "शहीदों के खून से विचार जल्दी परिपक्व हो जाते हैं।" यहीं पर आकर बुद्धिजीवी में कमी पाई जाती है। वह आरामकुर्सी पर बैठकर ऊँची-से-ऊँची बात सोच सकता है, पर वह कुछ कर नहीं सकता। यदि कर सकता है या करता है, तो वह क्रान्तिकारी बन जाता है, जैसे गांधी, सुभाष, भगत सिंह, चन्द्रशेखर आजाद, तिलक। पर हर क्रान्तिकारी सीमाहीन हो, ऐसा नहीं। इसका सबसे बड़ा ऐतिहासिक उदाहरण है, लोकमान्य तिलक का। वह राजनीति में क्रान्तिकारी थे, चाफेकर और सावरकर के गुरु थे, पर सामाजिक क्षेत्र में वह गोखले के मुकाबले में, जो राजनैतिक रूप में नरमपंथी थे, पिछड़े हुए थे। अतएव किसी को क्रान्तिकारी कह देने से बात खत्म नहीं हो जाती। यह पूछना पड़ता है कि वह किन क्षेत्रों में क्रान्तिकारी है और किनमें नहीं।

अपने क्रान्तिकारी आन्दोलन को ही लीजिए, उसमें भगतसिंह या चन्द्रशेखर आजाद जिस हद तक अपने क्रांतिकारी विचारों को ले गए, सावरकर, रामप्रसाद बिस्मिल या शचीन्द्रनाथ सान्याल उस हद तक क्रान्तिकारी नहीं थे। कुछ लोग सावरकर तक ही रह गए। चरित्र में दोनों किसी से कम नहीं, पर चरित्र के बाद प्रश्न विचारधारा का आता है। कोई भी विचारधारा हो, चरित्र अपरिहार्य उपादान है।

यहीं पर आकर साहित्य-कला का प्रश्न आता है, लेखन का प्रश्न आता है और प्रकाशन का। कुछ लोग प्रेस की स्वतंत्रता के नाम पर कहेंगे, सबकुछ ठीक है, पर...

समाजवाद और गांधीवाद दोनों इस मौलिक बात में सहमत हैं कि साहित्य सोद्देश्य हो। दोनों अश्लील साहित्य के विरुद्ध हैं। मैंने यूरोप भर में देखा 'प्लेबाय' नामक पत्र बहुत चालू है। जर्मन और फ्रेंच में उसका अनुवाद हाथों-हाथ बिकता है, पर सोवियत भूमि में ऐसा साहित्य न बिक सकता है, न छप सकता है। इस नकारात्मक दृष्टिकोण में सहमति के अतिरिक्त समाजवाद और गांधीवाद दोनों यह मानते हैं कि साहित्य का उद्देश्य आदर्श नागरिक के सृजन में हाथ बंटाना है। रहा यह कि यह आदर्श क्या है, इसमें चलकर दोनों में व्यावहारिक मतभेद हो सकते हैं, हैं। उदाहरणस्वरूप गांधीजी शराब के विरोधी थे, पर मार्क्स-एंगेल्स ने शराब पर कुछ नहीं लिखा। लेनिन व्यावहारिक आदमी थे, उन्होंने एक जर्मन क्रान्तिकारिणी से बात करते हुए शराबी या मद्यासक्ति की, किसी परलोक-सम्बन्धी कारणों से नहीं, यह कहकर निन्दा की कि मद्यासक्त अविश्वसनीय होता है। पर अब समाजवादी देशों में अति-मद्यासक्ति करीब-करीब एक समस्या बन चुकी है, क्योंकि क्रान्ति की चिनगारियां बुझ गईं, अब तो जीवन के मानदंड के उन्नयन का बुत पूजा जा रहा है—पूंजीवादी देशों

और समाजवादी देशों में। हमारी तरह पिछड़े हुए देशों में साहित्य को, कला को समाज के उन्नयन में जोतना ही पड़ेगा। प्रेस की स्वतंत्रता के नाम पर अश्लीलता, पराजयवाद, विश्वनिन्दुकता को प्रोत्साहन नहीं दिया जा सकता।

मैं जब जेल में था तभी 'सस्ता साहित्य मंडल' की स्थापना हुई थी। मैंने गांधी साहित्य मूल गुजराती में मंगाया था। फिर 'त्यागभूमि' जेलों में पाता रहा। मैं समझता हूं, 'सस्ता साहित्य मंडल' के दोनों उद्देश्य उचित और सही हैं।

१. साहित्य सत् हो,

२. साहित्य सस्ता हो।

१९२५ में 'मंडल' की स्थापना हुई गांधीजी के आशीर्वाद से तथा जमनालाल बजाज की प्रेरणा से। १९२८ में 'त्यागभूमि' का प्रकाशन आरम्भ हुआ, इसकी प्रतियां जब-तब चोरी से हम लोगों के पास आ जाती थीं। ब्रिटिश सरकार भला ऐसे साहित्य को क्यों चलने देती ! इस कारण उससे जमानत मांगी गई और संचालकों ने जमानत देकर पत्र चलाने से इनकार कर दिया। 'मंडल' की आठ पुस्तकें ब्रिटिश सरकार द्वारा जब्त कर ली गईं। मैं इसे 'मण्डल' की सबसे बड़ी उपलब्धि मानता हूं, क्योंकि पराधीनता के युग में लेखक या प्रकाशक की सबसे बड़ी सफलता यह रही कि उसकी पुस्तक जब्त हो जाय। है बड़ा कष्टप्रद, जैसा कि दो पुस्तकें जब्त होने के कारण भुक्तभोगी के रूप में मैं जानता हूं, पर यही सबसे ऊंचा सम्मान है।

'मंडल' ने गांधीवाद से काम शुरू किया, पर हर्ष है कि वह जल्दी इससे निकलकर अपना क्षेत्र नेहरू, सीतारमैया, टालस्टाय, क्रोपाटकिन तक प्रसारित कर दिया। गांधीवाद तथा गांधीवादी साहित्य का ऐतिहासिक महत्व बराबर रहेगा, फिर भी कोई पाठक अपने पाठ्यक्रम को किसी एक वाद तक सीमित रखना न चाहेगा। बाल-साहित्य, उपन्यास माला इस ओर बहुत अच्छे प्रयास रहे।

मैं समझता हूं कि युग की आवश्यकता के अनुसार 'मण्डल' को अपने क्षेत्र को प्रसारित कर उसमें सारे सत्साहित्य को समेटना पड़ेगा, जिसमें शहीदों और वीरों की जीवनियां, विभिन्न विचारधाराओं पर लिखित प्रामाणिक पुस्तकें प्रकाशित करनी पड़ेंगी। 'सस्ता' और 'सत्' यही 'मंडल' का नया नारा होना चाहिए, चाहे वह साहित्य गांधीवाद से मेल न खाता हो।

मैंने 'मंडल' के साथ बराबर सहयोग किया है, भविष्य में भी मैं 'मंडल' की सफलता चाहता हूं। ☐

[पृष्ठ २१६ का शेष]

'मंडल' की निन्दा कर रहा हूं ? न मैं प्रशंसा कर रहा हूं, न निन्दा कर रहा हूं, मैं तो वस्तुस्थिति का चिन्तन कर रहा हूं, पर बात को निचोड़ना ही है, तो मैं कहूंगा कि 'मंडल' अपने साधनों की विपुलता में उस साधारण पाठक का अपरिचित हो गया, जो पढ़कर सीखता है और उसे आचरण में ढालता है, पर उस उच्च और उच्च-मध्यम वर्ग के पाठक का मित्र हो गया, जो पढ़ता है, उस पर बहस करता है, उसे अलमारी में सजाता है। यह भी कि 'मंडल' ने अपनी व्यापारिकता के अनेक सफल प्रयोग किये, पर अपनी दिशा नहीं बदली। बात के ताश को तुरुफ चाल पर ही ला छोड़ना हो, तो कहें, 'मंडल' ने अपने आरंभ की तरह दूध ही बेचा; भले ही कुल्हड़ की जगह बढ़िया लेबिल की बोतलें और पुरानी बेंच की जगह मॉडर्न फर्नीचर बदल लिया, पर पड़ोसियों की तरह शराब नहीं बेची। 'मंडल' गांधीजी की छाया में, एक राष्ट्रीय संस्था के रूप में जन्मा था और आधी शताब्दी के बाद आज भी एक राष्ट्रीय संस्था के रूप में वह कार्य कर रहा है।

इस अवसर पर उसका, उसके संचालक मंडल का हार्दिक अभिनंदन, पर फतेहपुरी, दिल्ली के गजराज होटल की ओर ध्यानाकर्षण भी कि उसके संस्थापक ने होटल के साथ एक बड़ा कमरा भी बनाया, जो छोटी धर्मशाला है कि उसमें कोई भी तीन दिन के लिए एक बिस्तर की जगह और सामान रखने को एक अलमारी बिना किराये के पा सकता है। मतलब यह है कि प्रेरक साहित्य की एक ऐसी ग्रंथमाला भी मंडल चलाये, चलाता रहे, जिसमें नई पीढ़ी को सस्ते दामों, उत्तम सामग्री की सादी पुस्तकें सुलभ होती रहें। ☐

'मंडल' की महत्वपूर्ण भूमिका

□

रामकुमार भुवालका

'सस्ता साहित्य मंडल' के स्वर्ण जयन्ती महोत्सव पर 'जीवन साहित्य' के विशेषांक के प्रकाशन का आयोजन, न केवल स्तुत्य बल्कि सामायिक सूझ-बूझ का परिचायक भी है। 'मंडल' का गत ५० वर्षों का इतिहास भारत के अतीत, वर्तमान और भविष्य पर दृष्टिपात करने का सुअवसर प्रदान करता है।

पिछले ५० वर्षों की अवधि में विश्व के रंगमंच पर अनेक महत्वपूर्ण घटनाएं घट चुकी हैं और भारत भी इनसे अछूता नहीं रहा है। साहित्यिक, सांस्कृतिक, सामाजिक, राजनैतिक और आर्थिक क्षेत्र में बड़े-बड़े परिवर्तन हुए है और इन परिवर्तनों ने वैचारिक जगत में एक नयी क्रांति, नयी चिंतन-धारा और नयी शैली की सृष्टि की है। जीवन के मूल्य और साहित्य की विधाएं भी बदली हैं। मुद्रण और प्रकाशन के क्षेत्र में अनेक परिवर्तन आये हैं। आधुनिक मुद्रण-कलाओं और यंत्रों के आविष्कार और प्रकाशन के क्षेत्र में तीव्र प्रतिस्पर्द्धा के फलस्वरूप लब्ध-प्रतिष्ठ और ख्याति-प्राप्त प्रकाशकों पर जो नयी जिम्मेदारियां आई हैं, उनसे प्रायः सब लोग अवगत हैं।

पचास साल पूर्व 'सस्ता साहित्य मंडल' ने जब प्रकाशन के क्षेत्र में प्रवेश किया था तो परिस्थितियां सर्वथा भिन्न थीं। देश में राजनैतिक स्वतन्त्रता के लिए विदेशी सत्ता के विरुद्ध महात्मा गांधी के नेतृत्व में अहिंसात्मक संघर्ष चल रहा था। स्वतन्त्रता की भावनाएं सम्पूर्ण देश में हिलोरें ले रही थीं। राजनैतिक, सामाजिक और आर्थिक चेतना का वह युग था। प्रकाशनों और विचारों की स्वतंत्र अभिव्यक्ति पर विदेशी सत्ता ने नाना प्रकार के नियंत्रण लगा रखे थे। ऐसे समय में राष्ट्रीय भावनाओं को व्यक्त करनेवाले प्रकाशनों की आवश्यकता सबसे अधिक थी। देश को ऐसी प्रकाशन-संस्थाओं की आवश्यकता थी, जो घाटा उठा कर भी राष्ट्रीय भावना और ज्ञान के प्रसार में सहायक बन सकें। फलतः भारतीय स्वतन्त्रता-संग्राम के महान सेनानी सेठ जमनालालजी बजाज, श्री हरिभाऊ उपाध्याय तथा कुछ अन्य महानुभावों की सलाह से और बाद में श्री घनश्यामदासजी बिड़ला के परामर्श से भी लाभ उठा कर उच्च कोटि के साहित्यिक, सांस्कृतिक, राजनैतिक ऐतिहासिक और अन्य प्रकार के ग्रंथों के प्रकाशन के लिए 'सस्ता साहित्य मंडल' की स्थापना की गई। 'मंडल' को राष्ट्रपिता महात्मा गांधी और प्रधानमंत्री स्वर्गीय जवाहरलाल नेहरू का भी निरन्तर सत्परामर्श मिलता रहा। फल यह हुआ कि 'मंडल' ने अल्प समय में ही प्रकाशन के क्षेत्र में एक गौरवपूर्ण कीर्ति-स्तम्भ कायम कर लिया।

'मंडल' के अधिकांश प्रकाशन राष्ट्रीय विचारधाराओं से ओत-प्रोत और लोक-मंगल की भावना से प्रेरित रहे हैं। इतिहास, संस्मरण, रेखा-चित्र, दर्शन, अध्यात्म, अर्थ-शास्त्र, कृषि, व्यवसाय तथा अन्यान्य विधाओं से सम्बन्धित जो उच्चकोटि की पुस्तकें 'मंडल' ने समय-समय पर प्रकाशित की हैं, वे अन्य प्रकाशन संस्थाओं के यहां सुलभ नहीं हैं। सबसे महत्वपूर्ण बात तो यह है कि 'मंडल' ने देश के शीर्ष कोटि के राजनेताओं में अर्थ-शास्त्रियों, विचारकों और लेखकों की ऐसी कृतियां प्रकाशित की हैं, जो 'मंडल' के अतिरिक्त अन्य किसी प्रकाशन-संस्था के पास उपलब्ध नहीं हैं। वस्तुतः 'डमंल' ने अपने प्रकाशनों के माध्यम से न केवल राष्ट्रीय भावनाओं को जगाने और राष्ट्रीय स्वतन्त्रता-संग्राम को सफल बनाने में योगदान दिया, बल्कि देश-विदेश में राष्ट्रभाषा हिंदी के प्रचार और प्रसार में भी बहुत बड़ा सहयोग प्रदान किया है। आज राष्ट्रभाषा हिंदी के प्रति जो उत्साह, उमंग और प्रेम दिखलाई पड़ रहा है, उसका बहुत बड़ा श्रेय 'सस्ता साहित्य मंडल' को है।

अपने नाम के अनुरूप ही 'सस्ता साहित्य मंडल' ने देश के बुद्धिजीवी वर्ग, विचारकों और चिन्तकों की मान-

[शेष पृष्ठ २२२ पर]

'मण्डल' का मूल ध्येय और हमारा दायित्व

□

जयदयाल डालमिया

'सस्ता साहित्य मंडल' की स्थापना को पचास वर्ष हो गये, यह जान कर हर्ष हुआ। इतने लम्बे समय तक सेवा के पथ पर निष्ठा और दृढ़ता के साथ चलते जाना सामान्य बात नहीं है और इसके लिए 'मंडल' की जितनी सराहना की जाय, थोड़ी है।

पिछली अर्द्धशताब्दी में इस संस्था ने विभिन्न विषयों के जो प्रकाशन किये हैं, वे निस्संदेह लोकोपयोगी हैं। वस्तुतः 'मंडल' की स्थापना ही इस उद्देश्य से हुई थी कि वह जन-सामान्य के लिए उत्तम साहित्य सस्ते मूल्य में प्रकाशित करे। अपने इस उद्देश्य के प्रति 'मंडल' सदा सजग रहा है। पुस्तकों के चुनाव में उसने जहां सावधानी रखी है, वहां उन्हें यथासाध्य कम-से-कम मूल्य में भी देने का प्रयास किया है।

'मंडल' के साथ मेरा बहुत पुराना और निकट का संबंध रहा है। यदि मैं यह कहूं तो अत्युक्ति नहीं होगी कि 'मंडल' से अधिक मेरा संबंध 'मंडल' के परिवार से रहा है। संस्था ने जो कुछ सेवा की है, वह उसी परिवार की साधना, निष्ठा, सूझबूझ और परिश्रमशीलता का परिणाम है।

'मंडल' का आरंभ पूज्य महात्मा गांधी के आशीर्वाद और श्रद्धेय जमनालालजी के प्रयत्न से हुआ था। यह नींव बड़ी पक्की थी और पक्की नींव पर जो इमारत खड़ी होती है, वह बहुत मजबूत होती है।

'मंडल' की दृष्टि कभी मुनाफा कमाने पर नहीं रही। महात्मा गांधी, विनोबाजी, राजेन्द्रबाबू, जवाहरलालजी, राजाजी प्रभृति भारतीय नेताओं और चिन्तकों की जो पुस्तकें 'मंडल' ने प्रकाशित की हैं, उनके पीछे एकमात्र यही भावना रही है कि देश में राष्ट्रीय चेतना का विकास हो और देशवासियों का जीवन शुद्ध और प्रबुद्ध बने। अध्यात्म, नीति, दर्शन और संस्कृति से लेकर इतिहास, राजनीति, कृषि, ग्रामोद्योग आदि-आदि विषयों में से किसी को भी 'मंडल' ने अछूता नहीं छोड़ा और सब विषयों पर प्रामाणिक तथा ज्ञानवर्द्धक साहित्य प्रकाशित किया है। लोक-रुचि को परिष्कृत करने के लिए उसने उपन्यास, कहानियां, निबंध, यात्रा-वृतान्त इत्यादि भी निकाले हैं। कहने का तात्पर्य यह कि लोक जीवन को ऊंचा उठाने के लिए जिस साहित्य की आवश्यकता थी, उसी की रचना 'मंडल' ने कराई और उत्तमोत्तम पुस्तकें पाठकों को प्रदान कीं।

'मंडल' का पटल विशाल रहा है। विदेश के जिन चिन्तकों ने मानव के कल्याण के लिए शाश्वत मूल्य के विचार दिये, उनकी ओर भी 'मंडल' ने दृष्टिपात किया और टाल्स्टाय, खलील जिब्रान, स्टीफ़न ज्विग, आंद्रे जीद, स्वेट मार्डन आदि अंतर्राष्ट्रीय ख्याति के विचारकों तथा विद्वानों का चुना हुआ साहित्य भी हिन्दी के पाठकों को सुलभ किया। इस प्रकार उसने यह अनुभव करने का अवसर प्रदान किया कि भाषा, रहन-सहन, धर्म-विश्वास की भिन्नता होते हुए भी मानव-जाति एक और अखण्ड है। इसी अनुभूति के आधार पर ही मानवीय मूल्यों की स्थापना हो सकती है और स्थायी शान्ति के चरम ध्येय की उपलब्धि की जा सकती है।

'मंडल' के सम्पूर्ण साहित्य के मूल्यांकन का यह समय नहीं है। अपने देश में और देश के बाहर के अनेक देशों में 'मंडल' और उसके साहित्य के प्रति बड़ा मान है, क्योंकि 'मंडल' ने जो कुछ किया है, उसमें सबका भला, सबका मंगल और सबका शुभ समाहित है।

जिस समय 'मंडल' की स्थापना हुई थी, तब से अबतक हमारे देश में और दुनिया में बड़े परिवर्तन हुए हैं। जिस समय भारत विदेशी सत्ता से जूझ रहा था, उसके सामने स्वराज्य-प्राप्ति का महान ध्येय था। उस ध्येय के पूर्ण हो जाने पर उसकी यात्रा की दूसरी मंजिल आरंभ हुई, अर्थात देश की आर्थिक, सामाजिक तथा सांस्कृतिक स्वतंत्रता प्राप्त करने

का युग आया। यह मंजिल पहले की अपेक्षा अधिक कठिन थी, क्योंकि गांधीजी के शब्दों में 'उसमें तड़क-भड़क नहीं थी।'

'मंडल' एक मिशन को लेकर चला था और चूंकि मुनाफा कमाना उसे इष्ट नहीं था, अतः उसने पूंजी इकट्ठी करने या अन्य प्रकार के साधन जुटाने का यत्न नहीं किया। परिस्थितियां ऐसी बनीं कि कालांतर में पुस्तक-प्रकाशन मिशन नहीं रहा, एक धंधा बन गया, पर 'मंडल' अपने अंगीकृत मार्ग पर मजबूती से चलता रहा। उसने घाटा उठाया, पर अपने निश्चय पर अडिग रहा।

आज उसके सामने कठिनाइयां हैं। गंभीर तथा विचार-प्रेरक पुस्तकें आज भी बहुत कम बिकती हैं, जबकि हल्के उपन्यास तथा निम्न कोटि का साहित्य धड़ल्ले से खपता है। 'मंडल' के सामने प्रश्न है कि उसके साहित्य की खपत किस प्रकार हो? 'मंडल' यह भी अनुभव करता है कि अपने उद्देश्य के अनुरूप उसे पुस्तकें सस्ते मूल्य में देनी चाहिए, पर कागज, छपाई तथा जिल्दबंदी आदि की बढ़ी हुई दरों को देखते वह सस्ती पुस्तकें किस प्रकार दे? समय की मांग है कि 'मंडल' अपने प्रकाशन तेजी से करे, पर पूंजी के अभाव में वह ऐसा करे तो कैसे करे? 'मंडल' यह भी चाहता है कि जिन विषयों पर आज साहित्य की कमी है, उन पर पुस्तकें निकाले, लेकिन कैसे?

हम अनुभव करते हैं कि जिस संस्था ने पचास वर्ष तक अनवरत साधना की है, उसके मार्ग की बाधाओं को दूर करने के लिए समाज और सरकार दोनों को आगे आना चाहिए। इतने बड़े देश में दस-बीस लाख रुपये की राशि बहुत बड़ी राशि नहीं है। अपने देशवासियों के नैतिक उत्थान तथा चरित्र-निर्माण के लिए प्रत्येक देश प्रयत्नशील रहता है। 'मंडल' ने अबतक के अपने कार्य से सिद्ध कर दिया है कि वह सत्साहित्य के प्रणयन और प्रसार का कार्य बड़ी कुशलता से कर सकता है और आज ऐसी संस्थाओं की बहुत ही आवश्यकता है, जो अपने स्वार्थ को ध्यान में न रखकर लोकहित के लिए कार्य करें। ऐसी संस्थाओं को पूरा संरक्षण और पूरा सहयोग मिलना ही चाहिए।

'मंडल' की स्वर्ण जयंती के शुभ अवसर पर मैं जहां संस्था का अभिनंदन और उसके दीर्घायु की कामना करता हूं, वहां यह आशा भी करता हूं कि 'मंडल' को पर्याप्त साधन प्राप्त होंगे और वह अपने कार्य को अधिक गतिपूर्वक कर सकेगा। □

[पृष्ठ २२० का शेष]

सिक क्षुधा शांत करने के लिए उच्च कोटि का स्वच्छ और स्वस्थ साहित्य सुलभ कराया है, ताकि सम्पूर्ण राष्ट्र का नैतिक, चारित्रिक और आध्यात्मिक धरातल उन्नत हो सके और साहित्य के नाम पर बुद्धिजीवियों को अस्वास्थ्यकर सामग्री ग्रहण न करनी पड़े। राष्ट्र के नैतिक, चारित्रिक आध्यात्मिक और वैचारिक स्तर को उन्नत बनाने और उच्च कोटि के लेखकों, साहित्यकारों तथा शिल्पियों को संरक्षण प्रदान करने में 'सस्ता साहित्य मंडल' अग्रणी रहा है। यह सही है कि 'मंडल' की सेवायें राष्ट्र के निर्माण और विकास की दृष्टि से बहुत ही महत्वपूर्ण रही हैं, किंतु उसकी कठिनाइयां भी कम नहीं रही हैं। उन कठिनाइयों को झेलते हुए 'मंडल' ने अपने बहुमूल्य जीवन के ५० वर्ष पूरे कर लिये हैं, यह अपने आपमें बहुत बड़ी उपलब्धि है।

आज प्रकाशन-संस्थाओं के समक्ष जहां उच्चकोटि के ग्रन्थों के प्रणयन और प्रकाशन की समस्या है, वहीं दूसरी ओर उनकी बिक्री की समस्या है। मूल्य-वृद्धि और मुद्रा-स्फीति के बाद अब प्रकाशन-संस्थाओं को आर्थिक मन्दी का सामना करना पड़ रहा है। स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद पाठकों की संख्या कुछ बढ़ी है, किन्तु उनकी आर्थिक क्षमता और क्रय-शक्ति में अधिक वृद्धि नहीं हुई है। मुद्रण और प्रकाशन के क्षेत्र में विदेशी प्रकाशकों के अलावा राज्य और केन्द्र की सरकारें भी उतर आई हैं और अकादमियों, परिषदों, समितियों एवं शिक्षण-संस्थानों के माध्यम से बड़े पैमाने पर प्रकाशन का कार्य शुरू हो गया है। फलतः प्रकाशकों के समक्ष अब केवल निजी क्षेत्र की प्रतिस्पर्धा की ही समस्या नहीं है, बल्कि सरकारी क्षेत्र की प्रतिस्पर्धा की समस्या भी उपस्थित है। कागज, मुद्रण तथा प्रकाशन सम्बन्धी अन्य प्रकार का व्यय बढ़ जाने, बाजार में श्रेष्ठ पुस्तकों की मांग कम होने तथा प्रकाशन के क्षेत्र में व्याप्त प्रतिस्पर्द्धा के कारण प्रकाशन के स्तर को कायम रखना निश्चय ही कठिन काम है। फिर प्रकाशन के क्षेत्र में पूंजी अधिक लगती है, जबकि मुनाफा कम होता है। इन सारी कठिनाइयों और गौरवपूर्ण परम्पराओं को ध्यान में रखते हुए 'मंडल' भविष्य के लिए प्रकाशन योजनाएं तैयार कर सकता है, ताकि लोक-मानस को परिष्कृत किया जा सके, जिसकी आज बड़ी आवश्यकता है। □

सर्व जन हिताय सर्व जन सुखाय

□

कृष्णचन्द्र बेरी

'सस्ता साहित्य मंडल' से मेरा व्यक्तिगत परिचय १९३० के लगभग हुआ, जब मैं ११ वर्ष का बालक था। 'मंडल' के आदि-संस्थापक श्री जीतमल लूणिया मेरे पिता तथा कलकत्ता के प्रसिद्ध प्रकाशक निहालचन्द एण्ड कम्पनी के व्यवस्थापक श्री निहालचन्द वर्मा के परम मित्र थे। लूणियाजी द्वारा प्रकाशित तथा महात्मा गांधी द्वारा लिखित एवं शौकत अली तथा मुहम्मद अली को समर्पित 'हिन्दुस्तान का राष्ट्रीय झंडा' तथा 'असहयोग दर्शन' नाम की पुस्तकों की दो-दो सौ प्रतियां विक्रयार्थ हमने मंगाई थीं। लूणियाजी के माध्यम से ही चन्द्रराज भण्डारी लिखित 'भारत के हिंदू सम्राट' नामक पुस्तक का पूरा स्टाक तथा वितरण का भार हमें मिला था। सन् १९३२ में 'मंडल' से श्री हरिभाऊ उपाध्याय लिखित 'युगधर्म' नामक पुस्तक प्रकाशित हुई थी। इसकी २५० प्रतियां विक्रयार्थ श्री लूणियाजी ने हमें भेजीं। 'युगधर्म' का कलकत्ता की राष्ट्रवादी जनता ने बहुत स्वागत किया। इस पुस्तक का प्रचार हमारी फर्म की ओर से वर्मा, सिंगापुर आदि तक किया गया। लूणियाजी ने योगिराज अरविन्द की पुस्तक 'धर्म और जातीयता' को पं० देवनारायण द्विवेदी से अनूदित कराकर प्रकाशित किया था और वह भी बहुत लोकप्रिय हुई।

'मंडल' के सर्व जन हिताय, सर्व जन सुखाय राष्ट्रीय प्रकाशनों की चर्चा करते हुए मेरे पिताजी ने मुझे बताया था कि १९२५ की कानपुर कांग्रेस में 'मण्डल' के संस्थापक श्री जीतमल लूणिया राष्ट्रीय साहित्य लेकर गये हुए थे। कलकत्ता के कुछ प्रकाशकों की ओर से इस अवसर पर श्री निहालचन्द वर्मा राष्ट्रीय ट्रैक्ट और राष्ट्रीय कैलेन्डर लेकर इसी कांग्रेस में उपस्थित थे। कानपुर कांग्रेस के अवसर पर लूडो की तरह 'स्वराजदर्शन' खेल भी प्रकाशित किया गया था।

'हिन्दी पुस्तक एजेंसी' के संस्थापक श्री महावीर प्रसाद पोद्दार ने कलकत्ता के शुद्धखादी भंडार से सन् १९३० में नवजीवनमाला निकाली, जो एक साल चलकर बंद हो गई। बाद में 'मंडल' ने उसे १९३७-३८ में पुनः प्रकाशित किया।

सेठ जमनालाल बजाज बहुत पहले से चाहते थे कि उत्तम पुस्तकें सस्ते मूल्य में पाठकों को पढ़ने को मिलें, जिस से उनमें देश-प्रेम, राष्ट्रीयता और त्याग की भावना जाग्रत हो। अतः 'तिलक स्वराज्य फंड' से २५ हजार के अनुदान से 'सस्ता साहित्य मण्डल' को सन् १९२५ में एक सार्वजनिक संस्था बनाकर कार्य करने की दिशा दी। 'मंडल' ने कभी भी हल्के साहित्य का प्रकाशन नहीं किया। जनता में राष्ट्रीयता की भावना जगे और सुरुचिपूर्ण साहित्य पढ़ने को प्रोत्साहन मिले, तदर्थ ही प्रकाशन किया। जब 'मंडल' से पट्टाभि सीतारमैया लिखित 'कांग्रेस का इतिहास' का प्रथम संस्करण प्रकाशित हुआ तो उसे कांग्रेस के नेताओं और राष्ट्रप्रेमी जनता ने अपना दस्तावेज माना। आजादी के बाद कांग्रेस के जयपुर-अधिवेशन के अवसर पर श्री मार्तण्ड उपाध्याय ने इस इतिहास का सज-धज के साथ दूसरा खंड प्रकाशित किया। उन्हें विश्वास था कि पुस्तक की काफी प्रतियां बिकेंगी, परन्तु बहुत अधिक संख्या में न बिकने के कारण उन्हें थोड़ी निराशा हुई। सन् १९३० में बापू का 'गीता का भाष्य' 'मंडल' ने छापा। बाद में 'नवजीवनमाला' के अन्तर्गत १९३१ में प्रकाशित किया।

१९३७ में अपनी बर्मा-यात्रा के सिलसिले में इस लेख के लेखक को बर्मा प्रदेश कांग्रेस के महामंत्री श्री रमेश मेहता से मिलने का अवसर मिला। उन्होंने पूछा कि क्या मैं 'अनासक्ति योग' की १०० प्रतियां रंगून, मांडले आदि स्थानों पर उनके दिये पतों पर भिजवा सकता हूं? इसी यात्रा के दौरान माण्डले में लेखक को बर्मा के राष्ट्र पिता आँग साँग से मिलने का अवसर मिला। वह उस समय विद्यार्थी थे। उन्होंने 'मंडल' द्वारा प्रकाशित बापू की 'आत्मकथा अथवा

सत्य के प्रयोग' के विषय में जानने की इच्छा प्रकट की। इन्हीं दिनों 'मण्डल' द्वारा क्रोपाटकिन लिखित 'रोटी का सवाल' प्रकाशित हुआ। अराजकतावादी आन्दोलन का यह सैद्धान्तिक ग्रन्थ माना जाता था। हमारे देश के क्रान्तिकारियों ने इसे बड़ी रुचि के साथ पढ़ा।

राजेन्द्रबाबू की आत्मकथा का प्रकाशन पहले पटना के एक सज्जन ने १९४५-४६ में किया था। पुस्तक लगभग ५०० पृष्ठों की रायल साइज में जिल्दबंधी थी। जहां तक मैंने सुना था, वे सज्जन २५ प्रतिशत रायल्टी देना चाहते थे और मृत्युंजयबाबू ४० प्रतिशत रायल्टी मांग रहे थे। मृत्युंजयबाबू का आशय पुस्तक से कोई लाभ कमाना नहीं था, परन्तु वे इस धन को राष्ट्रीय आन्दोलन में भेंट करना चाहते थे। बाद में राजेन्द्रबाबू की आत्मकथा का दूसरा संस्करण 'मंडल' से प्रकाशित हुआ। मैं श्री प्रभुदयालजी हिम्मतसिंह का पत्र लेकर राजेन्द्रबाबू से मिला था। वे उन दिनों कुछ अस्वस्थ थे। जब मैंने उनकी आत्मकथा को 'साहित्य की बहुत बड़ी निधि' बताया तो उन्होंने हंसते हुए कहा कि इसे 'मंडल' ने लोकप्रिय बना दिया है।

'मंडल' ने एक हजार रुपये की सहायक-सदस्य-योजना प्रचलित की, जिसके द्वारा अपने प्राप्य प्रकाशन तथा आगे होने वाले प्रकाशन एक निश्चित अवधि तक भेंट-स्वरूप देते रहने और उनकी राशि को लौटा देने की घोषणा की। श्री मार्तण्ड उपाध्याय और श्री यशपाल जैन के प्रयत्न से इस योजना में 'मंडल' को बड़ी सफलता मिली।

मुझे दक्षिण अफ्रीका के स्वामी भवानी दयाल संन्यासी नहीं भूलते हैं, जिनकी पुस्तक 'प्रवासी की आत्मकथा' की एजेंसी लेकर 'मंडल' ने बेची थी। सम्भवतः मैंने इन्हें कलकत्ते के श्री शंभूप्रसादजी वर्मा की प्रकाशन-संस्था 'कलकत्ता पुस्तक भण्डार' में देखा था। उन दिनों पं० राजेवल्लभ ओझा, पं० उमादत्त शर्मा भी वर्मा जी के यहां काफी आते-जाते थे। मैं उन दिनों 'बंगाल छात्र संघ' का मंत्री था और मुझ में एक लालसा बनी रहती थी कि मैं राष्ट्रवादी लेखकों का आशीर्वाद प्राप्त करता रहूं।

सर्वोदय साहित्य का 'मंडल' ने प्रकाशन कर गांधीजी तथा विनोबाजी आदि के विचारों का व्यापक प्रसार किया। विनोबाजी के भूदान-यज्ञ को बहुत बड़ा बल दिया।

'मंडल' द्वारा प्रकाशित कुछ पुस्तकें बहुत ही चर्चा की विषय रहीं। इनमें नेहरूजी की 'विश्व इतिहास की झलक' तथा उनकी आत्मकथा 'मेरी कहानी' और हाल ही में प्रकाशित 'इन्दु से प्रधान मंत्री' आदि हैं।

'मंडल' की 'जीवन साहित्य' पत्रिका मैं नियमित रूप से पढ़ता हूं, परन्तु मेरा ऐसा विचार है कि यह पत्रिका चालीस वर्ष से अधिक उम्र के लोगों के लिए ही है। इस पत्रिका को इस ढंग से बनाया जाय ताकि नवयुवक इसकी ओर आकृष्ट हों तो हमारा बहुत हित होगा।

'मंडल' की स्वर्ण जयन्ती हिन्दी-प्रकाशन-युग की एक अभिनव घटना है। इससे प्रकाशकों को सत्साहित्य के प्रकाशन की प्रेरणा मिले, ऐसी मेरी कामना है।

[पृष्ठ २१५ का शेष]

सुगंध होती है। आज यह सोचकर भी आश्चर्य होता है कि एक अकेला व्यक्ति कैसे इतने बड़े और शक्तिशाली साम्राज्य के विरुद्ध अपने देश की स्वतंत्रता के लिए न केवल आंदोलन चलाता रहा, बल्कि जीवन के विविध पक्षों पर सोचता रहा और अपने विचार व्यक्त करता रहा। गांधीजी का साहित्य बड़ा विशद है और बहुत बड़े परिमाण में है। उसका अधिकांश महत्त्वपूर्ण भाग 'सस्ता साहित्य मंडल' ने हमारे लिए सुलभ किया है। इसी तरह जवाहरलाल नेहरू की महत्त्वपूर्ण पुस्तकों के हिन्दी संस्करण भी हमें मण्डल के द्वारा ही उपलब्ध हुए हैं। अधुना नेहरू वाङ्मय के रूप में जवाहरलालजी के चुने हुए विचार खंडशः प्रकाशित हो रहे हैं। इनमें नेहरूजी के लेख हैं, भाषण हैं, पत्र हैं और जेल-जीवन की डायरियां भी हैं। यह ऐसे संक्रांति काल का प्रामाणिक और आत्मीय इतिहास है, जो विश्व-इतिहास में अपने ढंग का अनोखा है।

'सस्ता साहित्य मंडल' ने जिस उद्देश्य को लेकर अपनी जीवन-यात्रा आरंभ की थी, वह उसे पूरी निष्ठा और संकल्प के साथ निभाता आ रहा है। उसने जीवन की विविध प्रवृत्तियों के लिए उपयोगी और आवश्यक पुस्तकें पाठकों तक पहुंचाने का ध्यान रखा है। 'मंडल' के कतिपय प्रकाशनों ने एक पाठक के रूप में मुझ पर क्या प्रभाव डाला है, इसकी संक्षिप्त चर्चा मैंने यहां की है। लेकिन अपने अनुभव को मैं एक व्यक्ति का अनुभव नहीं मानता। निस्संदेह मेरे-जैसे लाखों पाठक होंगे, जिनके जीवन को मण्डल से प्रकाशित पुस्तकों ने नया मोड़ दिया होगा, जिनके जीवन को संवारा-सुधारा होगा और उसे ऊँचा उठाने में सहारा दिया होगा। 'मण्डल' की सफलता का इससे बड़ा प्रमाण और कुछ नहीं हो सकता।

हिन्दी द्वारा राष्ट्र-निर्माण में योग

□

कृष्णचन्द्र

'जीवन साहित्य' के विशेषांक के लिए कुछ लिखने का आग्रह भाई श्री यशपालजी ने किया है। उसे टालना कठिन था, फिर मेरे जीवन-निर्माण के दिनों में जिसके साहित्य का मुझे परम उपयोग हुआ था, उसके लिए ज्यादा नहीं तो दो शब्द लिखना कर्तव्य भी हो जाता है।

मुझे भली-भांति याद है कि जब मैं इलाहाबाद में हाईस्कूल की अंतिम कक्षाओं में पढ़ता था, उस समय हमारे किराये के घर के पास ही एक छोटा-सा पुस्तकालय था, जिसमें 'त्यागभूमि' पत्रिका आती थी। उसके एक अंक में मैंने साधु टी० एल० वास्वानी का गीता पर लेख पढ़ा। उसमें उन्होंने बताया था कि गीता के अंदर जो युद्ध की बात आई है, वह किसी भौतिक युद्ध की नहीं, बल्कि हमारे अंतर में ही चलने वाले दैवी तथा आसुरी शक्तियों के युद्ध की द्योतक है। यह बात तुरन्त घर कर गई और आज ४७ साल से भी ऊपर हुआ होगा, वह लेख मुझे भूला नहीं है। गांधीजी के 'अनासक्ति योग' की प्रस्तावना पढ़ कर इसकी पुष्टि हुई, लेकिन सर्वप्रथम तो साधु-वास्वानी का लेख पढ़कर ही उस युद्ध के इस नये गूढ़ार्थ ने मेरा ध्यान खींचा था। ऐसे उपकारक लेख को, जो मुझे मेरे बुनियादी काल में पढ़ने को मिला था, यदि मिल जाय तो आज फिर से पढ़ने की इच्छा हो जाती है।

दूसरे जो लाभ उसी जमाने में मुझे हुए, वे सर्वप्रथम 'सस्ता साहित्य मंडल' द्वारा गांधीजी की आत्मकथा के दो भागों के हिंदी में प्रकाशन थे। उन दिनों मैं हाईस्कूल में पढ़ता था। मेरे एक सहपाठी ने कहीं रेलवे प्रवास में बापू की आत्मकथा देखी। उसे लगा कि शायद मैंने वह पढ़ी हो। लेकिन मुझे तो इसका पता तक नहीं था। मैं तुरन्त इलाहाबाद के प्रमुख हिंदी पुस्तक विक्रेता (नाम याद नहीं आ रहा है) के पास जाकर आत्मकथा खरीद लाया। बड़े चाव से और ध्यानपूर्वक पढ़ी। फिर दूसरे भाग की प्रतीक्षा में बार-बार पूछताछ करता रहा। किताबों के दाम भी 'मंडल' ने अपने नाम के अनुरूप काफी सस्ते रखे थे। बाद में बापू का गीतानुवाद 'अनासक्तियोग', जो मैंने पहले मूल गुजराती में पढ़ने का प्रयत्न किया था, 'मंडल' ने हिंदी में प्रस्तुत किया। फिर 'मंगल-प्रभात' तथा आश्रम जीवन जैसी छोटी, लेकिन अत्यन्त महत्व की पुस्तिकाएं भी हाथ लगीं।

१९४० में विनोबाजी को बापू ने प्रथम सत्याग्रही के तौर पर चुना, लेकिन विनोबाजी कौन हैं, उनके विचार क्या हैं, इसका हिंदी जगत् को कुछ भी पता नहीं था। इतने वे प्रसिद्धि-पराङ्मुख ठहरे। मैं तब मराठी नाम मात्र को ही जानता था। इसलिए जब 'मंडल' ने 'विनोबा के विचार' दो भागों में बिना देर लगाये प्रकाशित किये तो मेरे-जैसे को परम समाधान हुआ। आगे चलकर उनके प्रसिद्ध गीता प्रवचनों का लाभ हिंदी जनता को सर्वप्रथम देने का श्रेय भी 'मंडल' को ही जाता है।

सारांश, मंडल ने हिंदी द्वारा राष्ट्र-निर्माण के कार्य में गांधी-विचार को देश के आगे प्रस्तुत करने में जो नेतृत्व किया, उसके लिए मैं 'मंडल' को सादर प्रणाम करके, ये दो टूटे-फूटे शब्द पूरे करता हूं। □

'मंडल' की महनीय सेवा

□
कुन्दर दिवाण

भारत स्वतन्त्र होने के पूर्व जिन प्रकाशन-संस्थाओं ने देश की, समाज की और विभिन्न वर्गों की सर्वतोमुखी बहुमूल्य सेवा की है, उनमें 'सस्ता साहित्य मंडल' का स्थान बहुत ऊँचा है। स्वतन्त्रता की प्राप्ति होने तक स्वाभाविक रूप से ही हमारे सभी प्रयासों का अन्तिम हेतु स्वतन्त्रता रहा। इसलिए उस उद्देश्य के पोषक महान् विचारकों, साहित्यिकारों, क्रान्तिकारियों और सेवकों की आदर्श जीवनियां उनके उज्ज्वल विचार और प्रेरक प्रवृत्तियों का साहित्य 'मंडल' ने प्रचुर-मात्रा में प्रकाशित किया और वह साहित्य आम जनता तक पहुंचे, इस हेतु प्रकाशनों का मूल्य यथासंभव बहुत कम, लागतभर रखने का प्रयास किया। यही कारण है कि उसके नाम में 'सस्ता' विशेषण जुड़ गया है। वास्तव में 'मंडल' 'बहुमूल्य साहित्य' प्रकाशित करता है, मुद्रित पुस्तक भले ही सस्ती हो। 'मंडल' ने इस तरह अपने देश की और अपने काल की प्रमुख मांग की पूर्ति की है। मैं मानता हूं कि इसी में उसके मिशन की, जीवन-कार्य की, सफलता रही है।

स्वतंत्रता मनुष्य-जाति की प्राथमिक आवश्यकता है। अतः उसका साहित्य भी प्राथमिक आवश्यकता हो जाती है। परंतु इतने से मनुष्य-जीवन पूर्ण तो नहीं हो जाता। मानव-जीवन आकाश से भी विशाल और महासागर से भी गहरा है। उसके रूप-रंग और छटाएं अनगिनत हैं। उसका समग्र दर्शन करने की मानव-जिज्ञासा कभी पूरी नहीं हो सकती। मानव के सभी प्रयास उस जिज्ञासा से प्रेरित हैं। साहित्य उन्हीं को शब्द-बद्ध करने की चेष्टा है।

'मंडल' ने सभी प्रकार का सुरुचिपूर्ण साहित्य प्रकाशित किया है—प्राचीन और अर्वाचीन, देशी और विदेशी, भारतीय और प्रादेशिक, विभिन्न भाषाओं का, विभिन्न विषयों का, फिर भी योजना-बद्ध रीति से बहुत कुछ करना शेष रह गया है। कहा जाता है कि किसी भी विदेशी भाषा में प्रकाशित महत्त्वपूर्ण ग्रंथ, उसके प्रकाशित हो जाने के बाद अति शीघ्र, अंग्रेजी भाषा में प्रकाशित हो जाता है। अर्थात् अंग्रेजी जाननेवालों के लिए यह बहुत ही महत्त्वपूर्ण सुविधा हो जाती है। उन्हें दूसरी भाषा का विशेष ज्ञान बिना प्राप्त किये ही उसकी ज्ञान-राशि सुलभ हो जाती है। यही बात यदि 'मंडल' हिन्दी जाननेवालों के लिए कर सके तो वह अद्भुत पराक्रम कहा जायगा। यह तो एक दिशा-दर्शनमात्र है। इस प्रकार कई प्रकाशन कार्य करने योग्य हैं।

'सस्ता' और 'साहित्य' शब्दों के किंचित विचार के अनन्तर 'मंडल' शब्द पर सोचना उचित होगा।

'मंडल' याने कौन ? संरक्षक, अध्यक्ष और कतिपय सदस्यगण ही—यह 'मंडल' सत्साहित्य का प्रणेता, प्रकाशक और प्रसारक है। प्रणेता तो विद्वान् लेखक हैं, प्रकाशक हैं मंडल के प्रबंधक और प्रसारक हैं वितरक, ग्रन्थ-विक्रेता। वास्तव में लेखक, प्रकाशक, वितरक और क्रेतावाचक वर्ग ही मंडल है। इनके सहयोगी संगठन का ही नाम 'मंडल' हो सकता है। इन चारों वर्गों को बिना परस्पर का शोषण किये स्वहितसाधन करना है। कहा जा सकता है कि आज लेखक-वर्ग विशेषरूप से शोषित है। वास्तव में इस उद्योग की तो वह नींव है। 'मंडल' में चारों वर्गों का समान प्रतिनिधित्व रहे, समान हितसाधन हो।

'मंडल' अपनी स्वर्ण जयन्ती मना रहा है। उसके सेवा-जीवन के पचास वर्ष पूर्ण हो रहे हैं। मनुष्य की आयु सौ वर्ष की मानी जाती है और उसका आधा भाग पूर्ण करने पर स्वर्ण जयन्ती मनाई जाती है। आयु की क्षणभंगुरता को देखते हुए यह एक बड़ी बात है; इसलिए उसे स्वर्ण से तौला गया है। परंतु क्या एक संस्था की भी वही पूर्ण आयु मानी जानी चाहिए जो एक व्यक्ति की मानी जाती है? संस्था की स्वाभाविक आयु मनुष्य से दस गुनी मानना अनुचित न होगा, अर्थात् संस्था की स्वर्ण जयंती जब उसने अपने जीवन के ५०० वर्ष पूर्ण किए हों, तभी मनाई जानी चाहिए। ५० वर्ष तो उसका शैशव ही मानना होगा। पूज्य विनोबाजी ने १०० वर्ष की आयु को १०० गुण दिये हैं। उनका विभाजन पहले ५० वर्षों को प्रतिवर्ष आधा गुण के हिसाब से २५ गुण आगे के २५ वर्षों को प्रतिवर्ष १ गुण के हिसाब से २५ गुण और शेष २५ वर्षों को प्रतिवर्ष २ गुण के हिसाब से ५० गुण। यही गणित संस्था की १००० वर्ष की पूर्ण आयु मानकर लगाया जाय तो 'मंडल' को २॥ गुण मिलेंगे। फिर भी लोकाचार का अनुसरण करते हुए मैं उसका अभिनंदन ही करता हूं और उसके पूर्ण आयु की और सफलता की कामना करता हूं। जिसने बचपन में ही इतना पराक्रम किया है, उसके विषय में आशा बंधती है कि आगे चलकर वह और अधिक प्रौढ़ प्रताप सिद्ध होगा। शुभास्ते पन्थानः सन्तु। □

आवाज़ का पहाड़

□

देवेन्द्र सत्यार्थी

"अठे विराजो, हे महाराज ।..."

यह लोकगीत अजमेर में सुना था पहली बार । आज-से अड़तालीस बरस पहले ।

तभी अजमेर में 'सस्ता साहित्य मंडल' द्वारा प्रकाशित 'त्यागभूमि' नियमित रूप से पढ़ने का सौभाग्य प्राप्त हुआ ।

'त्यागभूमि' के संपादक थे स्व० हरिभाऊ उपाध्याय और सहकारी सम्पादक क्षेमानन्द राहत । 'त्यागभूमि' का प्रकाशन बन्द हो गया । लेकिन उसकी छाप मेरे मन पर बराबर लगी रही ।

फिर एक बार 'सस्ता साहित्य मंडल' द्वारा प्रकाशित 'हम करें क्या' ने मेरा मार्ग दर्शन किया । टाल्सटाय की कृतियों में यह पहली पुस्तक थी, जो मेरी हमसफर बनी । यह बात सन् १९२८ की है ।

फिर अठारह बरस बाद 'सस्ता साहित्य मंडल' द्वारा प्रकाशित दो पुस्तकों ने मेरी लेखनी को बल दिया । डा० हजारीप्रसाद द्विवेदी की पुस्तक 'अशोक के फूल' और डा० वासुदेवशरण अग्रवाल की पुस्तक 'पृथ्वी पुत्र' । ये दोनों पुस्तकें सन् १९४८ के लगभग मेरे अध्ययन के अन्तर्गत आईं, जब मैं लाहौर को अलविदा कह कर दिल्ली आ गया था ।

उन्हीं दिनों मेरे मन में यह लालसा पैदा हुई कि मेरी पुस्तक 'धरती गाती है' 'सस्ता साहित्य मंडल' द्वारा प्रकाशित हो, लेकिन इसमें कुछ विलम्ब देखकर राजकमल प्रकाशन से बात तय करा ली गई ।

फिर मेरी दूसरी पुस्तक 'धीरे बहो गंगा' 'सस्ता साहित्य मंडल' द्वारा प्रकाशित होने की बात चली । इसकी भूमिका डा० वासुदेव शरण अग्रवाल ने लिखी थी । लेकिन 'मंडल' के मंत्री मार्तण्ड उपाध्याय के यह कहने पर कि मुझे 'लम्बे क्यू' में खड़े होकर 'बस' का इन्तजार करना होगा, मैंने इस पुस्तक के प्रकाशन की व्यवस्था राजकमल प्रकाशन से साथ तय करना उचित समझा ।

फिर तो मैंने कभी यह चेष्टा नहीं की कि मेरी कोई रचना 'सस्ता साहित्य मंडल' से प्रकाशित हो । रचना में गहराई हो और आवाज में उदात्त स्वर, यह बात मैंने 'मंडल' से सीखी । धीरे-धीरे 'मंडल' के साथ मेरा मानसिक संबंध और भी गहरा होता गया । आधे आंसू रचना के नाम, आधे अपने नाम ।

"खुदा गवाह है दिल से दुआ निकलती है ।"

यह बात कसम खाकर कह सकता हूं कि 'मंडल' की अनेक पुस्तकें मुझे समय-समय पर बिना दाम उपलब्ध होती रही हैं ।

"लो आ गयी सरस्वती ! प्रणाम !"

'मंडल' को मैं अपनी कार्यविधि का ही एक रूप मानता हूं ।

"शब्द कोश' 'मुर्दे का माल..." सलीका शर्त है । मेरे मित्र यशपाल जैन अनेक वर्षों से 'सस्ता साहित्य मंडल' से घर के आदमी की तरह जुड़े हुए हैं ।

आधी रचना इधर और आधी उधर । कसम ले लो, मेरी रचना पूरी होती नजर नहीं आती ।

'सस्ता साहित्य मंडल' की सीढ़ियां चढ़ते हुए हमेशा यह ख्याल रहता है कि आज कोई नई रचना उपलब्ध होगी ।

सौ बार तेरा दामन मेरे हाथों में आया ।
जब आंख खुली देखा अपना ही गरेबां था ।

पढ़े बगैर अपनी रचना में वजन पैदा हो तो कैसे ? सैर के वास्ते थोड़ी-सी जगह और सही । इधर मेरे मुंह से किसी पुस्तक की फरमाइश हुई, और उधर पूरी हुई । वही हंसी-मजाक, वही बोल-ठठोल, वही छेड़-छाड़ ।

'अलिफ लैला' में 'कोहे निदा' (आवाज का पहाड़) का जिक्र आता है । जब भी किसी के कानों में कोहे निदा

[शेष पृष्ठ २३२ पर]

'मंडल' की अर्ध-शताब्दी और हमारा कर्त्तव्य

□

मुरलीधर दिनोदिया

'सस्ता साहित्य मंडल' की स्थापना के कुछ समय बाद अजमेर से 'सस्ता साहित्य मंडल' के तत्वावधान में श्री हरिभाऊजी उपाध्याय के सम्पादकत्व में 'त्यागभूमि' मासिक पत्रिका का प्रकाशन शुरू हुआ था। अजमेर जैसे स्थान से उस काल में साहित्यिक पत्रिका का प्रकाशन चौंका देनेवाली-सी बात थी। सच कहूं तो हरिभाऊ नाम भी तब अजीब-सा लगा था। हिन्दी प्रदेशों में ऐसे नाम कहां होते हैं। और "त्यागभूमि" नाम भी पत्रिका का लीक से हट-कर ही था। हिन्दी की पत्रिकाओं के नाम 'सरस्वती', 'इन्दु', 'माधुरी', 'सुधा', 'चाँद', 'मर्यादा' इस कोटि के होते थे। राजस्थान तब राजपूताना कहलाता था। राजपूतों के शौर्य की प्रेरणा से 'वीर भूमि' नाम होना चाहिए था। यह सोचकर मन का समाधान किया कि सारे देश को त्यागमय बनने की जरूरत है। इसी अभिप्राय से पत्रिका का 'त्यागभूमि' नाम रखा गया होगा। नाम को छोड़कर काम की बात करें तो 'त्यागभूमि' कोरी साहित्यिक पात्रिका न थी। हिन्दी की अन्यान्य पत्रिकाओं से उसकी भाषा में, उसके उद्देश्य में, अभिप्राय और प्रेरणा में अन्तर था। एक ऐसा निरालापन कि शीघ्र ही वह पाठकों की प्यारी पत्रिका बन गई, पाठक उत्सुकतापूर्वक उसके अगले अंक की बाट जोहते थे। यों हिन्दी में पत्र-पत्रिकाओं की संख्या तब बहुत कम थी, पर जो थी, उनमें 'त्यागभूमि' ने अपना अन्यतम् स्थान बना लिया था, पर विदेशी शासन की कोप-दृष्टि के कारण उसे जल्दी ही बन्द करना पड़ा। पर उसकी याद हम लोगों को सालों तक रही। उसका अभाव हिन्दी-जगत् में बहुत सालों तक महसूस किया गया। वह तो मरुस्थल में एक फूल उगा था, जो अपनी महक अल्पकाल तक ही फैला सका। लेकिन वह महक मन में बस गई थी।

कालेज की पढ़ाई के लिए मैं दिल्ली आ कर रहा। कुछ समय पश्चात् 'मंडल' का कार्यालय दिल्ली की प्रमुख अनाज मण्डी (नया बाजार) के उत्तरी सिरे पर खुला। मेरे ठिकाने से यह केन्द्र निकट ही पड़ता था। अनाज की दुकानों के साथ पुस्तकों का धंधा ठीक भी था। मनुष्य के लिए मानसिक भोजन क्या कम जरूरी है। तब उस सिरे पर हिन्दी, उर्दू, अंग्रेजी के दैनिक पत्रों के कार्यालय थे। सभी पत्र राष्ट्रवादी थे। जो हो, यह नैकट्य मेरे पुस्तक-प्रेम को बढ़ाने वाला सिद्ध हुआ। मुझे पढ़ने का इतना शौक है कि मैं उसे रोग कहा करता हूं। यह बीमारी मुझे गांव में ही अक्षर-ज्ञान प्राप्त करते ही लग गई थी। घर में तथा चचेरे भाई के यहाँ जो भी कुछ छपा हुआ उपलब्ध था, सब चाट डाला। 'मण्डल' की पुस्तकें बहुत भाईं। स्वयं पढ़ता, औरों को पढ़वाता, भेंट देता। दूसरों को पढ़वाने की आदत अभी तक साथ चली आ रही है। 'मंडल' की पुस्तकें अंतरंग से ही सुन्दर नहीं होती थीं, उनका बहिरंग सादा और सुरुचिपूर्ण होता था। छपाई साफ एवं शुद्ध। सस्तापन भी उनकी एक विशेषता थी और यों भी तब हिन्दी में साहित्य था ही कितना।

विदेशी शासन ने 'मण्डल' के काम में सब तरह से बाधा डाली। पत्रिका से जमानत मांगी गई, अनेक पुस्तकें जब्त की गईं, कार्यालय एवं प्रेस पर तालाबन्दी की गई और उसके सहयोगी बार-बार जेलों में डाले गए। पर यह सब होते हुए भी 'मंडल' का काम यही नहीं कि बन्द नहीं हुआ, वरन बढ़ता गया। फिर स्वतन्त्रता मिलने पर तो काम निर्बाध रूप से जम कर चल निकला। लेकिन इधर जो कागज की कीमत में बेहद महंगाई आई और कागज दुष्प्राप्य हो गया था, इससे तो एक नया संकट ही आ खड़ा हुआ। लेकिन 'मंडल' है कि इन सब विघ्न-बाधाओं को पार करते हुए आगे ही आगे बढ़ा चला आ रहा है। एक प्रकाशन-संस्थान के लिए पचास वर्ष का जीवन काल अपने देश में कोई साधारण बात नहीं कही जा सकती। मोटी पूंजी भी नहीं, पहले तो सरकार की कोप दृष्टि और

स्वतन्त्र भारत की सरकार से भी कोई सहायता-सहयोग नहीं। अपने व्यवसाय में मुनाफा कमाने का उद्देश्य नहीं। साहित्य भी चटपटा नहीं कि आलू-छोलों की तरह ग्राहक टूट पड़ें। दूसरे प्रेसों में अपनी पुस्तकें छपवानी पड़ें। फिर यह शिकायत भी आम है कि हिन्दी भाषी लोग अपेक्षा से कम पुस्तक-प्रेमी हैं। यह सब एक तरफ और विविध विषयों की, छोटी-बड़ी १५०० पुस्तकों का प्रकाशन दूसरी तरफ। क्या यह चमत्कार नहीं है। और फिर पुस्तकें भी कैसी? राष्ट्र के उत्थान, जीवन के निर्माण की राह बतानेवाली। एक भी पुस्तक ऐसी नहीं, जिसे पिता-पुत्री एक साथ बैठ कर पढ़ें-सुनें तो उन्हें जरा भी संकोच अनुभव हो।

'मण्डल' की स्थापना में एक उद्देश्य यह भी था कि पुस्तकों पर मुनाफ़ा कमाने की भावना न रखकर उनकी कीमत यथासंभव कम रखी जाय, जिससे देश के साधारण पाठक भी उनसे लाभ उठा सकें। पर मात्र यही उद्देश्य नहीं था। वास्तव में साहित्य का सस्ता और महंगा क्या! यह भी क्या कोई नमक-तेल है। पर 'मंडल' का नाम तो वस्तुतः सत्साहित्य होना चाहिए था। पर अब तो 'सस्ता' ऐसा जबान पर चढ़ गया है कि उधर ध्यान ही नहीं जाता।

युग पुरुष महात्मा गांधी के आशीर्वाद, स्व० जमनालालजी बजाज, श्री घनश्यामदासजी बिड़ला आदि महानुभावों की प्रेरणा, अनेक विद्वानों-लेखकों के सहयोग, पाठकों के स्नेह-सहकार और फिर सबसे बढ़कर 'मण्डल' के कार्यकर्त्ताओं के साधनामय कृतित्व एवं कर्त्तव्यपरायणता के बल पर निरन्तर प्रगति-पथ पर बढ़ते हुए अपने जीवन के ५० वर्षों में 'मण्डल' जितना विकास कर पाया है, उससे सभी को संतोष होना चाहिए। साथ ही आगे के लिए भी सोचना है। युग की मांग, विकासशील स्वतंत्र राष्ट्र की आकांक्षाएं उसकी राष्ट्रभाषा एवं राजभाषा का उत्तरदायित्व तथा उससे अपेक्षाएं, साक्षरता का प्रसार और फिर विश्वस्तर पर हिन्दी की मान्यता की संभावना, इस दृष्टि से आगे के लिए विचार करना है। लाखों हिन्दी-भाषियों की दूसरे देशों में (चाहे वे छोटे ही हों) वहां के नागरिक के रूप में पीढ़ियों से विद्यमानता को जब देखते हैं तो 'मंडल' की महान् जिम्मेदारी की कुछ कल्पना होती है।

इस भावी दायित्व की कल्पना को साकार रूप किस प्रकार दिया जा सकता है, विचारणीय है। इस विषय में अनुभवी विज्ञपुरुषों का परामर्श बहुत मूल्यवान् होगा। इतना तो स्पष्ट है कि 'मंडल' के साधनों को सशक्त एवं विकसित किया जाना परमावश्यक है। पर्याप्त पूंजी बिना तो कुछ किया ही नहीं जा सकता। 'मंडल' का अपना छापाखाना भी होना चाहिए। 'मण्डल' की मासिक पत्रिका 'जीवन-साहित्य' निरन्तर ३६ वर्षों से निकल रही है और वह विदेशों में भी जाती है। यह कितने गौरव की बात है। पर इसे गांव-गांव तक पहुंचाने का प्रयत्न होना चाहिए। क्यों न इसके लिए भी एक सुविचारित योजना बनाई जाय। आज के जमाने में पत्र-पत्रिका भी अपने उद्देश्यों के प्रचार-प्रसार का एक सशक्त साधन है।

काम बहुत बड़ा है। इसमें केन्द्रीय तथा प्रदेश सरकारों से क्या कुछ सहयोग लिया जा सकता है, यह भी सोचने की बात है। फिर भी हम हिन्दी-प्रेमियों, पाठकों, 'मंडल' के स्नेहियों, उसके साहित्य से लाभान्वित होनेवाले नये-पुराने पाठकों को भी इस दिशा में अपना कर्त्तव्य-बोध होना चाहिए। इतना होने पर क्या नहीं हो सकता? तो फिर हमें आगे आना चाहिए। हम सबके आगे आए बिना 'मण्डल' की अर्धशती का यह पावन पर्व सार्थक कैसे हो सकेगा?

'मण्डल' ने पिछली अर्द्धशताब्दी में जो कार्य किया है, उसका मौखिक अभिनंदन ही पर्याप्त नहीं है, उसको सभी वर्गों का सक्रिय सहयोग भी मिलना आवश्यक है। 'मंडल' की पुस्तकें लाखों की संख्या में निकलें और खपें, यह तो अपेक्षित है ही, विविध विषयों की लोकोपयोगी पुस्तकें निकालने के लिए उसे आर्थिक साधन भी मिलने चाहिए।

इसके साथ ही यह भी जरूरी है कि कुछ योग्य और सेवा-भावी युवक, 'मंडल' को अपनी सेवाएं अर्पित करें! जिन्होंने 'मण्डल' का अबतक संचालन किया है, वे आखिर कबतक इतना भार उठाकर चल सकते हैं। कुछ नवयुवक ऐसे तैयार हों, जो 'मण्डल' की गौरवशाली परम्पराओं का निर्वाह करते हुए भविष्य के दायित्वों की सफलपूर्तिके लिए, उसकी जिम्मेदारी अपने ऊपर ले सकें। यदि तीन-चार ऐसे निष्ठावान और परिश्रमशील व्यक्ति मिल जायं तो कोई कारण नहीं कि 'मण्डल' की सेवाएं यथापूर्व न चलती रहें।

'मण्डल' के एक पुराने प्रशंसक और हितैषी के नाते मेरी यही कामना है कि वह अपनी स्वर्ण जयंती की भांति एक दिन अपनी 'शती' मनावे। □

मेरी प्रेरणा का स्रोत

□

जेठालाल जोशी

'सस्ता साहित्य मण्डल' से मेरा संबंध प्रारम्भ से है। यह मेरा सौभाग्य है कि अपने युवाकाल में पूज्य बापू के जीवन दर्शन में मेरी आस्था बंधी। मेरा प्रयत्न रहा कि मैं पूज्य बापू की राह पर यथाशक्ति चलने का विनम्र प्रयत्न करूं। विदेशी सरकार की शिक्षा का परित्याग किया। राष्ट्रीय शाला की पढ़ाई को अपनाया। स्वदेशी-व्रत को आत्मसात करने का दृढ़ संकल्प किया। परिणाम-स्वरूप राष्ट्रीय कार्यों तथा संस्थाओं के प्रति आस्था बढ़ती गई।

सन् १९२५ में 'सस्ता साहित्य मण्डल' की स्थापना हुई। तत्पश्चात 'मण्डल' की मुख-पत्रिका 'त्यागभूमि' का प्रकाशन शुरू हुआ। मुझे उस पत्रिका में कुछ लिखने का मौका मिला। इसके लिए मैं परम श्रद्धेय दा साहब (श्री हरिभाऊजी उपाध्याय) का हृदय से आभारी हूं। मेरे सामान्य लेख 'त्यागभूमि' में छपने लगे। मेरा उत्साह बढ़ता ही गया। मैं समीक्षार्थ प्राप्त पुस्तकों की समीक्षा भी करता था। यह समीक्षा पत्रिका के आवरण-पृष्ठ चौथे पर छपा करती थी।

इस प्रकार मैं 'सस्ता साहित्य मण्डल' का एक आत्मीयजन बनता गया। मैंने अहमदाबाद राष्ट्रभाषा प्रचार समिति को उसका सहयोगी सदस्य भी बना लिया। फलतः 'मण्डल' के प्रकाशन समिति के पुस्तकालय में आते रहे। साथ ही 'जीवन साहित्य' मासिक पत्रिका का मैं नियमित पाठक बना। मैं 'जीवन साहित्य' पत्रिका के कुछ लेखों को गुजरात प्रान्तीय राष्ट्रभाषा प्रचार समिति की पत्रिका 'राष्ट्रवाणी' में सम्पादक महोदय के सौजन्य से साभार प्रकाशित करता रहा।

'सस्ता साहित्य मण्डल' द्वारा प्रकाशित ग्रंथ राष्ट्रीय भावना के साकार प्रतीक हैं। ये पुस्तकें गांधी-जीवन, दर्शन, संत विनोबा भावे की जीवन-साधना तथा राष्ट्र के महान लोकनायकों के सद्कार्यों का प्रामाणिक इतिहास हैं। 'मण्डल' के प्रकाशन राष्ट्रभाषा हिन्दी का सच्चा स्वरूप हैं। ऐसी संस्थाओं का होना राष्ट्र के लिए, भारतीय साहित्य के लिए तथा राष्ट्रभाषा के लिए अत्यंत आवश्यक प्रेरणा-स्रोत हैं। 'मण्डल' की इन पचास वर्षों की साधना तथा तपश्चर्या राष्ट्र की बहुमूल्य निधि है।

मैं गुजराती भाषा की प्रकाशन-संस्था 'सस्तुं साहित्य वर्धक कार्यालय' का स्मरण दिलाना अत्यावश्यक समझता हूं।

पूज्य स्वामी श्री अखंडानंदजी महाराज ने एक पैसा फंड से इस संस्था का प्रारम्भ किया। आज इस संस्था द्वारा वेद, उपनिषद् सांख्य-योग आदि दर्शन-ग्रंथों का तथा रामायण, महाभारत; पुराण आदि धार्मिक ग्रंथों का और महान वैदिक ग्रन्थ सुश्रुत, चरक, माधव आदि पुरुष-रत्नों के ग्रंथों का प्रकाशन किया है और लाखों की संख्या में अत्यल्प मूल्य में गुजरात के चरणों में अर्पित किये हैं। ग्रंथ-प्रकाशन के अलावा 'अखंडआनंद' मासिक पत्रिका (पृष्ठ संख्या १६०) नियमित प्रकाशित होती रही है। संस्था की ओर से आयुर्वेद महाविद्यालय चलता है। संस्था द्वारा संचालित महाविद्यालय के मकानों के अलावा कार्यालय, सभागृह इत्यादि विशाल भवन भी निर्मित हुए हैं। यह सब है एक संन्यासी की साधना का सुपरिणाम। आज 'सस्तु साहित्य वर्धक कार्यालय' लाखों की निधि आवश्यक कार्यों में व्यय करने के लिए शक्ति-सम्पन्न है।

मैं यहां 'सस्ता साहित्य मण्डल' तथा 'सस्तुं साहित्य वर्धक कार्यालय' की तुलना करके 'मंडल' के कार्यों तथा उसकी सेवाओं को कम बताना नहीं चाहता, बल्कि इन संस्थाओं ने राष्ट्र की, जनता की तथा स्व-भाषा की कितनी महती सेवा की है, उस ओर पाठक-वृंद का ध्यान आकर्षित करना चाहता हूं।

भविष्य में 'मण्डल' समाज तथा राष्ट्र की ओर अधिक सघन सेवा करे, ऐसी मेरी कामना है।

जीवन-मूल्यों का साहित्य

□

सिद्धराज ढड्ढा

पचास वर्ष पहले, मौजूदा शताब्दी की 'बीसी' में, 'सस्ता साहित्य मण्डल' की स्थापना तथा उसके जीवन-विर्माणकारी उच्चकोटि के साहित्य, और 'त्यागभूमि' जैसे मासिक के प्रकाशन ने उस समय के कितने नौजवान-नवयुवतियों के जीवन को पलटने और बनाने का काम किया तथा कितनों के जीवन में प्रेरणा और उदात्त भावनाओं का संचार किया, इसकी कल्पना करना भी आज की बदली हुई परिस्थिति में मुश्किल है। वह समय भारतीय राष्ट्रीय जीवन के उत्कर्ष का स्वर्णिम युग था, ऐसा कहना अत्युक्ति नहीं होगी। गांधी के रूप में भारतीय राष्ट्रीय गगन के सबसे तेजस्वी देदीप्यमान नक्षत्र का उदय हो चुका था। गांधी दिन-प्रति-दिन सारे राष्ट्रीय जीवन में उदात्त गुणों और आदर्शों के, त्याग और बलिदान के, नैतिकता और अध्यात्म के, बन्धुत्व और सहयोगी भावना के बीज बो रहा था। ऐसे समय में 'सस्ता साहित्य मण्डल' की स्थापना ने कम-से-कम उत्तर भारत के विशाल हिन्दी-भाषी क्षेत्र में उन बीजों को पनपाने में खाद और पानी का काम किया। मुझे अपने निज के अनुभव से यह कहने में न संकोच है, न कोई अतिशयोक्ति करने का भान कि मेरे अपने निर्माण में 'मण्डल' द्वारा प्रकाशित साहित्य का काफी बड़ा योगदान था। टालस्टाय की 'हम करें क्या?' प्रिंस कापोटकिन की 'रोटी का सवाल', तमिल ऋषि तिरुवल्लुवर का 'तमिल वेद', गांधी की 'आत्मकथा', विनोबा के विचार', स्वेटमार्डन की जीवन-निर्माण संबंधी पुस्तकें आदि 'मंडल' के प्रकाशनों तथा 'त्यागभूमि' में हरिभाऊ उपाध्याय, क्षेमानन्द राहत, विजयसिंह पथिक आदि के ओजस्वी-लेखों ने जीवन को आदर्शों, भावनाओं और आकांक्षाओं से अनुप्राणित करने में बहुत बड़ी भूमिका अदा की। यह आज भी ज्यों-का-त्यों ताजा है और इन सबके प्रति हृदय को कृतज्ञता से भर देता है। लेखों द्वारा अपने विचारों की अभिव्यक्ति को प्रस्फुटित करने में जो अवसर मुझे मिले, उनमें 'त्यागभूमि' के तत्कालीन संपादक श्री हरिभाऊ उपाध्याय, क्षेमानन्द राहत आदि के द्वारा प्रोत्साहन भी शामिल है। इसमें कोई संदेह नहीं कि व्यक्तियों के और राष्ट्रीय जीवन को ऊंचा उठाने में उस समय 'सस्ता साहित्य मण्डल' के प्रकाशनों का महत्वपूर्ण योगदान रहा था।

हर पीढ़ी का नौजवान अपने युग के साहित्य से प्रभावित होता है। आज भी अच्छा, निर्माणकारी साहित्य प्रकाशित न होता हो, सो बात नहीं है। पर यह निःसंकोच कहा जा सकता है कि आज गन्दे, अश्लील, भोगप्रधान और विघटनकारी साहित्य की इतनी बाढ़ आ गई है कि उसमें सत्साहित्य दब रहा है। परिणाम हमारे सामने है। व्यक्तिगत जीवन के बारे में तो निश्चयपूर्वक कुछ कह सकना मुश्किल है, पर जहां तक सार्वजनिक जीवन का सवाल है, आज उसका स्तर बहुत ही नीचा हो गया है।

'सस्ता साहित्य मंडल' जैसी प्रकाशन-संस्था की स्वर्ण जयन्ती के अवसर पर हम उन दिनों की याद करते हैं जब विदेशी राज्य में भी वाणी-स्वातंत्र्य और प्रकाशन-स्वातंत्र्य ने राष्ट्रीय नवचेतना और जागरण में महत्वपूर्ण योगदान किया था। व्यक्तिगत जीवन और सामाजिक चेतना के निर्माण में सत्साहित्य और सद्विचारों का कितना बड़ा हाथ होता है, यह शंका का विषय नहीं है। और, यह संजीवनी धारा प्रवाहित होती रहे, इसके लिए देश की चेतना का प्रबुद्ध होना जरूरी है। इस धारा का कुंठित हो जाना नई पीढ़ी के और राष्ट्र के निर्माण के लिए घातक है।

'मंडल' जैसी प्रकाशन-संस्था का, जिसके काम के पीछे केवल व्यापार का नहीं, दूसरा उदात्त सामाजिक उद्देश्य है, राष्ट्रीय जीवन में अपना महत्त्व और स्थान है। आज विचार-प्रेरक और आदर्शोन्मुख साहित्य की और भी अधिक आवश्यकता है। मण्डल को राष्ट्र की सेवा करते हुए पचास वर्ष हो गये। इन वर्षों में, खास करके 'मंडल' के जीवन के प्रारम्भिक दशकों में उसके काम से स्वातंत्र्य-संग्राम और नागरिकों के जीवन में नैतिक मूल्यों और आदर्शों की प्रेरणा भरने में जो योगदान हुआ, वह अपने-आप में कृतार्थता का अनुभव कराने के लिए पर्याप्त है, पर भविष्य को ध्यान में रखते हुए, राष्ट्र-हितैषियों के सोचने का प्रश्न है कि 'मण्डल' जैसी संस्था को, जिसका अस्तित्व ही विचार और वाणी-स्वातन्त्र्य पर निर्भर है, बल कैसे पहुंचाया जाय! 'मण्डल' की दृष्टि से इसका महत्व और आवश्यकता है, यह तो गौण बात है, मुख्य बात यह है कि व्यक्तिगत और सामाजिक जीवन को पतन की ओर ले जानेवाले तथाकथित साहित्य के बजाय त्याग और बलिदान की, समाज के लिए, आदर्शों और नैतिक मूल्यों के लिए, अपने को समर्पित करने की भावना व्यक्ति में, भरने वाला प्रेरक सत्साहित्य कैसे पनपता और मिलता रहे? 'सस्ता साहित्य मण्डल' के अस्तित्व का भी यही औचित्य है! ●

राष्ट्र-तीर्थ

□

रामेश्वरदयाल दुबे

'सस्ता साहित्य मण्डल' का अपना एक उज्ज्वल इतिहास है। उसकी पत्रिका 'त्यागभूमि' ने आज से ५० वर्ष पहले अपनी गर्जना के द्वारा भारत के युवकों में नव-जीवन संचार किया था। अजमेर से प्रकाशित पत्र 'त्याग-भूमि' का नाम निस्संदेह स्वतन्त्रता-संग्राम के इतिहास में बड़े सम्मान के साथ लिखा जायगा। अजमेर-स्थित 'सस्ता साहित्य मण्डल' का वह छोटा-सा कार्यालय, जहां से 'त्यागभूमि' प्रकाशित होती थी, और देश के नवयुवकों में देश-भक्ति की भावना भरने वाली छोटी-छोटी सस्ती पुस्तकें, प्रकाशित होती थीं, एक राष्ट्र-तीर्थ था। इन पंक्तियों के लेखक का यह सौभाग्य था कि उसने इस तीर्थ के दर्शन किए थे।

आगे चलकर यही 'सस्ता साहित्य मंडल' दिल्ली आ गया और आदरणीय श्री हरिभाऊ उपाध्याय, श्री मार्तण्डजी तथा श्री यशपालजी के मार्गदर्शन में प्रशंसनीय उन्नति करता रहा। यों तो देश में प्रकाशन-संस्थाओं की कमी नहीं, किन्तु राष्ट्रीय भावना से ओत-प्रोत भारतीय संस्कृति की पोषक पुस्तकों का प्रकाशन जिन दो संस्थाओं ने विशेष रूप से किया है, उनके नाम हैं 'सस्ता साहित्य मंडल' (नई दिल्ली) और 'नव जीवन प्रकाशन मन्दिर' (अहमदा-बाद)।

'सस्ता साहित्य मण्डल' को देश के कर्णधारों का, गांधीजी का, नेहरूजी का, राजेन्द्रबाबू का आशीर्वाद प्राप्त था। 'मण्डल' एक ऐसी प्रकाशन संस्था बन गई, जिसके प्रति जनता का सहज आदर-भाव पैदा हो गया, क्योंकि अपने दृढ़ निश्चय के अनुसार उसने ऐसा ही उच्च, पवित्र और प्रेरणाप्रद साहित्य प्रकाशित किया, जो मानव को सच्ची मानवता की ओर ले जाने में पूर्ण रूप से सहायक होता है। यही कारण है कि सम्पूर्ण देश में और विदेशों में भी 'मंडल' के प्रकाशन आदर की दृष्टि से देखे जाते हैं।

पुस्तक-प्रकाशन के अलावा 'जीवन साहित्य' मासिक पत्रिका द्वारा 'मण्डल' प्रतिमास जो उच्च-स्तरीय साहित्य जनता को भेंट करता रहा है और कर रहा है, वह कम महत्व का नहीं है। 'जीवन साहित्य' उन संग्रहणीय पत्रि-काओं में से एक है, जिनके पूरे अंक सुरक्षित रखना प्रत्येक ग्राहक अपना सहज कर्तव्य मानता है। उसके सम्पादक का सम्पादन-कार्य प्रशंसनीय ही नहीं, अन्य पत्रिकाओं के लिए अनुकरणीय भी है।

इस संस्था के कर्णधारों ने अन्य प्रकाशनों के साथ-साथ अपनी सूझबूझ से विभिन्न पुस्तक-मालाएं प्रकाशित कीं। बच्चों के लिए, महिलाओं के लिए, नवयुवकों के लिए तथा जन साधारण के लिए बहुत ही उपयोगी पुस्तकें निकाली हैं।

ऐसी संस्था अपने जीवन के पचास वर्ष पूरे कर रही है, यह बड़े ही आनन्द और संतोष का विषय है। स्वर्ण जयन्ती के अवसर पर हम उसके कर्णधारों का अभिनन्दन करते हैं। साथ ही 'मण्डल' के प्रति यह मंगलकामना भी व्यक्त करते हैं कि वह अपनी पूर्व परम्परा के अनुसार सुरुचिपूर्ण, सुन्दर साहित्य को प्रकाशित कर जनता-जनार्दन की सदा सेवा करता रहे। □

[पृष्ठ २२७ का शेष]

की आवाज पड़ जाती, वह दीवाने की तरह उधर ही दौड़ने लगता।

खैर यह तो बड़ी पुरानी बात है। नई दिल्ली में मैं 'सस्ता साहित्य मंडल' को अपना 'कोहे निदा' मानता हूं।

'कोहे निदा' से यदि कोई पुस्तक हाथ न लगे तो 'जीवन साहित्य' का नया अंक तो मिल ही जाता है।

हर बार यशपालजी से वादा करता हूं कि आपके लिए अगली बार कोई रचना लाऊंगा। लेकिन "वह वादा ही क्या, जो वफा हो गया।"

आजादी आई और फिर उसकी सिल्वर जुबली मनाए भी कई बरस हो गये।

आज इतने साल बाद पहली बार 'जीवन साहित्य' के लिए चार शब्द लिख रहा हूं। 'मंडल' की आयु पचास साल की हो गई। पीछे भी ध्यान जाता है और आगे भी जाती है नजर। माहौल बदला, हालात बदले, मूल्य बदले।

अबतक 'मंडल' ने जितना मार्ग-दर्शन किया, उतना ही आगे भी करे, यह मेरी आन्तरिक आवाज है। यह कहे बिना नहीं रह सकता कि 'मंडल' जिस तरह अबतक 'आवाज का पहाड़' बना रहा, वैसे ही नए हालात में भी 'मंडल' बराबर आवाज का पहाड़ बना रहेगा और पहले की तरह लाखों पाठकों का मार्ग-दर्शन करता रहेगा। ●

जीवन-शोधन का प्रेरक

□

इन्द्रचन्द्र शास्त्री

सार्वजनिक आयोजनों एवं भाषणों के समान साहित्य भी मानसिक परिष्कार का महत्वपूर्ण माध्यम है। इतना ही नहीं, वह व्यक्ति के मन में स्वतंत्र चिंतन की प्रेरणा जागृत करता है, जो भाषणों द्वारा नहीं होती। उस समय व्यक्ति प्रायः किसी प्रवाह में बहने लगता है और पुस्तक पढ़ते समय उसकी बुद्धि कुंठित नहीं होती। किंतु साहित्य अपना यह कार्य तभी संपन्न कर सकता है, जब वह सर्वसाधारण की पहुंच में हो। उसकी भाषा, भाव तथा प्रस्तुत करने की शैली आदि सभी बातें ऐसी हों, जिससे सर्वसाधारण अपने मन में किसी प्रकार की कठिनाई का अनुभव न करे। महात्मा गांधी ने इसी तथ्य को लक्ष्य में रखकर एक ऐसी संस्था की स्थापना के लिए प्रेरणा दी, जो सर्वोपयोगी साहित्य प्रकाशित कर सके। 'सस्ता साहित्य मण्डल' उसी का मूर्त्तरूप है।

जब हम भारतीय संस्कृति को लेकर विचार करते हैं तो यह परम्परा अत्यन्त प्राचीन जान पड़ती है। वेदों में जिस भाषा का प्रयोग है वह सर्वसाधारण की पहुंच से परे नहीं थी। उसी ने जब दुरूह संस्कृत का रूप ले लिया और सर्वसाधारण उसके अध्ययन से वंचित हो गया, दूसरी ओर पुरोहित वर्ग विधि-विधान एवं बाह्य आचार पर अत्यधिक बल देने लगा तो भगवान बुद्ध, महावीर आदि महापुरुषों ने जहां पाली एवं प्राकृत के रूप में लोकभाषाएं अपनाईं, वहां चरित्र-शुद्धि पर बल दिया। प्राणिमात्र के प्रति सहानुभूति, सदाचार तथा बाह्य आकर्षणों से विरक्ति जिसके मुख्य तत्व थे। क्रमशः ये परम्पराएं भी समय से पिछड़ गईं और अपनी-अपनी भाषा, वेषभूषा श्रद्धा पर अत्यधिक बल देने लगीं। बुद्धिजीवी वर्ग शास्त्रार्थों में लग गया और जीवन-शुद्धि की प्रेरणा का स्थान अस्मिता तृप्ति ने ले लिया। उस समय संतों की परम्पराएं अस्तित्व में आईं, जहां भक्तिवाद का उदय हुआ और महापुरुषों ने लोकभाषा में अपने विचार प्रकट किये तथा सांप्रदायिकता से ऊपर उठकर वास्तविक प्रेरणा दी।

जब भारत पर अंग्रेजों का आधिपत्य हो गया तो राजनीतिक पराधीनता के समान मानसिक गुलामी ने भी घर कर लिया और अंग्रेजी की नकल, उनके समान वेश-भूषा तथा उनकी भाषा में बोलना उच्चता का मापदण्ड बन गया। ऐसे समय में महात्मा गांधी ने स्वदेशी आन्दोलन प्रारम्भ किया। फलस्वरूप एक ओर अंग्रेजों के लिए 'भारत छोड़ो' का नारा लगाया तो दूसरी ओर वेश-भूषा, भाषा, रहन-सहन आदि सभी बातों में स्वदेशी तत्वों को अपनाने पर बल दिया।

'सस्ता साहित्य मण्डल' महात्मा गांधी के इसी सांस्कृतिक अभियान का परिणाम है। इस संस्था द्वारा लगभग दो हजार पुस्तकें प्रकाशित हो चुकी हैं, जो वैचारिक दृष्टि से स्वस्थ एवं प्रेरणादायक हैं। साथ ही आर्थिक दृष्टि से सर्वसाधारण की पहुंच से परे नहीं हैं। 'मण्डल' ने अपने प्रारम्भ में लगभग ४०० पृष्ठ की पुस्तक एक रुपए में देने की नीति अपनाई थी। स्थायी ग्राहकों के लिए तो वह और भी सस्ती थी। वे उसे बारह आने में प्राप्त कर लेते थे।

साथ ही, उसने ऐसी पुस्तकें प्रकाशित कीं, जिनसे सर्वसाधारण के सामने भारतीय संस्कृति का वास्तविक रूप आ सके और वह सांप्रदायिक एवं जातीय भेद-भाव से ऊपर उठकर जीवन-शुद्धि एवं आध्यात्मिकता की वास्तविक प्रेरणा प्राप्त कर सके।

पर वर्तमान महंगाई के कारण 'मण्डल' के सामने भी आर्थिक कठिनाइयां आ रही हैं और वह अनुभव कर रहा है कि पुराने मूल्यों में पुस्तकों का वितरण नहीं हो सकता। भारतीय संस्कृति के प्रति सच्ची निष्ठा रखनेवाले शासक एवं धनिक दोनों वर्गों से हमारा अनुरोध है कि वे इस पुनीत संस्था की ओर ध्यान दें। वर्तमान युग में जब तरुण वर्ग की निष्ठाएं समाप्त हो रही हैं, कर्त्तव्य-भावना का स्थान अधिकार-लिप्सा ले रही है, इस प्रकार के साहित्य की और भी अधिक आवश्यकता है, जिससे परस्पर त्याग, राष्ट्र के प्रति निष्ठा तथा बाह्य आकांक्षाओं से ऊपर उठने की प्रेरणा मिल सके।

प्रसन्नता है कि 'मण्डल' अपनी पचासवीं वर्षगांठ मना रहा है। मेरी हार्दिक कामना है कि वह उत्तरोत्तर उन्नति करे और सर्वसाधारण का पथ-प्रदर्शक बना रहे। □

गांधी-विचार की प्रतिनिधि संस्था

□

जमनालाल जैन

'सस्ता साहित्य मण्डल' केवल एक प्रकाशन-प्रतिष्ठान नहीं है, अपितु एक बृहत् परिवार है। इस परिवार में छोटे-बड़े सबका समान आदर है, और सहज स्नेह है। सब एक-दूसरे को समझते हुए और अपने में समाते हुए चलते हैं। पाठक को लगता है कि वह जिस लेखक की भी रचना पढ़ता है, वह उसका अपना आत्मीय है, स्वजन है। ऐसी पारिवारिकता अन्यत्र दुर्लभ है।

हिन्दी में यों तो हजारों प्रकाशन-प्रतिष्ठान हैं और ऐसे भी हैं जिन्होंने बहुत कम समय में चौंकाने लायक विपुल प्रकाशन-कार्य किया है। एक-एक पुस्तक के पांच-पांच लाख प्रतियों के संस्करण तक प्रकाशित करने का साहस भी लोगों ने किया है। ये गर्व के साथ अपने आंकड़े प्रकट करते हैं। लेकिन यह सब होते हुए भी 'सस्ता साहित्य मण्डल' ने विगत ५० वर्षों में जो कुछ किया है, उसकी तुलना बाट-बटखरों से नहीं की जा सकती। जिन साहसी लोगों ने 'सस्ता साहित्य मण्डल' को जन्म दिया था, उनके सामने सबसे बड़ा ध्येय था दलित, कुंठित और पीड़ित मानवता को राष्ट्र-धर्म की ओर, अहिंसक वीरता की ओर एवं स्वतंत्रता-प्राप्ति के मार्ग की ओर बढ़ाना। इस ध्येय को लेकर चलने में उस समय अनेक खतरे थे, कठिनाइयां थीं और चुनौतियां भी थीं। एक तो जन्म लेना ही कठिन और जन्म लेने के बाद जीवित रहना तो और भी कठिन! फिर भी 'मण्डल' के संस्थापकों ने जीवन-मरण की वासना से ऊपर उठकर इस कार्य को अपने जीवन-मरण का प्रश्न बना लिया और साम्राज्यवादी अंग्रेज सल्तनत की कोई परवा न करके राष्ट्रीय चेतना को उद्बुद्ध करने में लगे रहे।

वह एक ऐसा शिथिल या अवसर्पण का युग था जब भारत का आम आदमी पढ़ने-लिखने के मामले में बेहद अरुचिवान् था। रुचि पैदा करने के साधन ही कहां थे—आर्थिक विपन्नता के कारण जीवन-संघर्ष पराकोटि पर था। चार पैसे की मज़दूरी तक मिलती नहीं थी। न विद्यालय थे। जो विद्यालय थे, वे या तो अंग्रेजों का गुलाम बनाने के कारखाने थे या फिर परम्परावादी धार्मिक शिक्षा के केन्द्र थे, जहां जीवन की समस्याओं से परे की यानी इस लोक से परे की सैद्धांतिक या दार्शनिक बातें सिखायी जाती थीं। ऐसे युग में राष्ट्रीय साहित्य को कौन पढ़ता, भले ही दो-दो आने में पुस्तकें मिलें।

'मण्डल' के कर्णधार अपने लक्ष्य के प्रति सदैव आस्थावान रहे। आस्था की डोर उन्होंने कभी छोड़ी नहीं। धीरे-धीरे ही क्यों न हो, लेकिन उन्हें विश्वास था कि जो कार्य करने जा रहे हैं, वह अपौरुषेय है। आज हम देखते हैं कि गांधी-विचार सम्पूर्ण विश्व में व्याप्त हो गया है। कोई पढ़ा-लिखा हो या न हो, निपट देहाती-ग्रामीण तक गांधी-विचार से अनुप्राणित हो गया है। एक प्रकार से गांधी-विचार जन-मानस के रग-रग में घुल-मिल गया है। यही विचार की अपौरुषेयता—निर्वैयक्तिकता—है। वस्तुतः विचार कभी मरता नहीं है। व्यक्ति आते-जाते हैं, समाप्त हो जाते हैं। हजारों-हजारों वर्षों में होनेवाले महान ऋषि-मुनि और महापुरुष आज हमारे बीच सदेह नहीं हैं, लेकिन उनके विचारों की शृंखला आज भी हमें जीवन देती है। हम नहीं कह सकते कि कौनसा विचार किसका है। विचार केवल विचार होता है और वह अमर होता है। गांधी-विचार को अपौरुषेय बनाने में 'सस्ता साहित्य मण्डल' का योगदान ऋषि-कल्प ही माना जायगा।

गांधी-विचार की व्याप्ति को देखते हैं तो आश्चर्य होता है। 'मण्डल' ने जो कुछ साहित्य प्रकाशित किया है, वह सब गांधी-विचार की फलश्रुति है। साहित्य का स्वर एक है और वह है राष्ट्रीय चेतना। असल में 'मण्डल' ने जो पथ अपने लिए चुना था, उस पर चलने का साहस सामान्यतः कोई कर नहीं सकता था। पचासों लेखक तैयार करना और विश्व के ऐसे साहित्यकारों की कृतियों का

प्रकाशन करना, जो राष्ट्रीय-चेतना में सहायक हों, बड़े साहस की बात है। गांधीजी शास्त्रीय परिभाषा के अनुसार साहित्यकार या कवि नहीं थे, न उन्होंने किसी पारम्परिक धर्म-विचार का ही सर्वात्मभाव से प्रतिनिधित्व किया, किसी रचनाकार-विशेष की कृतियों के स्वाध्याय पर जोर दिया और न किसी विशिष्ट ग्रंथ का भारी-भरकम भाष्य ही लिखा। सामान्यतः वे राजनीति के व्यक्ति थे। लेकिन राजनीति में धर्म की प्रतिष्ठापना करना, उनका मूल लक्ष्य था। इस नाते उन्होंने जो कुछ कहा या लिखा, वह मानव-जीवन के लिए उत्प्रेरक बन गया और प्रत्येक व्यक्ति को ऐसा लगने लगा कि गांधीजी की बातों में उसकी अपनी समस्याओं का समाधान है। जीवन का कोई अंग ऐसा नहीं था, जिसे गांधीजी ने स्पर्श न किया हो। उनके सारे रचनात्मककार्य जीवन के चतुर्दिक रहे हैं और सदा रहने वाले हैं।

यों तो 'सस्ता साहित्य मण्डल' का सारा साहित्य बड़ा सीधासादा, सौम्य कोटि का है। काव्य की कमनीयता, वाणी-विलास, शास्त्र-विनोद अथवा शब्द-वैभव जैसी चीजें वहां नहीं मिलतीं, लेकिन यह अवश्य अहसास होता है कि वह साहित्य जीवन को संवारने और निखारने की अद्भुत क्षमता रखता है। कोई पुस्तक उठाई और पढ़कर एक ओर फेंक दी, ऐसा व्यवहार मण्डल की कृतियों के विषय में करना कठिन है। एक अजीब-सा प्यार और अपनापन 'मण्डल' की रचनाओं के प्रति मन में उमड़ने लगता है। हम गांधी को पढ़ें या जवाहरलालजी को, टालस्टाय को पढ़ें या विनोबा को, राजाजी को पढ़ें या काकासाहब को, जमनालालजी को पढ़ें या घनश्यामदासजी को; ऐसा लगता है कि मरुस्थल में जल का स्रोत मिल गया है। अन्य प्रकाशन-प्रतिष्ठानों में यह बात दुर्लभ है कि पाठक लेखक के साथ एक रूप हो जाय।

गांधी-विचार का प्रसार करनेवाले और भी प्रतिष्ठान भारत में हैं। उनकी अपनी विशेषताएँ हैं। वे अपनी जगह महत्त्वपूर्ण हैं। लेकिन विविध विधाओं से गांधी-विचार को अभिव्यक्ति प्रदान करने में 'सस्ता साहित्य मण्डल' सबसे अधिक सरस रहा है। गरिष्ठता दूर करके पचनशील प्रक्रिया अपनाकर आम पाठक की ज्ञान की भूख को तृप्ति देने में 'मण्डल' की तुलना नहीं की जा सकती।

महामना मालवीयजी ने हिन्दू विश्वविद्यालय की स्थापना के लिए जीवन भर जैसी तपस्या की, उससे कम कोटि की तपस्या 'मण्डल' की नहीं है। लाखों-लाख, बल्कि करोड़ों लोग 'मण्डल' का साहित्य पढ़कर प्रबुद्ध बने हैं, जीवन में आगे बढ़े हैं और उनमें राष्ट्रीय भावना का उन्मेष हुआ है। इसे हम एक ऐसा विश्व-विद्यापीठ कह सकते हैं, जिसने गांधी-विचार की अनेक शाखाओं को विश्व में फैलाया है। विगत पचास वर्षों के अल्पकाल में 'मण्डल' चुपचाप, एक छोटे-से कार्यालय में जो कुछ कर सका है, वह व्यावसायिक दृष्टि से भले ही असफल रहा हो, लेकिन राष्ट्र-निर्माण की दृष्टि से बड़ा कीमती रहा है।

गांधी-विचार तो हम अपनी सुविधा के लिए कहते हैं। यों तो गांधीजी ने भी कभी यह नहीं कहा कि अमुक विचार उनका है। अगर कहना ही हो तो उनके विचार को सर्वोदय-विचार कहना ज्यादा संगत है।

सर्वोदय-विचार को विनोबाजी ने वैज्ञानिक व्याख्या देकर उसे शाश्वत चिंतन का रूप दे दिया है। अब 'सस्ता साहित्य मण्डल' को चाहिए कि वर्तमान पीढ़ी के तरुणों को ध्यान में रखकर ऐसे शोध-प्रबंधों का प्रकाशन करे, जिनसे ज्ञात हो सके कि इस विचार की शक्ति और सामर्थ्य कितनी है। यह विश्वविद्यालय के स्तर का और बड़े धीरज का काम है। गांधी-मनीषा का विश्वव्यापी मूल्यांकन अनेक दृष्टियों से आवश्यक हो गया है। यह आज इसलिए और भी आवश्यक है कि हमारी युवा पीढ़ी गांधीजी के नाम तक को भूल रही है। अव्यक्त रूप में गांधी-विचार प्रत्येक के मानस में काम कर रहा है, लेकिन बौद्धिक एवं क्रियात्मक रूप में उसकी अभिव्यक्ति नितांत जरूरी है।

एक बात यह भी महसूस हो रही है कि हमारी वर्तमान शिक्षा-प्रणाली में ज्ञान और कर्म का कोई सामंजस्य नहीं है। युवा-वर्ग में भटकाव बढ़ गया है और वह मार्ग-च्युत हो रहा है। जिस गांधी-विचार ने भारत को गुलामी से मुक्त होने में महान् क्रांतिकारी कार्य किया और जिसने जड़ परम्पराओं को काटा, उसके प्रति आज का विद्यार्थी-वर्ग घोर अंधकार में है। जब पढ़ने की शक्ति बढ़ी है, तब यह और भी दुःखद है कि हमारे विद्यार्थी राष्ट्रपिता की जीवनी तक से परिचित नहीं हैं। आज के विश्वविद्यालयों से यह काम शायद संभव नहीं। इसीलिए 'सस्ता साहित्य मण्डल' को इस दिशा में पहल करनी चाहिए। जानता हूं, यह उत्तरदायित्व महान् है, लेकिन जब एक छोटा-सा बीज बढ़कर राष्ट्रव्यापी रूप धारण कर सकता है तो वर्तमान युग के अनुरूप यह उत्तरदायित्व भी अपना मधुर फल अवश्य देगा।

यहां पर श्री मार्तण्डजी उपाध्याय एवं श्री यशपालजी की सेवाओं का अभिनन्दन करना भी आवश्यक है, जिन्होंने अनवरत रूप से 'मण्डल' के उन्नयन में अपने को जोते रखा। सेवा सम्मान की भूखी नहीं होती, लेकिन उसका समुचित सम्मान करने से कार्य की गरिमा बढ़ती ही है। इन दोनों पहियों के बल पर ही 'मण्डल' का रथ चलता रहा है। □

'हितेन सह-साहित्य'

□

महावीर प्रसाद हलवाई

कीरति भणित भूति भलि सोई।
सुरसरि सम सबकर हित होई॥

१९३८ से १९७६ का ३८ वर्ष का अन्तराल बहुत होता है। उस जमाने की स्मृतियां उभर आती हैं। बात साधारण-सी इतनी ही है कि विद्यालय में अध्ययन की प्रवृत्ति शिक्षकों ने मस्तिष्क में ठोक-ठोक कर भरी, यहां तक कि पढ़ने के लिए सबसे उपादेय सिद्धांत जॉन रस्किन का 'भूखे रहो और किताबें खरीदो' अच्छी तरह जमा दिया।

उस जमाने में चालीस रुपये के वेतन में स्वयं के खर्चे का बोझ, घर का बोझ तो था ही, दो रुपये प्रतिमाह पुस्तकें पढ़ने के लिए निकालें, यह भी आवश्यक था। यदा-कदा आर्यसमाज के उत्सव यहां होते थे, जिन पर धार्मिक साहित्य विक्रय किया जाता था, कुछ गीता प्रेस गोरखपुर द्वारा प्रचलित साहित्य भी सुलभ मूल्यों में प्राप्य था। लेकिन यह सब पढ़ने के साथ लगता था कि केवल भूत से ही प्रेरणा नहीं मिल सकती है, वर्तमान भी उतना ही अपेक्षित है।

स्मरण है, एक दिन खादी भंडार की दूकान पर गया और मेरे सीमित अध्ययन के बजट में धीरे-धीरे प्रोफेसर हेरॉल्ड लास्की, टाल्स्टाय, गांधी, प्रिन्स क्रोपाटकिन, फ्रांस के विक्टर ह्यूगो, विनोबा भावे के साहित्य के साथ-साथ संस्कृत के वृहद् वाङ्मय के संक्षिप्त संस्करण इत्यादि सभी कुछ पढ़ने को मिले। जब उस अध्ययन की भूख में खलील जिब्रान, रूमी साहित्य और अन्य उपादेय साहित्य तक पहुंच सका तो मुझे लगा कि वस्तुतः 'सस्ता साहित्य मण्डल' के प्रकाशन मानव-मात्र के हित के लिए पर्यायवाची बन गये हैं। 'हितेन सह-साहित्य' वाली परिभाषा 'मंडल' के प्रकाशनों में सदैव साकार रही है और ऐसे समय जबकि हम भारतीयों को स्वतन्त्र चेतना एवं जागरण के परिप्रेक्ष्य में अपनी ही भाषा में साहित्य चाहिए था, यह और कल्याणकारी योजना थी। प्रवाह निरन्तर चलता रहा। 'रुपये की कहानी', 'ध्रुवोपाख्यान', 'बिखरे विचारों की भरोटी' से लेकर प्रेरक राजनीति की सभी अच्छी-अच्छी रचनाओं—पं० नेहरू, डा० राजेन्द्रप्रसाद, काका कालेलकर जैसे उद्भट विद्वानो की कृतियों—का रसास्वादन लेता रहा।

स्वातन्त्र्योत्तर काल में लगा, जैसे पाठक इन विचारों से या तो विराम लेना चाहता है अथवा भटक गया है या फिर इनके प्रति कुछ अन्यमनस्क है। एक साधारण सी जिज्ञासा मन में होती है और प्रश्न भी उठता है कि पाठकों के मानस-क्षितिज पर ऐसा धुंधलका, अरुचि शायद किसी उचित विक्रेता के अभाव में तो नहीं पनपे हैं? शाश्वत् मूल्यों के बारे में युग-परिवर्तन कैसे हो सकता है और फिर कितने कम मूल्य में इतना प्रेरक साहित्य मिले, तब यह बात और भी समझ नहीं आती है। 'मण्डल' के वर्तमान मंत्री श्री यशपालजी जैन ने एक बार मुझे बताया था कि किसी प्रबुद्ध पाठक ने उनको 'सस्ता साहित्य मंडल' की पुस्तकों का मूल्य कुछ अधिक बताया था और संभवतः यह चर्चा 'कल्याण' के प्राण स्व० हनुमानप्रसादजी पोद्दार तक पहुंची थी। तदन्तर सभी विधाओं के मूल्यों की जानकारी करने के बाद एक इस प्रकार की धारणा प्रबुद्ध पाठकों की हो गई है कि 'मंडल' के मूल्य वास्तव में सस्ते हैं, लेकिन फिर भी आज के पाठक की पढ़ने की कम रुचि से मेरी परिकल्पना में एक बोधकथा आती है।

"बहुत सुरम्य समुद्र तट है। उसकी उत्ताल तरंगें प्रकृति, चेतन एवं जड़ सभी परमाणुओं को आन्दोलित, उद्वेलित एवं आप्लावित कर रही हैं। अपनी इस निरन्तर प्रक्रिया में वे इतनी तल्लीन हैं कि उन्हें अपने से इतर अन्य का भान नहीं है, उसकी गति चालू है। समय के अनुसार ज्वार-भाटे का क्रम कम और अधिक हो जाता है। आकाश में सर्वत्र चांदनी बिखरी हुई है। समुद्र-तट पर कुछ नग्न युगल एक-दूसरे को दिखाई न पड़ सकें, संभवतः इतनी-सी ही कुछ दूरी पर अलग-अलग लेटे हुए हैं।

अपने विलास के चरमोत्कर्ष पर हैं। उनका आनन्द उस समय असीम है। उन्हें इस बात की परवाह नहीं कि वे जिस स्थिति में लेटे हुए हैं, उसे उपेक्षित चन्द्रमा सहन कर रहा है। मेरी कल्पना ने फिर झकझोरा, क्या गरीब चांद यह नहीं सोचता होगा कि मैं मानव से भी उपेक्षित हूं? यह भी हो सकता है कि चांद की उस यथार्थ को देखने की विवश सहनशीलता हो अथवा औदार्य। पुनः प्रश्न उठता है कि इसका निर्णय कौन करे? मानव कभी-कभी ईर्ष्यालु भी हो उठता है, प्रकृति मौन अधिक पसन्द करती है, मानवेतर प्राणियों की चेतना अवरुद्ध है, अतः न्याय के लिए कौन से न्यायाधीश को खोजें?

नग्न यथार्थ, विलासिता के प्रति आकर्षण या उपेक्षा चांद कैसे संजोये? किसी एक को या सभी को, और समाधान के लिए कुछ भी मान लिया जाय तो फिर चांदनी की उदारता का प्रतिदान क्या है? यदि संतोष के लिए उसे समयधर्मी मान लें तो वह समय कब आयेगा और उस समय की अवधि किसके द्वारा निर्धारित हो?

मानसिक चेतना ने यहीं विराम नहीं लिया, मजबूर किया कि हम यह भी सोचें कि राष्ट्रीय साहित्य के अध्ययन द्वारा चिन्तन जगानेवाले ये सर्वोदयी ज्ञान-मण्डल राष्ट्रीय साहित्य के माध्यम से विकासशील एवं सृजनशील राष्ट्रों को विकसित राष्ट्रों के सामने किस धरातल पर बिठाने की कामना करते हैं, इसका समाधान भी इन्हें ही खोजना है। ऐसे विक्रेता की खोज हो, जिसकी अभिलाषा हो कि 'मेरी परिधि में कोई मानव राष्ट्रव्यापी सर्वोदयी चेतना से विहीन न रहे'। साधन प्रचुर हैं, आवश्यक है उनका दोहन होना। मण्डल के ध्येय हों—व्याप्ति, विस्तार, चिदाकाश।

चेतना फिर चोट करती है: क्या किसी ह्रासोन्मुख प्रवृत्ति को हम उसकी नियति मानकर विराम ले लें? नहीं, श्री यशपालजी ने इस संबंध में मुझे एक बड़ी ही सुन्दर चर्चा, जो उनकी आचार्य कृपालानीजी के साथ हुई थी, बताई:

> एक बार मैंने उनसे पूछा था कि क्या खादी भविष्य में जीवित रहेगी?
>
> उन्होंने उत्तर दिया—"नहीं, वह एक-न-एक दिन मरेगी, पर मरनेवाले तो एक-न-एक दिन हम सभी हैं, फिर भी जबतक मरते नहीं तबतक हमें जीना ही है।"

आचार्य कृपालानी की बात जन-जन तक पहुंचे, उसके लिए ऐसे सभी चिन्तकों की, जो तत्व बटोरनेवाले हों, आवश्यकता है। साधनों का दोहन करना है और 'मंडल' को आगे बढ़ाना है। किसी भी मृण्मान प्रवृत्ति की अश्विनीकुमारों की अभिलाषा की संज्ञा देनी है, जो चिर बाल्य संजोये हुए एक शाश्वत चिन्तनधारा का प्रतिनिधित्व करती है।

'मण्डल' अवश्य गतिमान बनेगा। 'मण्डल' की सेवाओं का सूत्र हो "मा फलेषु कदाचन, चरैवेति, ज्ञानाधार की चिदानन्द—चिर कल्याण भावना।" निश्चित ही गति त्वरित होगी, काल कुछ भ्रांतियों से अवरुद्ध हो गया था, वह अजस्र बनकर ज्ञान गंगा में प्रवाहित होगा। शाश्वत विधान हमें 'मण्डल' सहित इस ज्ञान-गंगा में निरन्तर प्रवाहित होते रहने में सफलता दे। □

कोई भी चीज बढ़ाकर न बतावें। जब हम अपनी गलती बढ़ाकर और दूसरों की कम करके कहेंगे, तब यह माना जायगा कि हम आत्मशुद्धि के नियम का पालन करते हैं।

—गांधीजी

जनजन की संस्था

□

भागवत साबू

'सस्ता साहित्य मण्डल' अपने संघर्षपूर्ण जीवन के पचास वर्ष पूरे कर रहा है। किसी भी जीवंत संस्था के लिए संघर्ष अनिवार्य शर्त है, किन्तु उस संस्था के लिए जो राष्ट्रीय चेतना को जाग्रत करने के लिए संकल्प के साथ आगे बढ़ने का दृढ़तापूर्वक निश्चय कर पचास वर्ष पूरे कर चुकी हो, इस अवसर पर संस्था ही नहीं, किन्तु उससे सभी सम्बन्धित लोगों के लिए गर्व करना स्वाभाविक है, क्योंकि सतत् परिश्रम और निष्ठापूर्वक काम करने की भावना और सृजनशीलता के अटूट सामंजस्य के बिना यह सम्भव नहीं है।

'मंडल' ने अपने साहित्य के द्वारा राष्ट्रभाषा हिन्दी की तो सेवा की ही है, किन्तु हिन्दी भाषी पाठकों के लिए अलभ्य साहित्य भी उपलब्ध किया है, जो इतिहास में अपना स्थायी स्थान बना चुका है।

'मंडल ने जहां गहन-गंभीर पुस्तकों का प्रकाशन किया है, वहीं सरल और सुबोध भाषा में नन्हें-मुन्नों से लेकर ग्रामीण जनता के लिए भी उपयोगी साहित्य निकालने और जन-जन तक उसे पहुंचाने में कठोर परिश्रम करने में कमी नहीं की है। यही कारण है कि सभी प्रकार के लोगों में 'मंडल' के प्रति श्रद्धा और विश्वास है।

'मंडल' की सबसे बड़ी विशेषता यह रही है कि उसने अपनी दृष्टि बहुत ही व्यापक रखी है। भारतीय जीवन को शुद्ध और प्रबुद्ध बनाने के लिए जो भी आवश्यक है, वह साहित्य उसने दिया है। भारत के प्रमुख राजनेताओं की पुस्तकों द्वारा जहां राष्ट्रीय चेतना के उदय—विकास में सहायता पहुंचाई है, वहां चिन्तकों और विद्वानों के साहित्य के द्वारा विचारों के प्रवाह को नई दिशा दी है। इतना ही नहीं, उसने भारत की सीमा के बाहर के उन विशिष्ट तत्ववेत्ताओं की कृतियों का लाभ भी अपने देश के पाठकों को दिया है, जिन्होंने अपनी लेखनी से विश्व की भावनात्मक एकता को सम्पुष्ट किया है।

मेरा लोक-जीवन के साथ निकट का सम्पर्क रहा है, और है। देखता हूं, 'मंडल' के साहित्य ने उस पर अपनी छाप डाली है। चाहे शहरी लोक जीवन हो या देहाती, 'मंडल' की पुस्तकों से प्रभावित हुए बिना नहीं रह सका।

मैं स्वयं 'मंडल' का साहित्य अपने प्रारंभिक जीवन से ही पढ़ता रहा हूं और मुझे तनिक भी शंका नहीं है कि मेरे जीवन पर इस साहित्य का प्रभाव हमेशा रहा है। विचारों को परिपक्व बनाने में इस साहित्य ने हमेशा मेरा साथ दिया है। मेरी मान्यता है कि मेरे जैसे हजारों लोगों के जीवन में 'मंडल' के साहित्य का प्रभाव होगा।

मेरी कामना है कि यह संस्था वैचारिक शुद्धि की अग्रणी संस्था के रूप में जिस प्रकार यश लाभ कर रही है, आगे भी सदैव वैसे ही करती रहे। □

'मंडल' की ठोस देन

□

दत्तोबा दास्ताने

देखते-देखते 'सस्ता साहित्य मण्डल' अर्धशताब्दी तक आ पहुंचा। आनन्द के साथ आश्चर्य भी हुआ। काल कितनी गति से चला जा रहा है।

सन् १९३२ में धुलिया जेल में विनोबाजी ने गीता पर प्रवचन दिये थे। श्री सानेगुरुजी की कृपा और लघु लेखन-कला के कारण वे कागज पर उतरे। मराठी में प्रकाशित होने में भी काफी समय गया, लेकिन 'सस्ता साहित्य मण्डल' में विनोबा और जमनालाल बजाज के घनिष्ठ मित्र तथा साथी थे, उनका ध्यान विनोबाजी की इस अनुपम मराठी कृति पर गया। श्री हरिभाऊ उपाध्याय, मार्तण्डजी, यशपाल जैन, इनका परिचय विनोबाजी के हिन्दी संस्करण के प्रकाशन के माध्यम से दृढ़-से-दृढ़तर होता गया। श्री हरिभाऊजी ने बड़े भक्तिभाव से मराठी 'गीता-प्रवचन' का हिन्दी में अनुवाद किया। विनोबाजी बारीकी से उस अनुवाद को देख गये। यह अनुवाद केवल मराठी से हिन्दी में रूपांतर मात्र नहीं है। अनुवादक मूल ग्रंथ से मानों एकरूप हो गया है, ऐसा लगता है।

यह उस समय की बात है जब विनोबाजी द्वारा स्थापित 'ग्राम सेवा मण्डल' का अपना स्वतन्त्र प्रकाशन-विभाग शुरू नहीं हुआ था। इसलिए 'ग्राम-सेवा मण्डल' विनोबाजी की कुछ मराठी रचनाएं अन्य प्रेसों के द्वारा प्रकाशित करता था। 'सर्व सेवा संघ प्रकाशन' का भी उस समय जन्म नहीं हुआ था। इसलिए विनोबाजी की मराठी किताबों का अनुवाद और प्रकाशन का कार्य 'सस्ता साहित्य मण्डल' ने बड़े आदर, प्रेम और भक्तिभाव से अपना लिया। गीता प्रवचनों के कारण विनोबाजी की अपनी एक विशेष भाषा-शैली की ओर हमारे 'सस्ता साहित्य मण्डल' के मित्र आकृष्ट हुए।

विनोबाजी की भूदान-पदयात्रा के पूर्व का विनोबाजी का साहित्य मुख्यतया आध्यात्मिक और रचनात्मक कार्य से सम्बन्धित था। 'ग्रामसेवा मण्डल' द्वारा विनोबाजी की कुछ पुस्तकों का मराठी में प्रकाशन होते ही 'सस्ता साहित्य मण्डल' ने उनके हिन्दी में विशेष सम्पादित करके 'विनोबा के विचार' शीर्षक से तीन खंड प्रकाशित करके विनोबाजी के विचारों को हिन्दी जगत् के सामने प्रस्तुत किया, यह 'सस्ता साहित्य मण्डल' की विशेष सेवा हुई। नयी तालीम के विनोबाजी के विचार 'जीवन और शिक्षण' नामक ग्रंथ द्वारा 'मण्डल' ने हिन्दी में प्रकाशित किये।

गांधी-साहित्य के प्रकाशन के लिए अहमदाबाद के 'नवजीवन संघ' की स्थापना गांधीजी के समय में हुई थी और आज भी उस संघ द्वारा गांधी-साहित्य का प्रकाशन होता है, फिर भी गांधीजी के लेखों, भाषणों, और पत्रों में से मार्मिक संपादन द्वारा 'सस्ता साहित्य मण्डल' ने गांधी साहित्य का परिचय बालक-बालिकाओं, विद्यार्थियों और चिंतनशील पाठकवर्ग के लिए विपुल मात्रा में कर दिया है, यह भी 'मण्डल' के संपादकों की एक विशेषता है।

गांधीजी के निर्वाण के बाद विनोबाजी ने सर्वोदय-विचार के प्रचारार्थ सारे भारत में भ्रमण किया और बाद में भूदान-पदयात्रा द्वारा 'सबै भूमि गोपाल की' का एक नया नारा बुलंद किया। उसका भी परिचय 'सस्ता साहित्य मण्डल' ने 'सर्वोदय संदेश', 'सर्वोदय विचार', 'पावन प्रसंग', 'भूदान यज्ञ' इत्यादि प्रकाशनों के द्वारा हिन्दी जगत् को दिया।

१९६९ के अंत में विनोबाजी ने सूक्ष्म अभिध्यान में प्रवेश किया और परमधाम पवनार के ब्रह्मविद्या मंदिर में उन्होंने क्षेत्र-संन्यास लिया। इस अवधि में 'विष्णु-सहस्र-नाम' ग्रंथ का विनोबाजी का गहरा चिंतन हुआ। श्रीमती जानकीदेवी बजाज परंधाम पवनार में हर रोज विष्णुसहस्र-नाम के आश्रम के सामूहिक पाठ में नियमित रूप से शामिल हो जाती थीं। श्री जानकी देवी ने श्रद्धाभक्तिपूर्वक हठ किया कि वे रोज अपने हस्ताक्षर से उनके मनन के लिये

[शेष पृष्ठ २४३ पर]

शुद्ध और दूरदृष्टि

□

गो०प० नेने

'सस्ता साहित्य मंडल' की स्थापना के पचास वर्ष पूरे हुए। यह घटना अपने आपमें सन्तोषदायी है। पचास वर्ष की अवधि बहुत लम्बी नहीं, फिर भी 'मंडल' ने अर्धशताब्दी में साहित्य-संबंधी जो महान सत्कार्य किया है, वह अतुलनीय है। ऐसे अवसर पर कार्य-सम्बन्धी मूल्यांकन करना एक स्वाभाविक बात है। इस उद्देश्य से 'जीवन साहित्य' का विशेषांक प्रकाशित किया जा रहा है। इसका बड़ा औचित्य है। 'मंडल' के कार्य का लेखा-जोखा, हितचिंतकों की प्रतिक्रियाएं और विचार लोगों के सामने आवें तो 'मंडल' को अन्तर्मुख होकर भविष्यकालीन कार्य-योजना पर विचार करना सरल और सुखदायी होगा।

'सस्ता साहित्य मंडल' की कल्पना सुंदर एवं उत्कृष्ट है। विद्यालय, महाविद्यालय, विश्वविद्यालय, शिक्षण-संस्थाएँ, शिक्षण का काम करती हैं, लेकिन इनकी परिधि से बाहर आकर मनुष्य विस्तृत संसार में प्रवेश करता है तो उसे ज्ञान-साधना के लिए अवकाश नहीं मिलता। ऐसे समय ग्रंथालय, ग्रंथ, पत्र-पत्रिकाएँ ही उसके सच्चे ज्ञानदानी मित्र होते हैं। जितने परिमाण में और जिस रूप में उसे साहित्य प्राप्त होगा, उस हिसाब से उसके व्यक्तित्व का विकास एवं सृजन होगा। साहित्य की उपलब्धि विपुल मात्रा में होने के लिए यह आवश्यक है कि ग्रंथ कम दाम में मिलते रहें। परतन्त्र एवं नवोदित स्वतन्त्र राष्ट्र के लिए विपुल सत्साहित्य की आवश्यकता है। यह बात ध्यान में रखकर ही 'सस्ता साहित्य मंडल' की स्थापना की गई। सम्भवतः भारत और हिंदी जगत में यही एकमेव संस्था है, जिसने समय और राष्ट्र की आवश्यकता को ठीक तरह से आंका और ऐसा दृढ़ व्यावहारिक कदम उठाया, जिसकी हिंदी-संसार पर अमिट छाप है। 'सस्ता साहित्य मंडल' के यश का सस्ता एवं विपुल साहित्य एक पहलू मात्र है।

समाज में केवल सस्ती दर में विपुल साहित्य प्रसारित करने से 'मंडल' की उद्देश्यपूर्ति न होती। 'मंडल' ने राष्ट्र की सबसे बड़ी सेवा यह की है कि उसने जो भी साहित्य प्रकाशित किया, वह समाज को संस्कारित करने वाला और विकास की ओर ले जाने वाला है, यह कहना उचित होगा। 'मंडल' द्वारा प्रकाशित किये गये ग्रन्थों में से एक भी ऐसा नहीं, जिसे किसी अर्थ में निचले स्तर का कहा जा सके। 'मंडल' सी संस्था पिछले पचास वर्षों जैसे लगातार श्रेष्ठ साहित्य का प्रकाशन कर रही है, यह केवल उसके लिए नहीं, बल्कि राष्ट्र एवं हिंदी संसार के लिए गौरव की बात है। यह राष्ट्रपिता महात्मा गांधी की प्रेरणा का प्रभाव है। राष्ट्र की आजादी के प्रयत्न और प्रगति में योगदान देने के लिए स्थापित की गई संस्था से यही आशा की जानी चाहिए और 'मंडल' इस परीक्षा में शत-प्रतिशत उत्तीर्ण हुआ, इसमें सन्देह नहीं।

किसी भी संस्था या संगठन के संचालन में शुद्ध और दूरदृष्टि की आवश्यकता होती है। गांधीजी इस बात का ध्यान रखते थे। 'सस्ता साहित्य मंडल' के संचालक बापूजी से प्रेरणा पाते थे और सलाह लेते थे। उनके सामने गांधीजी का आदर्श रहा है। इसीलिए केवल ग्रन्थ के प्रकाशन में ही नहीं, बल्कि छोटी-मोटी बातों में भी वे शुद्ध और व्यावहारिक दृष्टिकोण रखते आए हैं। ग्रंथों की बात ही क्या, मंडल द्वारा प्रकाशित 'गांधी डायरी' भी अपना एक विशेष स्थान रखती है। जो आदमी उस डायरी का सदुपयोग करेगा, उसका मन निःसंदेह संस्कारित होगा। डायरी की बात छोटी है, फिर भी उसका बड़ा महत्त्व है। कौन ऐसा है, जो गांधीजी के वचनों से प्रेरित और संस्कारित नहीं होगा?

सुन्दर एवं संस्कारी साहित्य प्रकाशित कर 'सस्ता साहित्य मण्डल' ने एक कीर्तिमान स्थापित किया है और लोगों के सामने, विशेषतः साहित्य-जगत् में एक महान आदर्श उपस्थित किया है। समाज को सस्ता, सुन्दर एवं संस्कारी साहित्य उपलब्ध कराने में उसने अपनी उद्देश्यपूर्ति में निःसन्देह सफलता प्राप्त की। यह राष्ट्र और समाज की अतुलनीय एवं चिरस्मरणीय सेवा है। □

सन्मित्र की पूर्ति

□

रिषभदास रांका

संसार में सत्संगति से बढ़कर कोई उपलब्धि नहीं है। मनुष्य सामाजिक प्राणी है। वह बिना संगति के अकेला रह नहीं सकता। यदि सत्संग न मिले तो व्यक्ति के नीचे गिरने का खतरा रहता है, क्योंकि मनुष्य पर दूसरे की अच्छी-बुरी संगति का परिणाम हुए बिना नहीं रहता। इसलिए जिन्हें अपना विकास करना हो, वे सत्संग का या सन्मित्र-प्राप्ति का प्रयत्न करते हैं।

संसार में निःस्वार्थ मित्रों की बहुत कमी पाई जाती है। यदि निःस्वार्थ मित्र मिल भी जाय तो भी कल्याणकारी मित्र मिलना बहुत दुर्लभ होता है। पहली बात तो यह है कि कल्याण-पथ के पथिक बहुत कम होते हैं फिर कोई कल्याण-पथ का पथिक हो तो भी मित्र को अप्रसन्न करने के लिए स्पष्ट और सच बात करने का साहस नहीं करता।

एक बार हेनरी फोर्ड से पूछा गया कि उनकी सबसे बड़ी चाह क्या है? वे किस चीज की कमी महसूस करते हैं? उन्होंने कहा था कि मैं सच्चे मित्र की कमी महसूस करता हूं। मैं सच्चा मित्र चाहता हूं।

फिर दैव योग से कोई सच्चा मित्र मिल जाय तो भी मित्र या हितकर्त्ता द्वारा दिया हुआ उपदेश, स्पष्ट किया हुआ दोष-दर्शन, किसी को प्रिय नहीं लगता। प्रथम दृष्टि जाती है कहने वालों के दोषों पर। इसलिए उस हितकर बात का जो लाभ उठाना चाहिए, उठाया नहीं जाता। फिर जीवित व्यक्ति कितना ही श्रेष्ठ और सद्गुणी हो, पर उसमें कुछ-न-कुछ कमी तो रह ही जाती है।

इसलिए जो यह लोक छोड़कर चले गये, उन महापुरुषों का सत्संग अर्थात उनके साहित्य का पठन-पाठन अधिक कल्याणप्रद होता है। जो उपस्थित नहीं हैं, उनके दोष उनके शरीर के साथ चले जाते हैं, शेष बचे रहते हैं सद्गुण, जिनका अनुकरण लाभदायक होता है। फिर हर व्यक्ति जो बात लिखता है, उसका प्रयत्न यही रहता है कि वह अच्छी बात लिखे। जो अपना विकास कर महान बने हैं, ऐसे पुरुष अपने अनुभव की बात विचार-पूर्वक और दोष-रहित लिखने का ही प्रयत्न करते हैं। यही कारण है कि सबसे उत्तम सत्संग सत्साहित्य ही माना जा सकता है। इसलिए सबसे उत्तम सेवा साहित्य का प्रचार-प्रसार ही मानी गई है।

'सस्ता साहित्य मंडल' ने इस दिशा में वर्षों से बहुत महत्वपूर्ण कार्य किया है। कोई संस्था लगातार ५० वर्ष तक सत्साहित्य के क्षेत्र में काम करती रहे, यह सबसे बड़ी उपलब्धि है।

उसने महापुरुषों के साहित्य का प्रकाशन और प्रचार किया है, लाखों लोगों को सत्साहित्य दिया है। इतना ही नहीं, अन्य विषयों की भी उसने सैकड़ों पुस्तकें निकाली हैं। साधन उसके सीमित रहे हैं, फिर भी वह अपने ध्येय की पूर्ति में कठिनाइयाँ सहन करते हुए भी निष्ठापूर्वक संलग्न रहा है।

मैं आशा करता हूं कि 'मंडल' सत्साहित्य के द्वारा भविष्य में भी सन्मित्र की कमी की पूर्ति करता रहेगा और पाठक उससे बड़ी संख्या में लाभान्वित होते रहेंगे। □

विदेशों में हिंदी-प्रचार : 'मंडल' का योगदान

□

बनारसीदास चतुर्वेदी

नागपुर में अखिल विश्व हिंदी सम्मेलन के अवसर पर इस प्रश्न की ओर सर्व-साधारण का ध्यान आकर्षित हुआ था और तदर्थ हमें बंधुवर अनन्तगोपाल शेवड़े तथा उनके साथियों का कृतज्ञ होना चाहिए। यह और भी सौभाग्य की बात है कि इस महान यज्ञ के होताओं में मुख्य भाग अहिंदी भाषी भाषियों का ही रहा। इससे यह गलत-फहमी दूर हो जाती है कि हम लोग हिन्दी भाषा-भाषी अपनी जबान दूसरों पर थोपना चाहते हैं।

विदेशों में हिन्दी प्रचार का प्रश्न निस्संदेह महत्वपूर्ण है और इस पर गम्भीरतापूर्वक विचार होना चाहिए। सबसे प्रथम कर्तव्य हमारा यही है कि भूतकाल में जिन-जिन संस्थाओं अथवा व्यक्तियों ने इस दिशा में काम किया हो, उनकी सेवाओं को हम कृतज्ञतापूर्वक स्वीकार कर लें। उदाहरणार्थ, आर्य समाज द्वारा इस मिशन के लिए सबसे अधिक प्रशंसनीय सेवा हुई है और स्वर्गीय स्वामी भवानी-दयाल ने हिन्दी प्रचार का सबसे अधिक काम किया था। आज भी बंधुवर नरदेव विद्यालंकार, दक्षिण अफ्रीका में उनकी परम्परा को आगे बढ़ा रहे हैं।

मारीशस में प्रो० विष्णुदयाल, जयनारायणजी राय तथा श्री भगतजी का कार्य अत्यन्त प्रशंसनीय रहा है। अन्य उपनिवेशों में जो काम हो रहा है, उसका सम्पूर्ण विवरण हमारे सामने नहीं है। हां, भारत सरकार के वैदेशिक विभाग के श्री बच्चूप्रसादसिंह ने अवश्य इस विषय पर एक तथ्यपूर्ण लेख लिखा था।

नागपुर के उत्सव के बाद श्री शेवड़ेजी ने इस काम को कितना आगे बढ़ाया है, इसका पता हमें नहीं है। हमने सुना था कि भाई लल्लनप्रसाद व्यास इस प्रयत्न में हैं कि ब्रिटिश कौंसिल की तरह की कोई संस्था भारत में भी स्थापित हो और वह हिंदी प्रचार का काम अपने हाथ में ले ले। काशी की नागरी प्रचारिणी सभा तथा प्रयाग के हिंदी साहित्य सम्मेलन ने भी विदेशों में हिंदी प्रचार का काम किया है और वर्धा की राष्ट्रभाषा प्रचार समिति ने भी।

'सस्ता साहित्य मंडल' ने भी इस बारे में जो महत्वपूर्ण सेवा की है, वह अन्य हिंदी प्रकाशकों के लिए अनु-करणीय है। हमारी प्रार्थना पर 'मंडल' ने दो-दो 'प्रवासी अंक' निकाल दिये थे और भाई यशपाल जैन ने जितने उपनिवेशों की यात्रा की है, उतने स्थानों की यात्रा किसी भी हिंदी लेखक ने नहीं की। 'मंडल' के सात्विक साहित्य का मारीशस इत्यादि में अच्छा प्रचार हुआ है। अनेक देशों के प्रवासी भारतीयों ने 'मंडल' की पुस्तकों का लाभ लिया है। इतना ही नहीं, अनेक देशों के भारतीय अनुवंशी 'मंडल' के साथ बराबर अपना सजीव सम्पर्क रखते हैं।

'मंडल' की मासिक पत्रिका 'जीवन साहित्य' अनेक देशों में जाती है और वहां के हिंदी लेखक समय-समय पर इस पत्र में लिखते रहते हैं। 'जीवन साहित्य' के प्रवासी अंकों के लिए प्रवासी भारतीयों ने अपना भरपूर सहयोग प्रदान किया। पर ये सब प्रयत्न अलग-अलग ही हुए हैं। सामूहिक रूप में कोई प्रयत्न नहीं किया गया। यदि दिल्ली में 'प्रवासी भवन' की स्थापना हो गई होती तो बड़ा काम होता।

सन् १९२३ में हमने नेटाल की 'हिंदी' नामक पत्रिका में एक लेख लिखा था 'मेरे स्वप्न का आश्रम'। उसे 'जीवन साहित्य' के 'प्रवासी अंक' में देखा जा सकता है। डेढ़-डेढ़ चावल की खिचड़ी अलग-अलग पकाने के बजाय क्यों न सब लोग मिलकर इस प्रश्न पर विचार कर लें?

'हिंदी साहित्य सम्मेलन' एक प्रश्नावली तैयार करके घुमा सकता है। महात्मा गांधी ने सन् १९१८ में ही एक प्रश्नावली जगह-जगह भिजवाई थी और उसके उत्तरों को सम्पादित करने का सौभाग्य हमें १९१९ में प्राप्त हुआ था और तभी सम्मेलन द्वारा 'राष्ट्रभाषा' नामक पुस्तिका

हमने छपवाई थी। बहुत प्रयत्न करने पर भी उसका दूसरा संस्करण गांधी शताब्दी पर भी सम्मेलन द्वारा न छप सका।

विदेशों में किस प्रकार के हिंदी साहित्य का प्रचार हो रहा है, यह सवाल भी कम महत्व नहीं रखता। अभी कुछ दिन पहले फिजी में भारतीय हाई कमिश्नर श्री भगवानसिंह-जी ने हमें लिखा था कि वहां अमुक हिंदी लेखक की पिछली किताबें बहुत लोकप्रिय हो रही हैं। उन लेखक महोदय का नाम लेकर हम उनका विज्ञापन नहीं करेंगे। उनके अश्लील ग्रंथों की चर्चा भी हमें नहीं करनी, पर इससे हम चिन्तित अवश्य हुए और हमें पंडित तोताराम जी के उस लेख की याद आ गई, जो उन्होंने 'विशाल भारत' में छपाया था और जिसमें उन्होंने बतलाया था कि 'सारंग सदावृक्ष' नामक पुस्तक ने फीजी द्वीप में कैसा गजब ढाया था।

निम्नकोटि की फिल्में भी उपनिवेशों में लोकप्रियता प्राप्त कर रही हैं और उनके गाने वहां के युवकों की जुबान पर हैं। फिजी तथा मारीशस इत्यादि की सरकारों का यह कर्तव्य है कि कानून बनाकर अश्लील साहित्य के प्रवेश को एकदम रोक दें, नहीं तो वहां के नागरिकों के चरित्र पर उनका बहुत बुरा प्रभाव पड़ेगा। सबसे अधिक दुर्भाग्य की बात यही हुई है कि उपनिवेशों में स्वामी भवानी दयालजी की तरह का कोई दूसरा हिन्दी-लेखक उत्पन्न नहीं हुआ, जो उनके मिशन को आगे बढ़ाता। फिजी द्वीप की राज्य सभा के सदस्य श्री विवेकानन्द शर्मा कुछ करना तो चाहते हैं, पर वे बहुधंधी हैं और कितने ही काम एक साथ हाथ में ले लेने के लिए उतावले भी। लतोका के बैरिस्टर सुरेन्द्रप्रसादजी भी बहुत काम कर सकते हैं।

हमने सुना था कि आर्य समाज की शताब्दी पर सैकड़ों हिन्दी-भाषा-भाषी व्यक्ति विदेशों से पधारे थे और लाखों रुपया मार्ग-व्यय इत्यादि पर उन्होंने व्यय किया होगा। पर किसी ने इस बात पर ध्यान नहीं दिया कि अजमेर में स्वामी भवानी दयालजी द्वारा स्थापित 'प्रवासी भवन' किस दुर्दशा में पड़ा हुआ है। विदेशों में हिन्दी प्रचार का इतिहास उस भवन की सहायता के बिना नहीं लिखा जा सकता। उसकी अमूल्य सामग्री को तुरन्त सुरक्षित करा देना चाहिए। सुना है, श्री भगवानसिंहजी अवकाश प्राप्त करके फीजी से भारत लौट रहे हैं। क्या ही अच्छा हो, यदि वे इस काम को अपने हाथ में ले लें। एक बार हम फिर दुहरा देना चाहते हैं कि विदेशों में हिंदी प्रचार के प्रश्न पर सामूहिक चिन्तन होना चाहिए।

भाई यशपालजी और 'सस्ता साहित्य मंडल' इस दिशा में महत्वपूर्ण भूमिका अदा करें, ऐसी हमारी आकांक्षा है। उनके प्रति प्रायः सभी देशों में अत्यन्त सद्भावना है। वे जो भी काम उठावेंगे, उसमें उन्हें सभी का सहयोग प्राप्त होगा। □

[पृष्ठ २३६ का शेष]

कुछ लिख दिया करें। विनोबाजी ने कबूल किया और हर रोज माता जानकी देवीजी की नोटबुक में एक पृष्ठ की सामग्री विष्णुसहस्रनाम में से एक नाम का अर्थ और उस पर टिप्पणी के रूप में नियमित रूप से ३६० दिन तक लिखकर देते रहे। टिप्पणी के साथ-साथ विनोबाजी एक चित्र भी अंकित करते गये। यह सारी सामग्री हर पृष्ठ का ब्लॉक बनवाकर 'सस्ता साहित्य मण्डल' ने 'विष्णु-सहस्रनाम' शीर्षक से प्रकाशित करके अत्यंत मूल्यवान सेवा की है। इतना ही नहीं, विनोबाजी के आधुनिकतम अध्यात्मिक चिंतन को उनके हस्ताक्षर में ही छायाबद्ध करके भारतीय आध्यात्मिक प्रकाशन में अपना नाम मानो अमर कर दिया है।

गांधीजी और विनोबाजी के अलावा सर्वश्री काका साहब कालेलकर, किशोरलाल मशरूवाला, केदारनाथजी, जमनालालजी, राजेन्द्रबाबू, घनश्यामदास बिड़ला, कमल नयन बजाज, रामकृष्ण बजाज, जानकी देवी बजाज आदि, गांधी-परिवारों के द्वारा लिखित साहित्य प्रकाशित करके 'सस्ता साहित्य मण्डल' ने उस परिवार की भी सेवा कर के अपने को उस परिवार का अंग बना लिया है।

श्रेष्ठ साहित्य के प्रकाशन में 'सस्ता साहित्य मण्डल' ने अपना एक अनोखा स्थान बना लिया है, यह गर्व का विषय है। 'मण्डल' इसी तरह वाङ्मय-सेवा दीर्घकाल तक आगे भी करता रहे, यही कामना है। □

मंडल' एवं प्रवासी भारतीय

□

महातमसिंह

महात्मा गांधी के आशीर्वाद तथा श्री जमनालाल बजाज की प्रेरणा से सन् १९२५ में स्थापित सत्साहित्य-प्रकाशन-जगत में प्रकाश-स्तम्भ-सी इस महत्वपूर्ण संस्था के बारे में बहुत-कुछ सुनने-जानने के बावजूद सामीप्य का अवसर तबतक नहीं मिला जबतक मैं अपने कार्यक्षेत्र कैरीबियन (दक्षिण अमरीका) से १९६५ में गृह-अवकाश पर भारत नहीं गया।

सन् १९५४ में पूज्य काकासाहब कालेलकर का आशीर्वाद ग्रहण कर 'भारतीय सांस्कृतिक सम्बन्ध परिषद' नई दिल्ली की ओर से, मैं त्रीनीदाद आया था। वहां से गियाना, जो उस समय 'ब्रिटिश गियाना' के नाम से प्रख्यात था, और फिर सूरीनाम पहुंचा। इन देशों में हिंदी-प्रचार-कार्य के माध्यम से सर्व प्रथम 'दक्षिण भारत हिन्दी प्रचारसभा,' मद्रास से सम्पर्क स्थापित हुआ। पीछे जब सूरीनाम में कार्य प्रारम्भ हुआ और हिन्दी के माध्यम से हिन्दी की परीक्षाओं की अनिवार्यता सामने आई तब 'राष्ट्र भाषा प्रचार समिति', वर्धा से सम्पर्क स्थापित हुआ।

१९६५ में जब मैं अवकाश पर भारत गया तब प्रथम बार 'मण्डल' के प्राणस्वरूप वरिष्ट कार्यकर्त्ता श्री यशपाल जैन से मेरी मुलाकात हुई। उन दिनों पूज्य काका साहेब कालेलकर के अभिनन्दन ग्रंथ 'संस्कृति के परिव्राजक' का सम्पादन-कार्य 'मण्डल' की ओर से चल रहा था। इस पुनीत कार्य में भाग लेने का आग्रह मुझसे भी किया गया और कुछ शब्दों में मैंने अपनी भावांजलि अर्पित कर दी।

यह आकस्मिक सम्पर्क समय के साथ व्यापक और दृढ़तर होता गया। भारत से बाहर बड़ी संख्या में बसने वाले प्रवासी भारतीय तथा उनकी संतान के साथ भारत का सम्बन्ध घनिष्ट हो, भारत में उनकी समस्याओं का अध्ययन चले और उसके लिए सक्रिय सहायता प्रदान की जाय, आदि विषयों पर मैंने 'मण्डल' को सचेष्ट पाया। श्री यशपालजी की दक्षिण-पूर्वी एशिया, मॉरीशस, फीजी, कैनेडा, अमरीका, रूस, अफगानिस्तान, नेपाल, अफ्रीकी महाद्वीप तथा कैरीबियन देशों—त्रीनीदाद, गियाना और सूरीनाम—आदि की यात्रा को मैंने इसी संदर्भ में देखा। श्री यशपालजी ने अपने भाषणों और चर्चाओं में बार-बार कहा, "मेरी एक ही आकांक्षा है और वह यह कि इन देशों को हम भली प्रकार जानें और इनके साथ हमारी सांस्कृतिक, साहित्यिक तथा भावनात्मक सम्बन्धों का आदान-प्रदान बढ़े।"

प्रवासी भारतीयों के प्रति जिस सद्भावना-रूपी वृक्ष का रोपण युगपुरुष महात्मा गांधी के हाथों हुआ था और जिसे दीनबंधु एण्ड्रूज जैसे संतों ने सींचा था और जिसे पूज्य काकासाहेब और श्री बनारसीदास चतुर्वेदी ने अपने समर्पित जीवन का एक प्रमुख भाग अर्पित किया, उसके प्रति 'मण्डल' का ध्यान आकर्षित देख कर मन में बड़ी प्रसन्नता हुई।

'जीवन साहित्य' के 'प्रवासी अंक' (खण्ड १) में श्री बनारसीदास चतुर्वेदी की पंक्तियाँ—"मेरा ८२वाँ वर्ष चल रहा है और अब ज्यादा समय तो मेरे पास बचा नहीं, फिर भी मेरे मन में यह इच्छा अवश्य है कि प्रवासी भारतीयों की यथा-शक्ति सेवा कर सकूँ। भाई यशपालजी ने इस विषय को अपना लिया है, यह मेरे लिए परम सन्तोष की बात है"—मेरी धारणा को पुष्ट करती है।

गोस्वामी तुलसीदास ने माता सीता के सौंदर्य का वर्णन करते हुए 'रामचरितमानस' में लिखा है "सिंह शोभा किमि कहहुँ बखानी, गिरा अनयन नयन बिनु बानी।" प्रवासी भारतीयों के मन में भारत के प्रति सद्भावना का उल्लेख करते हुए कुछ ऐसी स्थिति का सामना करना पड़ता है। सन् १९५८-५९ की बात है। गियाना और सूरीनाम से एक यात्री-दल भारत-यात्रा पर गया था, जिसमें स्व. पं. भवानी भीख और स्व. सुग्रीवसिंह आदि थे। इनके स्वा-

गत के लिए दमदम हवाई अड्डे पर [illegible] के कुछ प्रमुख व्यक्ति पधारे थे। हवाई जहाज से उतरते ही जब लोगों ने नतमस्तक होकर भारत भूमि की पवित्र धूल को सिर पर चढ़ाया तो स्वागतार्थ उपस्थिति सज्जन दूर से जान ही नहीं पाये कि आखिर लोग झुक कर क्या कर रहे हैं। स्थिति से अवगत होने पर उनका भक्ति भाव से स्वागत करने वाले व्यक्तियों का मन विभोर हो उठा। पर उनके प्रति हमारा क्या कर्तव्य है, एक प्रश्न बन कर रह जाता है।

विदेशों में जो हिन्दी का प्रचार-प्रसार तथा अन्य सांस्कृतिक कार्यक्रम चल रहे हैं उनकी दो प्रमुख धाराएं हैं। एक तो ऐसे देश हैं, जहाँ के मूल-भूत निवासी उच्चस्तरीय ढंग से विश्व-विद्यालयों में हिंदी की पढ़ाई-लिखाई करते हैं। दूसरी धारा है उन देशों में, जहाँ भारतीय अनुवंशीय लोग अधिक संख्या में बस गये हैं। वे अपने साथ अपने देश की संस्कृति और धर्म ले गये और उन्हें संकट और संघर्ष के बीच सुरक्षित रखा। ये दोनों ही यथाशक्ति भारतीय सहायता की अपेक्षा रखते हैं। पर अधिकतर प्रथम धारा, अपनी क्षमता के सहारे भारत में सरकारी तथा गैर सरकारी संस्थाओं का ध्यान सरलता से खींच लेती है, जबकि दूसरी के बहुत सारे कार्यकर्त्ता, जिन्होंने अपने जीवन का बहुमूल्य समय हिन्दी के पठन-पाठन में लगाया है और जिनके सुन्दर कार्यों की सुगन्ध से अपने देश के लोगों के मन को प्रफुल्लित कर दिया है, भारत में समुचित मान्यता को प्राप्त नहीं कर पाते। प्रसन्नता की बात है कि 'राष्ट्र भाषा प्रचार समिति' वर्धा जैसी रचनात्मक प्रवृत्तियों वाली संस्था इस में सचेष्ट है और 'सस्ता साहित्य मण्डल' का सहयोग और मार्ग-दर्शन ऐसे कार्यकर्त्ताओं को प्राप्त हो रहा है। भारत-यात्रा पर जाने वाले कितने ही हिन्दी-प्रेमियों के लिए अपने बहुमूल्य समय का अंश दानकर भाई यशपालजी ने भारत के प्रति सद्भावना की जो वृद्धि की है, वह अत्यन्त सराहनीय है

सन् १९७५ में नागपुर में आयोजित विश्व हिन्दी सम्मेलन की फलश्रुतियों में 'विश्व हिन्दी विद्यापीठ' की योजना बहुत ही महत्वपूर्ण लगती है। आज यह निर्विवाद रूप से प्रमाणित हो चुका है कि हिन्दी प्रदेश से निकलकर समूचे देश में प्रतिष्ठित हो चुकी है और अब वह देश की सीमाओं से परे बहुत सारे देशों में अभिव्यक्ति का माध्यम बन रही है। इतना कुछ होते हुए भी हमें अपनी छोटी-से-छोटी भूलों, विशेषतया देश में अंग्रेजी और अंग्रेजियत के मोह से सतर्क रहना होगा, क्योंकि ये विश्व-मानव के लिए हिन्दी की सेवाओं को अवरुद्ध कर देती हैं। यहाँ अधिक प्रासंगिक न होते हुए भी एक घटना का उल्लेख करना चाहूँगा। मार्च १९७६ में जब मैं राष्ट्र भाषा हिन्दी प्रचार समिति का आतिथ्य स्वीकार कर वर्धा और पूज्य विनोबा का मार्ग-दर्शन प्राप्त करने के लिए पवनार गया तब एक माननीय सज्जन ने भारी मन से बताया कि विश्व हिन्दी सम्मेलन में एक विदेशी प्रतिनिधि के अपने आवास आदि के बारे में हिन्दी में पूछे प्रश्नों का उत्तर वहाँ के अधिकारी अंग्रेजी में देते रहे। एक ओर से हिन्दी में प्रश्न और दूसरी ओर से अंग्रेजी में जवाब की प्रक्रिया कुछ समय तक चलती रही। सूरीनाम से भारत-यात्रा पर गये कितने ही यात्रियों के मुख से हिन्दी सुनकर भारत के लोग हैरान होते हैं और उनसे अधिक हैरान होते हैं ये यात्री, जब अपने लोगों की वाणी अंग्रेजी और अंग्रेजियत से ओत-प्रोत होती है।

मुझे पूरा विश्वास है कि 'सस्ता साहित्य मण्डल' और शक्ति सम्पन्न होकर हिन्दी भाषा तथा साहित्य के प्रचार-प्रसार का कार्य देश-विदेश में दृढ़ता के साथ करता रहेगा।

हमारी बधाई और शुभकामनाएं! □

हिन्दी पत्रकारिता को महान देन

लक्ष्मीशंकर व्यास

देश की जिन साहित्यिक प्रकाशन-संस्थाओं ने अपनी पत्र-पत्रिकाओं के प्रकाशन से हिन्दी-पत्रकारिता को महत्व-पूर्ण देन दी है, उनमें काशी नागरी प्रचारिणी सभा, हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग; ज्ञानमण्डल-काशी, गीता प्रेस, गोरखपुर, सस्ता साहित्य मण्डल, नई दिल्ली प्रमुख हैं। काशी नागरी प्रचारिणी ने ही सर्वप्रथम 'सरस्वती' का प्रकाशन किया, जो बाद में हिन्दी की प्रमुख प्रकाशन संस्था इण्डियन प्रेस, प्रयाग को सौंप दी गई। 'सभा' ने ही शोध-मूलक त्रैमासिक 'नागरी प्रचारिणी पत्रिका' का प्रकाशन किया। हिन्दी साहित्य सम्मेलन ने 'सम्मेलन-पत्रिका' के प्रकाशन से त्रैमासिक पत्रिकाओं के लिए मार्ग-दर्शन किया। राष्ट्ररत्न शिवप्रसादजी गुप्त ने काशी में 'ज्ञान-मण्डल' की स्थापना कर हिन्दी के सर्वश्रेष्ठ दैनिक 'आज' का संस्थापन-प्रकाशन किया। श्रीयुत हनुमानप्रसादजी पोद्दार ने गीता प्रेस, गोरखपुर से 'कल्याण' मासिक का प्रकाशन कर आध्यात्मिक-सांस्कृतिक प्रधान हिन्दी पत्र-कारिता को जन्म दिया और एक नया कीर्तिमान स्थापित किया। इसी रूप में सन् १९२५ ई० में नई दिल्ली में देश के राष्ट्रीय, साहित्यिक एवं सांस्कृतिक जागरण के निमित्त स्थापित 'सस्ता साहित्य मण्डल' का महत्वपूर्ण योगदान है। इसी साहित्यिक संस्थान ने सन् १९४० ई० में हिन्दी मासिक 'जीवन साहित्य' का प्रकाशन आरम्भ किया। यह मासिक पत्रिका अपने नाम के अनुरूप ही राष्ट्रीय, सांस्कृतिक और साहित्यिक जीवनधारा से सम्पर्क कराने वाली विशिष्ट पत्रिका है। पिछले सैंतीस वर्षों से इसका नियमित प्रकाशन जहां अभिनन्दनीय है, वहीं इसके माध्यम से प्रकाशित सामग्री हिन्दी पत्रकारिता की महान देन है।

'जीवन साहित्य' में देश के शीर्षस्थ विचारकों, चिन्तकों और श्रेष्ठ साहित्य के लेखकों की रचनाएं प्रकाशित होती हैं। विदेशी विद्वानों की विचारधारा को भी पत्रिका में स्थान मिलता रहा है। इस प्रकार इस पत्रिका के माध्यम से राष्ट्रीय संचेतना के साथ ही विश्व मानवीय भावनाओं एवं विचारों का भी परिचय होता है। इस मासिक पत्रिका के सामान्य अंक भी जीवन में नवीन स्फूर्ति और शक्ति उत्पन्न करने वाले होते हैं। प्रत्येक अंक प्रेरणाप्रद जीवन-प्रसंगों तथा विचारधारा से युक्त होता है। यह अहिंसक नवरचना का मासिक है। इसे गांधीवादी ही नहीं, समग्र राष्ट्रीय विचारधारा का प्रतिनिधि मासिक कहना उचित होगा। इसके संस्थापक सम्पादक पण्डित हरिभाऊ उपाध्याय थे। श्री हरिभाऊ उपाध्याय तथा श्री यशपाल जैन के सम्पादकत्व में यह पत्र १९७२ के मध्य तक प्रकाशित होता रहा। सन् १९७२ के उत्तरार्ध में श्री हरिभाऊ उपाध्याय के निधन के बाद से श्री यशपाल जैन के सम्पादकत्व में यह पूर्व की भांति ही जीवन एवं चरित्र-निर्माण की उच्चस्तर की सामग्री पाठकों को उपलब्ध कर रहा है।

'जीवन-साहित्य' की सैंतीस वर्षों की जीवन-यात्रा अनेक उल्लेख अवदानों से युक्त है। इसके अबतक प्रायः बीस विशेषांक प्रकाशित हो चुके हैं, जिनमें अत्यन्त उपयोगी साहित्य एवं पाठ्य सामग्री प्रकाशित हुई है। इन विशेषांकों का नियमानुसार विभाजन किया जा सकता है। सर्वप्रथम व्यक्तित्व-परक और युग की प्रवृत्तियों के परि-चायक विशेषांकों का उल्लेख उचित होगा। इस क्रम में 'जमनालाल स्मृति अंक', 'बुद्ध जयन्ती अंक', 'श्री बापू अंक', 'राजेन्द्र संस्मरण अंक', 'टाल्स्टाय अंक', 'रवीन्द्र अंक', 'नेहरू स्मृति अंक', 'लालबहादुर शास्त्री स्मृति अंक', 'श्रद्धांजलि अंक', तथा 'महावीर अंक' आते हैं। 'जीवन साहित्य' ने कुछ ऐसे विषयों पर भी विशेषांक निकाले हैं, जो जीवन के अनिवार्य एवं उपयोगी प्रश्नों पर ज्ञातव्यता

तथा विविध-बोध कराते हैं। ऐसे विशेषांकों में 'प्राकृतिक चिकित्सा अंक', 'खादी ग्रामोद्योग अंक' तथा 'भोजनांक' उल्लेख्य हैं। 'भोजनांक' सन् १९७१ में प्रकाशित हुआ। शाकाहारी भोजन ही सर्वोत्तम है, इसका प्रतिपादन इसमें बड़े ही प्रभावशाली-वर्णन विवेचन से किया गया है।

गांधी जन्म शताब्दी वर्ष में 'जीवन साहित्य' के तीन विशेषांक निकले, जिनमें गांधी-चिन्तन-धारा की पृष्ठभूमि तथा प्रयोग भूमि को सुस्पष्ट किया गया है और राष्ट्रीय जीवन पर उसके प्रभाव का मूल्यांकन किया गया है। सन् १९६९ में प्रकाशित 'गांधी चिन्तन अंक' की सामग्री को (१) सम्यक दर्शन (२) सम्यक ज्ञान तथा (३) सम्यक चारित्र्य के अन्तर्गत विभाजित कर जहां बापू के व्यक्तित्व एवं उनके जीवन दर्शन के अध्ययन-मनन की प्रेरणा दी गई है, वहां उसे जीवन में उतारने पर भी बल दिया गया है। गांधीजी कहा करते थे—"मेरा जीवन ही मेरा सन्देश है।" इसे रेखांकित कर गांधीजी की जीवन-साधना तथा राष्ट्रोत्थान के अनुष्ठान को आलोकित करने का प्रयास सराहनीय है। 'वैष्णवजन अंक' तथा 'बापू अंक' भी एक-दूसरे के पूरक हैं और प्रेरणा के आश्रय स्रोत राष्ट्र-पिता गांधीजी तथा कस्तूरबा के त्याग-तपस्या-मय जीवन की अत्यन्त मर्मस्पर्शी झांकी प्रस्तुत करते हैं।

इसी प्रकार श्रद्धांजलि अंक, सस्ता साहित्य मण्डल के संस्थापक तथा 'जीवन साहित्य' के जन्मदाता श्री हरिभाऊ उपाध्याय के व्यक्तित्व-कृतित्व पर प्रकाश डालने वाली सामग्री से युक्त है। उपाध्यायजी ने सन् १९१२ से अपनी साहित्य-सेवा आरम्भ की। इसी समय उन्होंने बनारस से 'औदुम्बर' पत्र का प्रकाशन किया। वह महात्मा गांधी के 'हिन्दी नवजीवन' के सम्पादक थे। उन्होंने 'मालव-मयूर' और 'त्यागभूमि' का भी सम्पादन-प्रकाशन किया। वह महान साहित्यकार होने के साथ ही विशाल हृदय मानव भी थे। यह उनका सबसे बड़ा गुण था। आज जब 'मण्डल' की स्वर्ण जयन्ती मनायी जा रही है, उसमें उनका पुण्य-स्मरण हमारा पुनीत कर्त्तव्य है। उनके महान व्यक्तित्व की झांकी उन्हीं की रचित निम्नलिखित पंक्तियों से हो जाती है :

चाह नहीं, इतिहासों की 'स्याही' में नाम निशान रहे,
चाह नहीं जग के गीतों में मेरा गौरव-गान रहे।
चाह यही है, मेरे मुख में तेरा मंगल-नाम रहे,
दुखियों के दुख की ज्वाला में बस मेरा विश्राम रहे।

'जीवन साहित्य' के 'राष्ट्रीय चेतना अंक' के तीन युग-निर्मात्री घटनाओं का आकलन हुआ है। एक तो स्वतन्त्रता की रजत जयन्ती, दूसरे बंगला देश की स्वतन्त्रता तथा तीसरे अरविन्द-जन्म-शताब्दी तीनों विषयों की महत्वपूर्ण रचनाएं इस विशेषांक में बड़ी सुरुचि एवं कलात्मकता से प्रस्तुत की गई हैं। 'जीवन साहित्य' के दो और विशेषांकों की चर्चा यहां आवश्यक है। एक तो 'प्रवासी अंक' जो दो खण्डों में पण्डित बनारसीदास चतुर्वेदी तथा श्री यशपाल जैन के सम्पादकत्व में प्रकाशित हुआ है। इस विशेषांक में भारत के बाहर जो ६० लाख भारतीय वंशज सुदूर देशों में निवास करते हुए भारतीय संस्कृति से अनन्य प्रेम रखते हैं, उनका प्रामाणिक विवरण-विश्लेषण है। इस अछूते विषय पर इस विशेषांक में अत्यन्त मूल्य-वान सामग्री दी गई है। प्रवासी भारतीयों के कार्य की ओर श्रद्धेय चतुर्वेदीजी ने शुरू से ही ध्यान रखा है और 'मर्यादा' के 'प्रवासी अंक' का भी सम्पादन किया था, जो हिन्दी पत्रकारिता की अमूल्य निधि है। इसी प्रकार 'जीवन साहित्य' का 'महावीर अंक' दो खण्डों में महावीर के २५००वें निर्वाण महोत्सव-वर्ष में महत्वपूर्ण देन है। इसमें अधिकारी विद्वानों के चिन्तन-परक तथा प्रेरणाप्रद लेखों द्वारा यह प्रतिपादित किया गया है कि महावीर के सिद्धान्तों की सार्थकता आज के जीवन-सन्दर्भ में भी पहले जैसी ही सार्थक है।

इस प्रकार 'जीवन साहित्य' ने अतीत-वर्तमान को अपने विशेषांकों में आकलित कर भविष्य को आलोकित किया है, इसमें सन्देह नहीं। यह जीवन्त मासिक पत्रिका हिन्दी पत्रकारिता का श्रेष्ठ और अनुकरणीय आदर्श उपस्थित करती है। □

'मंडल' और 'जीवन साहित्य'

दीनदयाल ओझा

'सस्ता साहित्य मण्डल' का नाम लेते ही हमारे सामने एक ऐसी संस्था का चित्र उपस्थित होता है, जो पिछले पचास वर्षों से जन-साधारण को सस्ते मूल्यों पर उच्चस्तरीय और प्रेरणादायी साहित्यक उपलब्ध कराने में तत्पर है। भारत के गण्यमान्य मनीषियों, साहित्यकारों, राजनीतिज्ञों और विचारकों के पावन प्रेरणादायी सहयोग से 'मण्डल' ने अपने स्थापनाकाल से लेकर अब तक लगभग १५०० से अधिक पुस्तकें विविध विषयों की प्रकाशित की हैं, जिनके द्वारा भारत में ही नहीं, विदेशों में हिन्दी का मान-सम्मान बढ़ा है और उत्तरोत्तर बढ़ता जा रहा है। स्व० पुरुषोत्तमदास टंडन का यह कथन कि " 'मण्डल' ने न केवल अपने प्रकाशनों के ऊंचे स्तर से, अपितु कार्य की नैतिक मर्यादा से अपने को आदर और प्रेम का पात्र बनाया है," अक्षरशः सत्य है।

'मण्डल' की दो प्रमुख प्रवृत्तियां हैं। पहली सस्ते मूल्य पर सुरुचिपूर्ण, ज्ञानवर्धक और प्रेरणादायी ग्रंथों का प्रकाशन और दूसरी, 'जीवन साहित्य' पत्रिका को प्रकाशित करना। इन दोनों प्रवृत्तियों के माध्यम से 'मण्डल' ने जहां राष्ट्रीय चेतना को अहिंसात्मक तरीकों से जाग्रत करने का सराहनीय कार्य किया है, वहां उदारता-पूर्वक देशी-विदेशी सभी श्रेष्ठ साहित्यकारों की मौलिक एवं अनूदित कृतियों को उपलब्ध कराकर हिन्दी साहित्य की संवर्धना में उल्लेखनीय योगदान दिया है। इन्हीं गुणों से प्रभावित होकर श्री जगजीवनराम ने लिखा है, 'मण्डल' जनता को सस्ता और उत्तम साहित्य उपलब्ध कराकर अपने लक्ष्य की पूर्ति की ओर निरन्तर अग्रसर होता रहा है। 'मंडल' का यह कार्य शैक्षणिक, साहित्यिक और जन-जागरण की दिशा में मिशनरी भावना से किया गया कार्य सिद्ध हुआ है।"

यह परम सौभाग्य की बात है कि 'मण्डल' को समग्र भारत के साहित्यकारों, दार्शनिकों, विचारकों और मनीषियों की कृतियों को प्रकाश में लाने का सुअवसर मिला है। यहीं कारण है कि 'मण्डल' के सम्मानित लेखकों में युगपुरुष महात्मा गांधी, पं० जवाहरलाल नेहरू, डा० राजेन्द्र प्रसाद, आचार्य विनोबा, श्री चक्रवर्ती राजगोपालाचार्य, काका सा० कालेलकर, गणेश वासुदेव मावलंकर, किशोर लाल मशरूवाला, डा० सम्पूर्णानन्द, हरिभाऊ उपाध्याय, डा० वासुदेवशरण अग्रवाल, मामा वरेरकर, मनोज वसु, महर्षि टाल्स्टाय, खलील जिब्रान, स्टीफन ज्विग, तुर्गनेव आदि-आदि हैं। 'मण्डल' के सहयोगी विद्वानों द्वारा लिखित एवं संपादित इतिहास और राजनीति, साहित्य और संस्कृति, धर्म और दर्शन, संत-साहित्य, नीति, आचार-शिक्षा, आत्मकथा और जीवनी, संस्मरण, यात्रा-साहित्य, डायरी और पत्र व्यवहार, लोककथा, उपन्यास, नाटक, एकांकी, गद्यगीत, काव्य आदि-आदि विद्याओं का साहित्य बड़ा ही लोकप्रिय हुआ है और लाखों व्यक्तियों ने इस साहित्य से अनुप्राणित हो अपने जीवन को नई दिशा दी है। जीवन को नई दिशा देने वाला 'मण्डल' का मासिक पत्र 'जीवन-साहित्य' कितने ज्ञान-पिपासुओं की प्यास बुझाता है, यह संभवतः गिनती से परे है।

'जीवन साहित्य' का मैं वर्षों से ग्राहक हूं। इस पत्रिका की सामग्री मुझे जीवन से भी अधिक प्रिय है। सत्य तो यह है कि जीवन में आनेवाली अनेक समस्याओं का समाधान मुझे इसमें प्रकाशित होने वाली रचनाओं से मिला है। न जाने मेरे-जैसे और भी अनेक पाठकों को कब किस रूप में नई दिशा, नया प्रकाश, मिला होगा, ये तो वे ही बता सकते हैं। 'जीवन-साहित्य' की सबसे बड़ी विशेषता है जीवनोपयोगी सभी विषयों पर सुंदर, भावभरे, सरस लेखों का प्रकाशन। ये लेख उन तपोनिष्ठ विद्वानों के होते हैं, जिन्होंने उस विषय पर गहन चिंतन-मनन किया है और तत्पश्चात अनुभूति को व्यक्त करने की ओर अग्रसर

हुए हैं। 'जीवन साहित्य' की दृष्टि अत्यधिक उदार है। उसके मान्य संपादक भूमा को लेकर सोचने विचारने वाले हैं। मैं समझता हूं कि यही कारण है कि पत्रिका में देशी-विदेशी विद्वानों के लेख छपते हैं, अनुवाद प्रकाशित होते हैं और समय-समय पर विशेषांकों के माध्यम से विश्व के महान् विद्वानों का कृतित्व एवं व्यक्तित्व प्रस्तुत किया जाता है। उदाहरणस्वरूप 'जीवन साहित्य' के कतिपय उल्लेखनीय विशेषांकों के नाम दिये जा सकते हैं। यथा—बुद्ध जयन्ती अंक, तीर्थंकर महावीर अंक, गांधी चिंतन अंक, नेहरू स्मृति अंक, राजेन्द्र स्मरण अंक, लालबहादुर स्मृति अंक, रवीन्द्र अंक, टाल्स्टाय अंक, राष्ट्रीय चेतना अंक, प्रवासी अंक, भोजनांक, वैष्णवजन अंक आदि-आदि। इन विविध भावभरे एवं प्रेरणादायी विशेषांकों के माध्यम से भारतीय साहित्य, संस्कृति और दर्शन को जिस रूप से प्रस्तुत किया गया है, उसकी विश्व के गण्यमान्य विद्वानों ने भूरि-भूरि सराहना की है। प्रवासी अंक, टाल्स्टाय अंक, बुद्ध जयन्ती अंक, रवीन्द्र अंक आदि-आदि की विश्व के कोने-कोने से अच्छी मांग रही और आज भी है। पत्रिका की सामग्री का निरन्तर आस्वादन करने वाले श्री बनारसीदास चतुर्वेदी ने एक स्थान पर लिखा है, "कितना उपयोगी सात्विक मानसिक भोजन जीवन साहित्य देता है। यह निस्सन्देह उच्चकोटि का मासिक पत्र है।" श्री वियोगी हरि के शब्दों में 'जीवन साहित्य को गांधी-विचारधारा का मैं एक ऊंचा मासिक पत्र मानता हूं।' इस पत्र के जैसे स्वस्थ तथा विचारपूर्ण लेख अन्यत्र कम देखने को मिलते हैं।"

वस्तुतः 'जीवन साहित्य' का लेखक-परिवार भारत का वह प्रबुद्ध वर्ग है जिन्होंने अपना जीवन साधना, तपस्या चिंतन, मनन और अध्ययन-अध्यापन में बिताया है। उदाहरण स्वरूप गांधी, नेहरू, विनोबा, राजेन्द्रप्रसाद, राधाकृष्णन, सम्पूर्णानन्द, वासुदेवशरण अग्रवाल, काका सा. कालेलकर, चक्रवर्ती, राजगोपालाचार्य, मामा बरेरकर, विष्णु प्रभाकर, हजारीप्रसाद द्विवेदी, श्रीमन्नारायण, महावीर प्रसाद पोद्दार, दादा धर्माधिकारी, यशपाल जैन, वियोगी हरि, आदि-आदि के नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। इन विद्वानों के द्वारा प्रस्तुत की गई सामग्री 'जीवन साहित्य' के माध्यम से भारत के हजारों प्रबुद्ध पाठकों को सामाजिक और राजनैतिक जीवन जीने की नई दिशा, नई प्रेरणा प्रदान करती है। अंतःसलिला की तरह सर्वत्र अहिंसा की पावन धारा 'जीवन साहित्य' को सदैव सरस बनाये रखती है। सात्विकता और आडम्बर-हीनता ही इस पत्रिका का अनुपम शृंगार है। अपने लघुकाम कलेवर में जीवनोपयोगी बहुमूल्य सामग्री को हृदयहार बनानेवाली यह एक अनूठी पत्रिका है, जिसमें साहित्य, संस्कृति और सात्विक राजनीति की त्रिवेणी निरन्तर प्रवाहमान रहती है। इसकी संपादन-कला की विशेषता विद्वतापूर्ण लेखों का संपादन तो है ही, पर 'क्या व कैसे' संपादकीय इतना स्पष्ट, मार्मिक और दैनंदिनीय समस्याओं की सटीक व्याख्या प्रस्तुत करने वाला होता है कि उसकी समता किसी भी पत्र की संपादकीय टिप्पणियों से नहीं की जा सकती। राग-द्वेष से परे "क्या व कैसे" 'जीवन साहित्य' का नवनीत है। यही कारण है विनोबा जैसे विद्वान और मनीषी भी इस तथ्य को स्वीकारते हैं कि 'जीवन साहित्य' विचार के लिए अच्छा खाद्य दे रहा है।

हिन्दी में अनेकानेक मासिक पत्रों का प्रकाशन होता है और प्रत्येक बुद्धिमान व्यक्ति अपनी-अपनी रुचि के अनुरूप उन मासिक पत्रों का पठन करते हैं, पर मेरे जीवन को जिन मासिक पत्रों से प्रेरणा मिली है, उनमें सबसे प्रमुख गीता प्रेस गोरखपुर से प्रकाशित 'कल्याण' और 'सस्ता साहित्य मण्डल' नई दिल्ली से प्रकाशित होने वाला 'जीवन साहित्य' है। पिछले कितने ही वर्षों से मैं इस पत्र का ग्राहक हूं और इस पत्र को प्राप्त होते ही आद्योपान्त पढ़ता हूं।

राष्ट्रीय चिंतन को जिस उदारता, सत्यता, चारुता के साथ 'जीवन साहित्य' प्रस्तुत करता है, उस तरह संभवतः अन्य कोई पत्र नहीं। हो सकता है कि मेरे इस कथन में कुछ अतिशयोक्ति भी हो, पर जिस दवा से रोगी का रोग ठीक हो, वह उसके लिए अमृत है। जिस सरोवर से प्यासे की प्यास शान्त हो, वह उसके लिए क्षीर सागर है। अमृत उदधि हैं। वस्तुतः 'जीवन साहित्य' में भारत-विख्यात लेखकों द्वारा जो सामाग्री प्रस्तुत की जाती है, वह साहित्यिक दृष्टि से महत्वपूर्ण तो होती ही है, साथ ही जीवन को अनुप्राणित और सही दिशा देनेवाली भी।

'जीवन साहित्य' अपने न[illegible] जीवन को अभिनव दिशा सत्साहित्य के माध्यम से देता है। अहिंसा का प्रबल हथियार हाथ में लिये 'जीवन साहित्य' अपनी सादगी में बहुत कुछ ऐसी बातें कह देता है, जो तड़क-भड़क वाले मासिक पत्र नहीं कह पाते। इस पत्र के लेखक जीवन को जीवंत रूप में जीने वाले साहित्य का निरन्तर अध्ययन करने वाले होने के कारण उनके लेख अत्यधिक प्रभावशाली और सहज रूप से गले उतरने वाले होते हैं। उनके चिंतन प्रधान लेख पढ़कर पाठक प्रभावित हुए बिना नहीं रहते। प्रत्येक अंक में कुछ-न-कुछ ऐसी नवीनता एवं विशेषता रहती है कि जिसका रसास्वादन ही किया जा सकता है; अभिव्यक्ति के माध्यम से प्रकट नहीं किया जा सकता।

'जीवन साहित्य' की सामग्री अपनी रीति-नीति से अनुमोदित होने के कारण कभी भी छिछली नहीं बन पाती। उसकी प्रत्येक रचना अपनी सार्थकता लिए हुए रहती है। भर्ती की रचना का प्रवेश 'जीवन साहित्य' में सदा से वर्जित रहा है। सत्य, अहिंसा, सादगी, धर्म और प्रकृति का सहज सान्निध्य 'जीवन साहित्य' की रचनाओं में उपलब्ध होता है। मैंने 'जीवन साहित्य' से बहुत कुछ सीखा है, पाया है और इसमें प्रकाशित लेखों के भावों का उपयोग कर अपने आप सद्मार्ग का राही बनने की सदा चेष्टा की है, आज भी करता हूं। मुझे चिंतन की ओर प्रवृत्त करने, लिखने की ओर अनुप्राणित करने, व्याख्यान देने, अभिनव महत्वपूर्ण विषयों से अवगत कराने में 'जीवन साहित्य' का जीवन्त योगदान रहा है।

मासिक पत्रों में बहुत कम ऐसे पत्र होंगे, जो अपनी भंवर गति से आपत्तियों को झेलते हुए भी मस्ती से चल रहे हों और अपने पथ से कभी भी न डिगे हों। पिछले ३७ वर्षों से 'जीवन साहित्य' का निरन्तर प्रकाशन इसका प्रमाण है। न जाने मेरे जैसे कितने पाठकों का जीवन 'जीवन साहित्य' ने नवीन दिशा की ओर उन्मुख किया होगा, मुझे ज्ञान नहीं। पर मुझे जो 'जीवन-साहित्य' से लाभ मिला और मिलता जा रहा है, वह मेरे जीवन का एक ऐसा लाभ है, जिसे मैं सहज और सत्यरूप में 'मंडल' की स्वर्ण जयन्ती पर ही प्रकट कर सकता हूं।

३६ वर्ष से जो संस्था इस पत्र को निकाल रही है, वह एक चैरिटेबल सोसायटी है। मुनाफा कमाना न तो इसका लक्ष्य रहा है और न है। गांधी-विचार-धारा के अनुसार इसके सदस्यों का लक्ष्य समाज को कुछ देना और इस प्रकार की सुव्यवस्था करके अन्य विद्वानों से भी कुछ दिलाना इसके लिए इष्टकर रहा है और इस दिशा में 'मण्डल' भारत की अग्रणी संस्था है। समाज में राजनैतिक, सामाजिक, सांस्कृतिक और नैतिक उत्थान ऐसे ही सद्प्रयत्नों के द्वारा संभव हो सकता है।

मुझे पूर्ण विश्वास है कि 'मण्डल' और 'जीवन साहित्य' सदा की तरह भविष्य में और अधिक तत्परता से हिन्दी साहित्य की सेवा और विश्व मानव के नैतिक उत्थान के हेतु सराहनीय कार्य करते रहेंगे। □

क्या
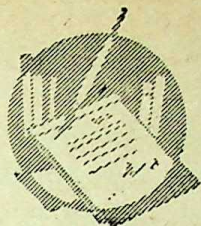
'मंडल' की स्वर्ण जयंती और यह विशेषांक

'सस्ता साहित्य मंडल' की जीवन-यात्रा के पचास वर्ष पूरे हुए। पीछे मुड़कर देखने पर नाना प्रकार के विचार मन में उठते हैं। 'मंडल' की स्थापना एक विशेष उद्देश्य की पूर्ति के लिए हुई थी। वह उद्देश्य था उत्तम संस्कार और देश-भक्ति की प्रेरणा देने वाले साहित्य को सस्ते-से-सस्ते मूल्य में प्रकाशित एवं प्रसारित करना। इस उद्देश्य को सम्मुख रखकर 'मंडल' अर्द्धशती से निरन्तर अपने मार्ग पर चलता आ रहा है। उसे पग-पग पर कठिनाइयों का सामना करना पड़ा है, आज भी कर रहा है, पर उसकी निष्ठा में कमी नहीं आई, उसके पैर नहीं डगमगाए।

सन् १९२५ में जब अजमेर में 'मंडल' की स्थापना हुई थी, उस समय परिस्थितियां आज से सर्वथा भिन्न थीं। सभी चीजें बेहद सस्ती थीं और लोगों में देश-प्रेम तथा त्याग की भावना कूट-कूट कर भरी थी। 'मंडल' के पास एक-से-एक बढ़कर कार्यकर्त्ता थे। उसने बढ़िया-से-बढ़िया साहित्य इतने सस्ते दामों में दिया कि लोग चकित रह गये। आठ आने में दो सौ-ढाई सौ पृष्ठ की पुस्तकें पाठकों को सुलभ कीं। कागज, छपाई, जिल्द, सब सस्ती और ऊपर के खर्चे सीमित। तभी उसके लिए यह संभव हो सका।

किसी भी संस्था के लिए उसका प्रारंभिक काल विशेष महत्व रखता है। उस काल में संस्था की नींव रखी जाती है। इस दृष्टि से 'मंडल' का अजमेर का ८-९ वर्ष का काल बहुत ही गौरवशाली है। उन थोड़े से वर्षों में अनेक उतार-चढ़ाव आये, पर 'मंडल' के संस्थापकों एवं कार्यकर्त्ताओं का संकल्प डिगा नहीं, उनकी निष्ठा अचल बनी रही और बाधाओं को पार करते हुए 'मंडल' आगे बढ़ता रहा। यह ठीक है कि परिस्थितिवश उस काल में अधिक प्रकाशन नहीं हो पाये, लेकिन यह भी सच है कि उसी काल में 'मंडल' के भावी जीवन की दिशा निश्चित हुई।

उस काल के हमारे कई धीर, वीर, त्यागी और देश-भक्त महानुभाव चले गये। हम उनकी पावन स्मृति को अपनी आंतरिक श्रद्धांजलि अर्पित करते हैं। पर सौभाग्य से कुछ बंधु आज भी हमारे बीच विद्यमान हैं। उनका हम बड़े स्नेह एवं आदर-भाव से अभिनंदन करते हैं।

'मंडल' ने अजमेर में क्या किया, किन परिस्थितियों में किया और दिल्ली स्थानान्तरण होने के पश्चात किस प्रकार उससे कार्य का विस्तार हुआ, उस सबका विस्तृत विवरण पाठकों को इस अंक के विभिन्न लेखों में मिलेगा। हम उन बातों को यहां दोहराना नहीं चाहते, लेकिन एक बात स्पष्ट है कि पहले और अब की स्थितियों में जमीन आसमान का अंतर हो गया है, विशेषकर निम्नांकित बातें ध्यान देने योग्य हैं :

१. महंगाई बेहद बढ़ गई है।

२. स्वराज्य मिलने से पहले भारतवासियों के सामने एक आदर्श था, ऊंचा ध्येय था, वह अब नहीं रहा।

३. हिन्दी के पाठकों में गंभीर और चरित्र-निर्माणकारी पुस्तकें पढ़ने की वृत्ति अभीतक उत्पन्न नहीं हुई।

४. त्यागी, ईमानदार तथा अध्यवसायी कार्यकर्त्ताओं का बड़ा अभाव है।

५. विचारों के व्यापक प्रचार-प्रसार का महत्व आज भी अनुभव नहीं किया जा रहा है।

इन तथा ऐसी ही बातों का प्रतिकूल प्रभाव सभी क्षेत्रों पर पड़ा है। पुस्तक-व्यवसाय भी इससे अछूता नहीं रहा। हमें विस्मय होता है जब हम समझदार व्यक्तियों को यह कहते सुनते हैं कि 'मंडल' अब 'सस्ता' नहीं, 'महंगा मंडल' हो गया है! आखिर हम क्या करें ? कागज, छपाई, जिल्दबंदी तथा प्रकाशन के अन्य उपकरणों की दरें

पहले की अपेक्षा जाने कितनी गुनी हो गई हैं। उसकी तुलना में पुस्तकों के मूल्य कम ही बढ़े हैं। बिना आर्थिक सहायता के चार सौ पृष्ठ की पुस्तक एक रुपये में देना आज असंभव है।

इस सबके बावजूद 'मंडल' ने अच्छी-से-अच्छी पुस्तकें सस्ते-से-सस्ते मूल्य में देने का प्रयत्न किया है, आज भी कर रहा है और आगे भी करता रहेगा। लेकिन उसके सामने मुख्य समस्या यह है कि ऋण तथा अन्य प्रकार के साधनों के रूप में उसके पास जो पूंजी है, वह उसकी आवश्यकताओं की दृष्टि से बहुत कम है। हम इस बात की आवश्यकता अनुभव करते हैं कि वर्तमान भारत के निर्माता महात्मा गांधी और पं० जवाहरलाल नेहरू जैसे राष्ट्र-नेताओं; श्री विनोबा भावे, राजाजी जैसे आध्यात्मिक मनीषियों तथा अन्य महापुरुषों की रचनाएं बड़े पैमाने पर और सस्ते-से-सस्ते मूल्य में प्रकाशित हों। इसके अतिरिक्त जन-साधारण की मांग को ध्यान में रखकर 'मंडल' के प्रकाशनों का क्षेत्र और अधिक विस्तृत किया जाय। सभी विवेकशील व्यक्ति अनुभव कर रहे हैं कि वर्तमान युग में, जबकि भौतिक शक्तियां हमारी नींव को ही झकझोरे डाल रही हैं और हलका-फुलका साहित्य बाजार में अटा पड़ा है, बड़ी तेजी से काम करने की जरूरत है। इस युग की चुनौती का मुकाबला कैसे किया जाय? अपने देश के सांस्कृतिक जीवन का पुनर्निर्माण किस प्रकार हो? ये मूलभूत प्रश्न हैं। 'मंडल' के पास जमा-पूंजी कुछ नहीं है। उसका अपना छापाखाना नहीं है। 'मण्डल' की यह इच्छा नहीं है कि वह पूंजी इकट्ठी करे, लेकिन वह पूरी शक्ति और योग्यता से काम करने के लिए आतुर है। यह तभी संभव हो सकता है जबकि 'मंडल' के पास आवश्यक पूंजी हो। आज तो आर्थिक कठिनाइयों के कारण कदम-कदम पर उसकी प्रगति रुकती है। बहुत-सी बढ़िया और उपयोगी पुस्तकों के पुनर्मुद्रण नहीं हो पाते। नई पुस्तकों की पांडुलिपियां प्रकाशन की बाट जोहती रहती हैं। यह ठीक है कि 'मंडल' यथाशक्ति अपना कार्य चला रहा है, लेकिन अगर उसे कुछ अधिक साधन मिल जायं तो हमारा विश्वास है कि वह कहीं अधिक कार्य कर सकता है।

इस अंक की सामग्री से पाठक जान जायंगे कि किन कठिन परिस्थितियों में 'मंडल' ने अपने कार्य का प्रारंभ तथा विकास किया, किस प्रकार उसकी प्रगति विदेशी सरकार ने पग-पग पर रोकी; लेकिन फिर भी कितने दृढ़ संकल्प के साथ वह अपने रास्ते पर चलता रहा और किस प्रकार उसने लोक-सुलभ मूल्य में उच्चकोटि की पुस्तकों के प्रकाशन द्वारा हिन्दी-जगत में एक उदाहरण उपस्थित किया।

विशेषांक कैसा बन पड़ा है, इसका निर्णय तो पाठक स्वयं करेंगे। वस्तुतः हम इस अंक को कुछ दूसरा ही रूप देना चाहते थे। हमारी इच्छा थी कि 'मंडल' को निमित्त बना कर हम पिछले पचास वर्षों की प्रकाशन-प्रवृत्तियों का सर्वेक्षण करें, साहित्य की विभिन्न विधाओं के विकास का लेखा-जोखा प्रस्तुत करें; लेकिन यह कार्य अत्यन्त समय और व्यय साध्य था। अतः विवश होकर हमें 'मंडल' की गति-विधियों पर ही अपना ध्यान केन्द्रित करना पड़ा। इस सामग्री के संकलन में भी कितना समय लगा है और परिश्रम करना पड़ा है, इसकी पाठक सहज ही कल्पना नहीं कर सकते।

हमारे विनम्र अनुरोध पर जिन्होंने भी इस अंक के लिए विशेष रूप से लिखा है, उन सबका हम आभार मानते हैं, खासतौर पर हम अपने राष्ट्रपति श्री फखरुद्दीन-अली अहमद, उपराष्ट्रपति श्री बा० दा० जत्ती, प्रधान मंत्री श्रीमती इंदिरा गांधी, केन्द्रीय मंत्रियों, विभिन्न राज्यों के राज्यपालों, मुख्य मंत्रियों, साहित्यकारों, उद्योगपतियों तथा समाज-सेवियों के आभारी हैं, जिन्होंने अपने मूल्यवान संदेश भेजकर हमारा उत्साह बढ़ाया।

विशेषांक की आत्मा का निर्माण करनेवाले लेखकों के तो हम बहुत ही ऋणी हैं। हम हृदय से स्वीकार करते हैं कि इस अंक में यदि कुछ भी अच्छा है तो उसका श्रेय हमारे लेखक बंधुओं को है। यदि इसमें कुछ त्रुटियां और कमियां रह गई हैं, तो उसके लिए हम जिम्मेदार हैं और क्षमा-प्रार्थी हैं।

हम अपने शुभचिन्तक विज्ञापनदाताओं को भी हृदय से धन्यवाद देते हैं, जिन्होंने हमें आर्थिक सहारा देकर

हमारे भार को कुछ अंशों में हल्का कर दिया। हमें पूर्ण विश्वास है कि भविष्य में भी उनका इसी प्रकार सहयोग मिलता रहेगा।

विशेषांक के निकलने में कुछ विलम्ब हो गया, इसके लिए हम अपने पाठकों से क्षमा चाहते हैं। यह अंक मई-जून का संयुक्तांक है। पाठक जानते हैं कि देश-विदेश में 'मंडल' के प्रति स्नेह और आदर रखने वाले व्यक्तियों की संख्या बहुत बड़ी है। हमारे अनुरोध को स्वीकार करके उन्होंने अपनी मूल्यवान रचनाएं हमें भेजीं। इतनी सामग्री इकट्ठी हो गई कि उसका समावेश इस अंक में हो सकना संभव नहीं था। अतः हम जुलाई और अगस्त के अंकों को मिलाकर इस विशेषांक के पूरक के रूप में निकाल रहे हैं। पूरक अंक जुलाई के अंत में पाठकों को मिलेगा। तत्पश्चात आगे के अंक नियमित रूप से निकलते रहेंगे। इन अंकों में हमें स्थायी स्तंभों को छोड़ देना पड़ा है। सामान्य अंकों में वे स्तंभ पाठकों को यथापूर्व मिलेंगे।

पाठकों से हमारा निवेदन है कि वे इस अंक को पढ़कर अपनी सम्मति हमें भेज देने का अनुग्रह करें और आशीर्वाद दें कि 'मंडल' अपने रास्ते पर उसी निष्ठा और दृढ़ता से चलता रहे, जिससे वह अबतक चलता आया है।

—य०

विशेष सूचना

'जीवन साहित्य' के जिन ग्राहकों का वार्षिक शुल्क जून १९७६ में समाप्त हो रहा है, उनसे अनुरोध है कि वे अपना शुल्क शीघ्र ही भेज दें, जिससे इस विशेषांक का दूसरा खण्ड, जो जुलाई १९७६ में निकल रहा है, भेजा जा सके।

—व्यवस्थापक

परिशिष्ट

: १ :

'मंडल' की वर्तमान सदस्य समिति

प्रधान संरक्षक

श्री घनश्यामदास बिड़ला

अध्यक्ष

श्री भागीरथ कानोडिया

सदस्य

सर्वश्री महाबीरप्रसाद पोद्दार,
" वियोगी हरि,
" लक्ष्मीनिवास बिड़ला,
" धर्मवीर,
" रामकुमार भुवालका,
" जीतमल लूणिया,
" गंगाशरणसिंह,
" रामेश्वर टांटिया,
" अक्षयकुमार जैन,
" कन्हैयालाल सहल,
" मार्तण्ड उपाध्याय

मंत्री

श्री यशपाल जैन

❋

जीवन साहित्य सम्पादक :

श्री यशपाल जैन

प्रधान कार्यालय

एन ७७, कनाट सर्कस,
नई दिल्ली-११०००१ फोन : ४०५०५ ● तार : सस्ताहित्य

शाखा : जीरो रोड, इलाहाबाद
फोन : ५००३४

❋

बैंकर्स : यूनाइटेड कमर्शियल बैंक, नई दिल्ली
इलाहाबाद बैंक, नई दिल्ली

आडीटर्स : वी० डी० गार्गीय एण्ड कम्पनी,
चार्टर्ड एकाउण्टेण्ट्स एण्ड आडीटर
अजमेर, ब्यावर, जयपुर

'सस्ता साहित्य मंडल' की प्रमुख घटनाएं

१ मई १९२५ — स्थापना

२३ फरवरी १९२६ — अजमेर में पंजीयन

० **आद्य संस्थापक सदस्य :**

श्री घनश्यामदास बिड़ला, कलकत्ता (अध्यक्ष)
,, जमनालाल बजाज, वर्धा
,, महावीरप्रसाद पोद्दार, गोरखपुर-कलकत्ता
,, हरिभाऊ उपाध्याय, अजमेर
,, स्वामी आनंद, अहमदाबाद
डॉ० अम्बालाल शर्मा, अजमेर
श्री जीतमल लूणिया, अजमेर (मंत्री)

० **प्रथम वर्ष के प्रकाशन**

१. दक्षिण अफ्रीका के सत्याग्रह का इतिहास (महात्मा गांधी)
२. दिव्य जीवन (स्वेट मार्डन)
३. व्यावहारिक सभ्यता (गणेशदत्त शर्मा इन्द्र)
४. शिवाजी की योग्यता (गो. दा. तामस्कर)

१९२७ विजयादशमी — 'त्यागभूमि' मासिक का प्रकाशन
(सम्पादक : सर्व श्री हरिभाऊ उपाध्याय, क्षेमानंद राहत)

१९२८ सितं०-अक्तू० — हटूंडी में गांधी आश्रम की स्थापना

१९३० सितंबर — 'त्यागभूमि' का प्रकाशन प्रेस से जमानत मांगे जाने के कारण बंद

१९३१, १ मई — 'त्यागभूमि' का प्रकाशन साप्ताहिक के रूप में आरंभ

० **'मंडल' की सन् १९३०-३१ में सरकार द्वारा जब्त पुस्तकें**

१. **स्वराज्य का बिगुल** (उल्फतसिंह चौहान)
२. **स्वर्ण विहान** : पद्यनाटिका (हरिकृष्ण प्रेमी)
३. **अनीति की राह पर** : सेल्फ रेस्ट्रेंट वर्सेस सेल्फ इन्डलजेंस का अनुवाद (महात्मा गांधी)
४. **युगधर्म** : निबंध (हरिभाऊ उपाध्याय)
५. **सामाजिक कुरीतियाँ** : सोशल ईविल्स एंड देयर रेमेडी (टाल्स्टाय)
६. **जब अंग्रेज आये** : बंगला की 'मीरकासिम' का अनुवाद (अक्षयकुमार मैत्रेय)
७. **हमारे जमाने की गुलामी** : स्लेवरी आफ अवर टाइम्स (टाल्स्टाय)
८. **एशिया की क्रांति** : (सत्यनारायण शान्ति)
९. **अंग्रेजों से मेरी अपील** : (गांधीजी)
१०. **जिंदगी या मौत** : (महादेव देसाई)

१९३३ — प्रेस और 'त्यागभूमि' का प्रकाशन प्रेस से जमानत मांगे जाने के कारण बंद ।

॰ राष्ट्रीय स्वतंत्रता संग्राम में 'मंडल' का योगदान

॰ १० पुस्तकें जब्त

॰ १९३२ में मंडल पर सरकार का ५ मास तक कब्जा

॰ निम्नलिखित सदस्य तथा कार्यकर्त्ता ६ मास से २ वर्ष तक जेल में अथवा नजर-बंदी में रहे :

सर्वश्री

१. बैजनाथ महोदय	मंत्री
२. जीतमल लूणिया	स्थानापन्न मंत्री
३. हरिभाऊ उपाध्याय	'त्यागभूमि' के संपादक
४. शंकरलाल अग्रवाल	प्रेस-व्यवस्थापक
५. गोपीकृष्ण विजयवर्गीय	स० प्रेस-मैनेजर
६. हरिकृष्ण प्रेमी	स० संपादक 'त्यागभूमि'
७. सज्जनसिंह	प्रूफ रीडर
८. ओंकारलाल शास्त्री	,, ,,
९. बैजनाथ प्रसाद	कंपोजीटर
१०. राजाराम	,, ,,

१९३४ अप्रैल — मंडल का दिल्ली स्थानान्तरण : श्रद्धानंद बाजार में

१९३५, २५ दिसम्बर — कांग्रेस की स्वर्ण-जयन्ती के अवसर पर डा० पट्टाभि सीतारमैया कृत 'कांग्रेस का इतिहास' का प्रकाशन

प्रमुख पुस्तक मालाएं

॰ **लोक साहित्य माला** का प्रकाशन, १००-१५० पृष्ठों की पुस्तक आठ आने में : पंद्रह पुस्तकें निकलीं : पहली पुस्तक 'हमारे गांव की कहानी' (रामदास गौड़) अंतिम पुस्तक : 'युद्ध और अहिंसा' (महात्मा गांधी) ।

१९३९ — यह माला द्वितीय युद्ध के कारण स्थगित ।

॰ **सामाजिक साहित्य माला**

१६ पुस्तकें निकलीं : पहली : कांग्रेस का इतिहास (परिशिष्ट भाग), अंतिम : अंग्रेजों से मेरी अपील

॰ **नवजीवन माला :**

ग्रामीणों तथा कम पढ़े-लिखे लोगों के लिए : १८ पुस्तकें निकलीं। पहली : मंगल प्रभात, अन्तिम : रचनात्मक कार्यक्रम

॰ **'बाल साहित्य माला'**

॰ **सर्वोदय पुस्तक-माला**

॰ **गांधी-साहित्य माला** : १० पुस्तकें

॰ **समाज विकास-माला**

नवसाक्षरों के लिए : १७४ पुस्तकें

॰ **संस्कृत साहित्य सौरभ**

संस्कृत के प्राचीन ग्रन्थों का कथासार : ३६ पुस्तकें

- **लोक कथा-माला :**
  जनपदीय भाषाओं की लोक कथाएं : ७५ पुस्तकें
- **गांधीजी ने कहा था : ६ पुस्तकें**
- **प्रगति के पथ पर : सात पुस्तकें**
- **उपन्यास-माला**
  हिन्दी के तथा भारतीय भाषाओं के चुने हुए उपन्यासों का हिन्दी-रूपान्तर
- **सुलभ विज्ञान-माला**
  प्रकाश, ध्वनि, गर्मी, धरती, आकाश आदि का परिचय देने वाली पुस्तकें
- **मानव की कहानी :**
  पृथ्वी, जीव, मनुष्य के क्रमिक विकास की गाथा
- **जीव-जगत की कहानियां**
  जल, थल और नभ के जीवों तथा पक्षियों का परिचय
- **अल्प मोली संस्करण**
- **राष्ट्र-निर्माण-माला**
- **तुलसी राम कथा माला**
  रामचरितमानस के आधार पर रामकथा : चौपाइयों तथा चित्रों सहित।
  आदि-आदि

१९३९ — नई दिल्ली के एन-७७ कनाट सर्कस, में स्थानांतरण।
दिल्ली में पुन: पंजीयन

१९४० — 'जीवन साहित्य' मासिक का आरम्भ
प्रारंभिक सम्पादक श्री हरिभाऊ उपाध्याय और डा० सुधीन्द्र

१९५१
- 'गांधी डायरी' का प्रकाशनारंभ
- भूदान आंदोलन तथा गांधी जन्म-शती के निमित्त विशेष प्रकाशन
- रजत जयंती उत्सव (१९२५-१९५२) का आयोजन
- सहायक सदस्य योजना का प्रारंभ

१९६०
- 'मंडल के भवन-निमित्त भारत सरकार द्वारा भूमि-प्रदान की गई

१९६७
- भवन का निर्माण पूर्ण

१९७६
- 'मंडल' का स्वर्ण जयंती वर्ष

: ३ :

विशिष्ट संस्मरण ग्रंथ

१. राजेन्द्रबाबू : व्यक्तित्व-दर्शन
२. नेहरू : व्यक्तित्व और विचार
३. गांधी : व्यक्तित्व, विचार और प्रभाव
*४. गांधी : संस्मरण और विचार
५. संस्कृति के परिव्राजक (काका सा० कालेलकर की ८०वीं वर्षगांठ पर समर्पित)
*६. प्रेरक साधक (श्री बनारसीदास चतुर्वेदी की ७५वीं वर्षगांठ पर समर्पित)
*७. विनोबा : व्यक्तित्व और विचार
*८. समर्पण और साधना (श्रीमती जानकीदेवी बजाज की ८०वीं वर्षगांठ पर समर्पित)
*९. छोटे कदम लम्बा सफर (श्रीमती इंदिरा गांधी) ५७वीं वर्षगांठ पर प्रकाशित उनके विचार।
*१०. जवाहरलाल नेहरू वाङ्मय (नेहरूजी के चुने हुए लेख, भाषण, वक्तव्य, पत्र आदि। पांच खण्ड प्रकाशित)

*चिन्हित ग्रंथ प्राप्य हैं।

जीवन साहित्य के विशिष्ट विशेषांक

१. जमनालाल बजाज स्मृति अंक
२. उपवास अंक
३. सर्वोदय अंक
४. विश्व शांति अंक
५. भूदान यज्ञ अंक
६. बुद्ध जयंती अंक
७. प्राकृतिक चिकित्सा अंक
८. सर्वोदय संदेश अंक
९. टाल्स्टाय अंक
१०. रवीन्द्र अंक
११. राजेन्द्र संस्मरण अंक
१२. नेहरू स्मृति अंक
१३. लालबहादुर शास्त्री स्मृति अंक
१४. वैष्णवजन अंक
*१५. गांधी-चिंतन अंक
१६. बा-बापू-अंक
*१७. भोजनांक
*१८. राष्ट्रीय चेतना अंक
*१९. हरिभाऊ उपाध्याय श्रद्धांजलि अंक
*२०. प्रवासी अंक
*२१. तीर्थंकर महावीर अंक
*२२. हिन्दी द्वारा राष्ट्रसेवा के ५० वर्ष अंक

*चिह्नत अंक प्राप्य हैं।

केन्द्रीय तथा विभिन्न राज्य-सरकारों आदि द्वारा पुरस्कृत 'मंडल' के प्रकाशन

१. बापू की कारावास कहानी	सुशीला नैय्यर
२. प्रेम में भगवान	टाल्स्टाय, अनु० जैनेन्द्रकुमार
३. महाभारत-कथा	राजाजी, अनु० सोमसुन्दरम्
४. भागवत-धर्म	हरिभाऊ उपाध्याय
५. गांधीजी का विद्यार्थी-जीवन	अशोक
६. गौतम बुद्ध	भरतसिंह उपाध्याय
७. गांव सुखी, हम सुखी	विनोबा
८. बाजीप्रभु देशपांडे	विष्णु प्रभाकर
९. शहर की खेती	ब० सि० रावत
१०. राजा भोज	देवराज 'दिनेश'
११. काला पानी	शांडिल्य
१२. पावभर आटा	वियोगी हरि
१३. हमारे पड़ोसी	विष्णु प्रभाकर
१४. आकाश की बातें	ओमप्रकाश
१५. देश यों आगे बढ़ेगा	सुशीला
१६. गोदावरी	देवराज 'दिनेश'
१७. शंकराचार्य	विष्णु प्रभाकर
१८. दानवीर कर्ण	देवराज 'दिनेश'
१९. मंगू भैया	लीला अवस्थी
२०. हारिए न हिम्मत	सव्यसाची
२१. वन-सम्पदा	रामचन्द्र तिवारी
२२. झलकारी	शंकर बाम
२३. समय का मोल	जगन्नाथ प्रभाकर
२४. विनोबा के पावन प्रसंग	सुरेशराम भाई
२५. प्रकाश की बातें	ब्रह्मानन्द-नरेश वेदी
२६. गरमी की कहानी	ब्रह्मानन्द-नरेश वेदी
२७. रामायणकालीन संस्कृति	शांतिकुमार नानूराम व्यास
२८. मील के पत्थर	रामवृक्ष बेनीपुरी
२९. रोक-फसलों की खेती	नारायण दुलीचन्द व्यास
३०. दलहन की खेती	नारायण दुलीचन्द व्यास
३१. तिलहन की खेती	नारायण दुलीचन्द व्यास
३२. कृषि-दीपिका	नारायण दुलीचन्द व्यास
३३. नये जीवन की ओर	शिवचन्द, विमला दत्त
३४. दशरथ नन्दन श्रीराम	चक्रवर्ती राजगोपालाचार्य
३५. मैं इनका ऋणी हूं	इन्द्र विद्यावाचस्पति
३६. शारदीया	जगदीशचन्द्र माथुर
३७. जड़ जगत की कहानियां	नन्दलाल जैन
३८. समुद्र के जीव-जन्तु	सुरेशसिंह
३९. युग-धर्म	हरिभाऊ उपाध्याय
४०. प्रभु पधारे	झवरेचन्द मेघाणी, अनु० श्यामूसंन्यासी
४१. तमिल साहित्य और संस्कृति	अवधनन्दन
४२. साधना के पथ पर	हरिभाऊ उपाध्याय
४३. सबै भूमि गोपाल की	सुरेशराम
४४. रूस में छियालीस दिन (सोवियत लैंण्ड नेहरू पुरस्कार)	यशपाल जैन
४५. मनुष्य का बचपन	देवी प्रसाद चट्टोपाध्याय
४६. पड़ोसी देशों में	यशपाल जैन
४७. मेरे हृदयदेव	हरिभाऊ उपाध्याय

विज्ञापन-सूची

दिल्ली विद्युत प्रदाय संस्थान

(दिल्ली नगर निगम)

बिजली का प्रयोग करने वालों को निम्न प्रकार कुछ
करना चाहिए और कुछ नहीं करना चाहिए :

करना चाहिए :

१. बिजली उपकरणों को लगाने, बदलने, उनमें जोड़-तोड़ करने अथवा रद्दोबदल करने के कार्य को केवल लाइसेंस-शुदा तार डालने वाले ठेकेदारों को सौंपना।

२. अच्छे किस्म का सामान एवं मानकीय (स्टैन्डर्ड) घरेलू बिजली उपकरणों का इस्तेमाल करना।

३. अति भार से बचाना तथा अपनी आवश्यकताओं को स्वीकृत प्रभार (लोड) की सीमा तक सीमित रखना, अन्यथा अपनी फालतू आवश्यकताओं को नियमित करा लेना।

४. प्लग पाइंट एवं उपकरण अच्छी तरह भूयोजित होने चाहिए।

नहीं करना चाहिए :

१. बिजली सप्लाई के मुख्य तारों, मीटर उपकरणों, भूयोजित तारों आदि के साथ छेड़-छाड़ करना।

२. बच्चों को किसी धातु की छड़ों अथवा अन्य डन्डों से बिजली के तारों को छूने देना तथा ऊपरवर्ती सप्लाई क्षेत्र में पतंग उड़ाने देना। धातु की रस्सी अथवा भीगे धागों का इस्तेमाल जिन्दगी के लिए खतरनाक है।

३. सप्लाई मेन्स के आश्रित एवं आप्लावित तारों को कपड़े सुखाने, अन्य पालतुओं को बांधने के लिए इस्तेमाल करना।

४. किसी भी प्रयोजन के लिए सप्लाई खम्भों पर चढ़ना।

५. घरेलू भूयोजित तार को काटना, जबकि यह एक आवश्यक सुरक्षा का उपाय है।

६. किसी नंगे बिजली के तार को छूना।

७. अभूयोजित उपकरणों का इस्तेमाल करना।

८. स्नानघर में सुबाह्य हीटरों एवं पंखों का इस्तेमाल करना।

९. अस्थाई किस्म के बने तार को बत्तियों एवं पंखों आदि के विस्तार के लिए प्रयोग करना।

१०. स्विच बन्द करने से पहले, किसी उपकरण अथवा सर्किट से प्लग हटाना।

११. स्विचों अथवा सर्किटों को बिना ढके अथवा टूटे हुए रखे रहना।

१२. स्विच बन्द किये बिना, किसी उठाऊ उपकरण को साफ करना अथवा इसमें हुई खराबी के कारण की खोज करना।

१३. मुख्य स्विच को बन्द किए बिना, बिजली के झटके में आये व्यक्ति को छूना।

१४. बिजली के झटके से पीड़ित व्यक्ति को तुरन्त डाक्टरी सहायता देने में देर करना।

"सुविधा के लिए बिजली जहां एक बहुत आज्ञाकारी सेवक की भांति कार्य करती है वहां सावधानी से प्रयोग न करने पर यही भयंकर खतरा उत्पन्न कर सकती है।"

साहित्य की गौरवमयी परम्परा में साहित्य अकादमी का योगदान

साहित्य अकादेमी भारत सरकार द्वारा स्थापित राष्ट्रीय महत्व की स्वायत्त संस्था है जिसका प्रमुख उद्देश्य है : ऊंचे साहित्यिक मानदण्ड कायम करना, विभिन्न भारतीय भाषाओं में जो साहित्यिक कार्य हो रहा है उसे अग्रसर करना, उनमें मेल बढ़ाना, और इस प्रकार देश की सांस्कृतिक एकता को पुष्ट करना।

अपने इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए साहित्य अकादेमी ने एक विस्तृत प्रकाशन-कार्यक्रम संयोजित किया है, जिसके अंतर्गत देश-विदेश की समृद्ध भाषाओं के प्राचीन और नवीन ग्रंथों के प्रामाणिक अनुवाद प्रस्तुत किए जा रहे हैं। इनके द्वारा हिन्दी के सामान्य पाठक को अनायास ही विश्व-साहित्य का सम्यक् परिचय मिल जाता है।

साहित्य अकादेमी अब तक हिन्दी में १०५ से अधिक ग्रंथ प्रकाशित कर चुकी है। अपनी अन्य योजनाओं के अन्तर्गत साहित्य अकादेमी ने 'भारतीय साहित्य के निर्माता' नामक पुस्तकमाला के प्रकाशन की योजना भी प्रारम्भ की है। भारतीय साहित्य के इतिहास की दीर्घ यात्रा में जिन महान प्राचीन अथवा अर्वाचीन प्रतिभाओं ने उसके निर्माण में महत्त्वपूर्ण योग दिया है, उनका परिचय इस पुस्तकमाला में उस विषय के अधिकारी लेखकों द्वारा प्रस्तुत किया जाता है। इस माला में अब तक जो पुस्तिकाएं हिन्दी में प्रकाशित हुई हैं, उनका विवरण इस प्रकार है :—

१. प्रेमचन्द : हिन्दी लेखक, मूल ले० : प्रकाशचन्द्र गुप्त
२. इलंगो अडिगल : तमिल कवि, मूल ले० : मु० वरदराजन
३. नामदेव : मराठी सन्त कवि, मूल ले० : मा० गो० देशमुख
४. लक्ष्मीनाथ बेजबरुवा : असमिया लेखक, मूल ले० : हेम बरुवा
५. केशवसुत : मराठी कवि, मूल ले० : प्रभाकर माचवे
६. वीरेशलिंगम : तेलुगु लेखक तथा समाजसुधारक, मूल ले० : नार्ल वेंकटेश्वर राव
७. शाह लतीफ़ : सिन्धी सूफी संत कवि, मूल ले० : क० बु० आडवाणी
८. राजा राममोहन राय : बंगला लेखक तथा समाजसुधारक, मूल ले० : सौम्येन्द्रनाथ
९. प्रमथ चौधरी : बंगला पत्रकार एवं व्यंग्य लेखक, मूल ले० : अरुणकुमार मुखोपाध्याय
१०. ईश्वरचन्द्र विद्यासागर : बंगला गद्य लेखक एवं समाजसुधारक, मूल ले० : हिरण्मय बनर्जी
११. वेमना : तेलुगु सन्त कवि, मूल ले० : नार्ल वेंकटेश्वर राव
१२. सचल सरमस्त : सिन्धी सन्त कवि, मूल ले० : क० बु० आडवाणी
१३. तरुदत्त : अंग्रेजी तथा फ्रैंच कवयित्री, मूल लेखिका : पद्मिनीसेन गुप्ता
१४. श्रीपाद कृष्ण कोल्हटकर : मराठी हास्य-व्यंग्य लेखक एवं नाटककार, मूल ले० : म. ल. वराडपांडे
१५. ग़ालिब : उर्दू कवि, मूल ले० : मु० मुजीब

विशेष : प्रत्येक पुस्तिका का मूल्य मात्र रु० २.५० है।

प्राप्ति-स्थान

साहित्य अकादमी, रवीन्द्र भवन, ३५, फिरोज़शाह रोड
नई दिल्ली-११०००१

तस्करी समाज विरोधी है

आप तस्करी के
माल का
बहिष्कार करके
इसे रोक सकते हैं

सच्चे भारतीय बनिए, स्वदेशी माल खरीदिए

DAVP 76/82

आपात्काल के बाद दिल्ली की सफलताएं

कीमतें गिरीं

कीमतों में वृद्धि रुकी; महंगाई की दर शून्य से भी नीचे गिरी; आवश्यक वस्तुओं के वितरण की आदर्श प्रणाली लागू; शहरी और ग्रामीण क्षेत्रों में २५३ सहकारी समीतियों तथा २१,००० उचित-दर-दुकानों से सस्ते कपड़े की बिक्री।

बेघरों के लिए घर : भूमिहीनों के लिए भूमि

३२०४ एकड़ कृषि भूमि ३६०६ हरिजन तथा गरीब भूमिहीन परिवारों में वितरित; १००० एकड़ और भूमि शीघ्र बांटी जायेगी; ५७८४ आवासीय प्लाट गरीब तथा बेघर हरिजनों में वितरित; हरिजनों को मकान बनाने के लिए १८ लाख रुपये का अनुदान।

अप्रेंटिस्शिप

निर्धारित लक्ष्य ३५०० के स्थान पर ३५२५ नवयुवकों को विभिन्न उद्योगों में अप्रेंटिसी पर लगाया।

समाज-विरोधियों के पांव उखड़े

बेईमान व्यापारियों के विरुद्ध २२५६ छापे; कर चोरी के १७ करोड़ रु० के व्यापारिक सौदों का पता लगाया गया; जमाखोरों, मुनाफाखोरों आदि के विरुद्ध १४,००० छापे।

छात्रों को राहत

८५३ स्कूलों में बुक-बैंक; पेन्सिल-कापियां आदि सस्ते मूल्यों पर; छात्रावासों में सस्ता भोजन; स्कूलों में सुधार का १२ सूत्री कार्यक्रम; प्राथमिक विद्यालयों के समस्त विद्यार्थियों को मुफ्त पाठ्य-पुस्तकें; गरीब विद्यार्थियों को स्कूली-वर्दी मुफ्त देने की योजना पर ८ लाख रु० का व्यय।

उत्पादन बढ़ा

६०० औद्योगिक शेडों का निर्माण; छोटे-छोटे उद्यमियों को ३.५ करोड़ रु० का ऋण वितरित; सब्जी योग्य भूमि का क्षेत्रफल १६.२० हजार हैक्टेयर (१९७२) से बढ़कर १९.७२ हजार (१९७६); बहु-उद्देशीय फसलों के क्षेत्रफल में बढ़ावा; सीमान्त किसान एवं श्रमिक विकास एजेंसी द्वारा गरीब किसानों की भरपूर मदद।

स्वच्छ-सुन्दर दिल्ली

शहरी क्षेत्र में साफ-सुथरा वातावरण; जामा-मस्जिद-क्षेत्र का पुनर्विकास; सब्जीमण्डी का आजादपुर में स्थानांतरण; २०० अनधिकृत उद्योगों की अधिकृत क्षेत्र में पुनर्स्थापना; ५०,००० प्लाटों और आम-सुविधाओं से पूर्ण २० पुनर्वास कालोनियों की स्थापना; गरीब तथा कमजोर वर्ग के लोगों के लिए बेहतर जीवन तथा रोजगार के नये अवसर।

ग्राम-विकास

५० गांवों में सफाई, नशाबन्दी तथा परिवार नियोजन का समन्वित कार्यक्रम १९७६-७७ के पहले तीन महीनों में ही लागू। १९७६-७७ के अन्त तक दिल्ली के समस्त गांवों में इस कार्यक्रम का विस्तार।

दिल्ली परिवार-नियोजन में सबसे आगे

प्रजननशील आयु वर्ग के ४१.३% दम्पतियों में गर्भ-निरोध उपायों को प्रचलित करके देशभर में कीर्तिमान स्थापित किया है जबकि देशभर का औसत १९.१% ही है।

हम प्रधानमंत्री श्रीमती इन्दिरा गांधी के गतिशील और प्रेरणादायी
नेतृत्व में प्रभावी परिवर्तन की राह पर अग्रसर हो रहे हैं।
आइए! हम अपने छोटे-छोटे भेद-भावों को भूलकर
देश की राजधानी—दिल्ली
की शान बढ़ाने के लिए मिलजुलकर काम करें।

सूचना एवं प्रचार निदेशालय, दिल्ली प्रशासन, दिल्ली द्वारा प्रसारित

दिल्ली नगर निगम

जल प्रदाय एवं मल व्ययन संस्थान
लिंक भवन, नई दिल्ली

जल के बिना जीवन असम्भव है। दिल्ली जल प्रदाय एवं मल व्ययन संस्थान एशिया भर के विशाल एवं नवीनतम संयंत्रों द्वारा शुद्ध किए जल से आपकी सेवा कर रहा है।

अधिक अच्छी तथा व्यवस्थित जल प्रदाय सेवा के लिए कृपया निम्न प्रकार आपका सहयोग अपेक्षित है :—

१. नल की टूटी ठीक से बन्द करें।

२. आवश्यकतानुसार ही पीने के पानी का प्रयोग करें।

३. टपकते नल की टूटी और वाशर की जाँच करायें तथा खराब टूटी या वाशर को तुरन्त बदलवा दें। सिस्टर्न व ऊपर की टंकियों के रिसाव को भी तुरन्त ठीक करायें।

४. टूटियां बढ़ाने के लिए विभागीय स्वीकृति लें और लाइसेंस शुदा प्लम्बर से भवन के अन्दर की पीने के पानी की फिटिंग करायें।

५. भवन में ऊपर की मंजिलों पर पानी पहुंचाने के लिए तल मंजिल पर टंकी बनायें और उस पर बुस्टर पम्प लगायें।

६. पानी की लाइन राष्ट्रीय सम्पत्ति है। इनकी अपनी वस्तु की तरह देखभाल करें।

७. अपने भवन में आवश्यकता के अनुरूप ही पानी का भण्डार रखें।

८. कम दबाव की स्थिति में अपनी फिटिंग की जाँच करायें और आवश्यकता हो तो पुरानी फिटिंग बदलवा दें।

९. पानी की मुख्य पाइप लाइन रिसने या फटने की दशा में तुरन्त दिल्ली नगर निगम के क्षेत्रीय कार्यालय में जल विभाग को अथवा दूरभाष संख्या ६१७६७२, २२२४६१ या २७३२४५ पर सूचित करें।

दिल्ली जल प्रदाय एवं मल व्ययन संस्थान के समस्त कर्मचारी आपकी सेवा के लिए सदैव प्रस्तुत हैं।

(जन सम्पर्क अधिकारी, दिल्ली जल प्रदाय एवं मल व्ययन संस्थान द्वारा प्रसारित)

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मध्य प्रदेश की यात्रा कीजिये

"तीर्थ यात्राओं की पावन भूमि"

सांची : जहां भगवान बुद्ध के प्रमुख शिष्य सारिपुत्र और महामोग्लायन के अवशेष अवस्थित हैं

उज्जैन : भगवान महाकालेश्वर की नगरी, पृथ्वी के केन्द्र बारह-ज्योतिर्लिगों में से एक।

अमरकंटक : पतित पावनी नर्मदा का उद्गम स्थान।

चित्रकूट : जहाँ भगवान राम ने वनवास अवधि का कुछ काल व्यतीत किया और गोस्वामी तुलसीदास को दर्शन दिये।

ओंकारमान्धाता : पुण्यतीया नर्मदा के बीच ओम गिरिक पर अवस्थित बारह ज्योतिर्लिगों में से एक।

महेश्वर : आद्य शंकराचार्य की चरण धूलि से पुनीता, महिष्मती की पुरातन नगरी।

मध्य प्रदेश में तीर्थ यात्रा एवं दृश्यावलोकन के और भी अनेक दर्शनीय स्थल

(पर्यटन संचालनालय, मध्य प्रदेश द्वारा प्रसारित)

सू० प्र० सं० । १७५८/७६

in any language,
it's sweet

बिहार की प्रगति

बीस सूत्री आर्थिक कार्यक्रम की उपलब्धियां

बिहार के मुख्यमंत्री डा० जगन्नाथ मिश्र के मात्र एक वर्ष के नेतृत्व काल में आर्थिक-सामाजिक दृष्टि से बिहार की अभूतपूर्व प्रगति का विहंगावलोकन :

भूमि-सुधार अधिनियम के अन्तर्गत अबतक ५८,००० एकड़ भूमि अधिसूचित की जा चुकी है। करीब १०८६० एकड़ जमीन भूमिहीनों के बीच वितरित की जा चुकी है।

करीब एक लाख एकड़ गैर-मजरुआ जमीन की बन्दोवस्ती की गई।

१२७३५ एकड़ जमीन आदिवासियों (ताना भगत सहित) को वापस कर दी गई।

राज्य के बड़े-बड़े भूमिपतियों के द्वारा किये गये रिटनों की छानबीन करने के लिये एक विशेष अभियान शुरू किया गया है। फर्जी जमीन का पता लगाने के लिए दो उड़नदस्तों का संगठन किया गया है। ११००० एकड़ भूमि स्वेच्छा से अर्पित की गई है। ७,१५,००० व्यक्तियों को वासगीत जमीन का पर्चा दिया गया।

राज्य के सभी जिलों में सिंचित क्षेत्रों के लिये ५.०० तथा असिंचित क्षेत्रों के लिये ४.५० न्यूनतम मजदूरी निश्चित की गई।

शिक्षित बेरोजगारों को स्वनियोजन योजना के अन्तर्गत ५०० परिवहन सहयोग समितियाँ गठित की जा रही हैं। १,९११ शिक्षित बेरोजगारों ने अपने-अपने लघु उद्योग स्थापित कर लिये हैं।

दस हजार आबादी पर एक स्वास्थ्य उपकेन्द्र की स्थापना।

१५ हजार गाँवों में बिजली लग चुकी है और अगले वर्ष में ८,३५० गाँवों में बिजली लगाई जायगी।

आवश्यक सामानों की कीमतों में ७ प्रतिशत से ४४ प्रतिशत तक गिरावट आई है।

सूचना एवं जन सम्पर्क विभाग, बिहार

निर्माता

हर्क्यूलिस होइस्टस लिमिटेड

मिनर्वा इंडस्ट्रियल इस्टेट

मुलुंड, बम्बई-४०००८०

फोन : ५६४३६७
५६६१३०

शुभ कामनाओं सहित

हमारे प्रमुख नवीन प्रकाशन

पुस्तक	लेखक	मूल्य
छोटे कदम : लम्बा सफर	इंदिरा गांधी	२०.००
आत्म-चिंतन	मार्कस ओरेलियस	४.५०
गोस्वामी तुलसीदास के दोहे	संग्रा० वियोगि हरि	१.००
कबीरदास की सुबोध साखियां	संग्रा० वियोगि हरि	१.५०
टाम काका की कुटिया	हेरियट बीचर स्टो	१५.००
विष्णुसहस्रनाम	विनोबा की हस्तलिपि में	१०.००
मेरे जीवन में गांधीजी	घनश्यामदास बिड़ला	३७.५०
बिखरे विचारों की भरोटी	,, ,,	३७.५०
तुलसी राम कथा (चार भाग) १. राम जन्म २. राम वन-गमन ३. सीता-हरण ४. लंका विजय	विश्वंभर सहाय प्रेमी	१६.००
सेतु-निर्माता	यशपाल जैन	७.००
जवाहरलाल नेहरू वाङ्मय (खण्ड १ से ५ तक) प्रत्येक खंड का मूल्य		६०.००
प्रकृति का संगीत	काका सा० कालेलकर	४.००
आप भले जग भला	श्रीमन्नारायण	६.००
लहरों के बीच	सुनील गंगोपाध्याय	८.००
मेघ मल्हार	सुमति क्षेत्रमाडे	८.००
भगवद्गीता	च० राजगोपालाचार्य	३.००
आंचल और आग	लक्ष्मी निवास बिड़ला	५.००

पुनर्मुद्रण

पुस्तक	लेखक	मूल्य
भगवत कथा	सूरज मल मोहता	४.५०
शारदीया	जगदीशचन्द्र माथुर	४.००
अमृत की बूंदें	आनंदकुमार	५.००
बहता पानी निर्मला	भागीरथ कानोडिया	सजिल्द ८.०० अजिल्द ५.००
कब्ज : कारण और निवारण	महावीर प्रसाद पोद्दार	४.००
चंगा करे खुदाई	महावीर प्रसाद प्रोद्दार	४.५०
प्राकृतिक चिकित्सा : क्या व कैसे	महावीर प्रसाद पोद्दार	२.००
निरोग होने का सच्चा उपाय	डा० आर. डी. ट्राल	२.२५
सरल योगासन	धर्मचंद सरावगी	३.००
सच्चे इंसान बनो	फादर वालेस	५.५०
राजाजी की लघु कथाएं	च. राजगोपालाचार्य	३.५०
दिव्य जीवन की झांकियां	यशपाल जैन	४.५०
जीवन संदेश	खलील जिब्रान	१.२५
भगवान हमारा मित्र	च. राजगोपालाचार्य	१.००
पुण्य की जड़ हरी	आदर्श कुमारी	४.००

सस्ता साहित्य मंडल, नई दिल्ली

हमारे आगामी नवीन प्रकाशन

१. मर्यादा पुरुषोत्तम राम : नानाभाई भट्ट
राम के उदात्त चरित की गाथा। रामायण-पात्र माला का प्रथम पुष्प।

२. सिंह कटि : कृष्णप्रसाद मिश्र
उड़ीसा की भाव-भूमि पर लिखा मार्मिक उपन्यास

३. कब्रों का विलाप : खलील जिब्रान
विश्व विख्यात लेखक जिब्रान की हृदयस्पर्शी तथा प्रेरणादायक कहानियों का संग्रह

४. जवाहरलाल नेहरू वाङ्मय (खण्ड ६)
पं० जवाहर लाल नेहरू के चुने हुए लेखों, भाषणों, वक्तव्यों तथा पत्रों का ऐतिहासिक संग्रह।

५. जानकी-सहस्रनाम
जानकी देवी बजाज द्वारा सहस्र सुजनों के संक्षिप्त संस्मरण

पुनर्मुद्रण

१. भारत सावित्री (खण्ड १) : वासुदेवशरण

२. भारत सावित्री (खण्ड २) वासुदेवशरण
महाभारत का अनुशीलन

३. विराट : स्टीफन ज्विग
गीता के निष्काम कर्म पर आधारित उपन्यास

४. हीरे-मोती : खलील जिब्रान
भाव-पूर्ण गद्य गीतों का संग्रह

५. आगे बढ़ो : स्वेट मार्डन
जीवन में साहस तथा दृढ़ता से आगे बढ़ने की प्रेरणा देने वाली पुस्तक।

६. तुकाराम गाथा सार
संत तुकाराम के चुने हुए प्रसंगों का हिन्दी रूपान्तर

७. हमारी लोककथाएं
हिन्दी के विभिन्न जन पदों की लोक कथाएं मूल भाषा में, हिन्दी अनुवाद सहित

८. जैसी करनी वैसी भरनी
बुन्देलखण्ड की लोक कथाएं

९. संतवाणी
विभिन्न संतों के चुने हुए वचन, अर्थ-सहित

१०. सूफी संत चरित्
चुने हुए मुस्लिम संतों के जीवन-परिचय और उपदेश

११. वैज्ञानिक मालिश
सही ढंग से मालिश करने की विधियां तथा उनके लाभ

१२. त्याग का मूल्य
उदयन के जीवन पर आधारित रोचक कथा।

१३. सती का तेज
अतीतकालीन नारी जीवन की आदर्श घटनाएं।

१४. आकाशदानी दे पानी
पच्चीस गढ़वाली लघुकथाओं का संकलन

१५. जिंदगी दांव पर
मानव के मन की अत्यत जटिल ग्रन्थियों को खोलने वाला हृदयस्पर्शी उपन्यास।

सस्ता साहित्य मण्डल, कनाट सर्कस, नई दिल्ली

यशपाल जैन, मंत्री, सस्ता साहित्य मंडल, नई दिल्ली द्वारा उद्योगशाला प्रेस, दिल्ली में छपवाकर प्रकाशि